http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

भाग 1

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

सहजानन्द शास्त्रमाला

परमात्मप्रकाश प्रवचन

—: प्रवक्ता :—

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ

[पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

—:(★):—

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । ॐकारं विन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः । कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलमलकलङ्का । मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम् ।। अज्ञान-तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया । चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः । परमगुरवे नमः परम्पराचार्यगुरुभ्यो नमः सकलकलुषविध्वंसकं श्रेयसां परिवर्द्धकं धर्मं सम्बन्धकं भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकमिदं शास्त्रं श्री परमात्म-प्रकाशनामधेयं, अस्य मूलग्रन्थकर्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः गणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचोऽनुसार-मासाद्य श्रीमद्योगीन्दुदेवेन विरचितम् ।।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी । मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलं ।। श्रोतारः सावधा-नतया शृण्वन्तु । सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं । प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ।

—:(★):—

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने,
परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः ।

यह ग्रन्थ परमात्मप्रकाश है इसमें परमात्माका स्वरूप दिखाया है । यह दर्शन अध्यात्मदृष्टिसे होता है, सो सहज आनन्द और चैतन्यभावमय निज स्वरूपकी प्राप्तिके कारणभूत सहज अध्यात्मदृष्टिको, जैसा कि आत्म-स्वभाव है उसकी सिद्धिके लिये, मेरा नमस्कार हो । आत्माका स्वरूप सहज आनन्दमय सहज चैतन्यभाव है किन्तु वर्तमानमें संसारी जीवोंको उसकी प्राप्ति कठिन हो रही है । इसका कारण यह है कि उन्हें अध्यात्मदृष्टि प्राप्त नहीं है । स्वस्वरूपकी प्राप्तिका कारण अध्यात्मदृष्टि है । अध्यात्मदृष्टि आवे तो स्वरूपकी प्राप्ति होवे, स्वरूपकी प्राप्ति होवे तो सहज ही आनन्दकी प्राप्ति हो ।

इस लोकमें निर्विघ्न सत्य आनन्दका देनेवाला परमात्मस्वरूप ही है । परिवार लोक प्रतिष्ठा, वैभव आदि तो आनन्द क्या हैं, केवल क्लेशके ही कारण होते हैं । इस लोकमें सर्वोत्कृष्ट पदार्थ परमात्स्वरूप ही है । परिवार लोकप्रतिष्ठा, वैभव आदि तो विनाशीक और दुःखके कारण होते हैं । परमात्मस्वरूपकी शरण ग्रहण करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही हितकर है, परिवार, लोकप्रतिष्ठा, वैभव आदि तो खुद अशरण हैं। इनमें शरणबुद्धि करना ही महान् संकट है।

इस कारण जैसा कि परमात्मस्वरूप (आत्मस्वभाव) है उसकी सिद्धि (प्राप्ति) के लिये अध्यात्म-दृष्टिको सन्मुख करना, अध्यात्मदृष्टिका अवलम्बन लेना परम आवश्यक है।

"परमात्म प्रकाश" ग्रन्थमें श्री पूज्यवर योगीन्दुदेवने इस परमात्मस्वरूपका अच्छा प्रकाश किया है। इसमें व्यक्त परमात्माका वर्णन नहीं किया है, किन्तु सब आत्माओंमें वर्तमान सदा अन्तः प्रकाशमान अतुल महिमानिधान परमात्मस्वरूपका वर्णन किया है। ज्ञान और आनन्दका पुञ्ज यह आत्मा है। इस ही निज-निज आत्मामें परमात्मत्व अनादिसिद्ध है। इसका परिज्ञान न होनेसे आत्माने अनेक कष्टोंको भोगा है। परमात्मस्वरूपके अवलोकनसे समस्त आपदायें नष्ट हो जाती हैं। अतः जीवोंके सुखके लिये परमात्मस्वरूपका ज्ञान अनिवार्य अत्यावश्यक समझ कर श्री योगीन्दु आचार्य महाराजने परमात्मस्वरूपका प्रकाश करना पूर्ण उपयोगी समझा है और उसी उद्यमके प्रारम्भमें यह मंगलाचरण किया है—

जे जाया झाणग्गियए कम्मकलंक डहेवि।
णिच्च णिरंजण णाणमय ते परमप्प णवेवि ॥१॥

जो ध्यानरूपी अग्निके द्वारा कर्मकलंकको जलाकर नित्य निरञ्जन ज्ञानमय हुए हैं उन परमात्माको नमस्कार करके (आगेके दोहासे सम्बन्ध है कि श्री सिद्धगणको नमस्कार करता हूं)। यहां जैसा निज परमात्मतत्त्वका शक्तिरूप स्वरूप है, स्वभाव है वैसा जिनका पूर्ण विकास हो गया है उन परमात्माको नमस्कार किया है। जैसा अपनेको बनना है वैसे स्वरूपका ध्यान किये बिना मार्ग स्पष्ट नहीं होता है। जो जैसा होना चाहता है वह वैसेको ही उपासना करता है। तथा अपने आपमें विराजमान नित्य निरञ्जन ज्ञानमय परमात्मस्वभावका स्मरण शुद्ध-विकासमय परमात्माके स्मरणसे होता है। इस कारण यहां परमात्माको नमस्कार किया है। जो कारणपरमात्मा कार्यपरमात्मा बन गये हैं उन्हें यहां नमस्कार किया है।

कारणपरमात्मा तो हम सब जीव हैं, क्योंकि इस जीवका स्वभाव ही आवरणरहित होकर परमात्माके रूपमें प्रकट होता है। कोई नवीन चीज (सत्) परमात्मा नहीं होता अभी हम सब आत्मा कारणरूप परमात्मा हैं अर्थात् परमात्मा बननेके उपादान कारण हैं। अथवा हम सब परमात्मत्वस्वभावरूप हैं, परमात्मशक्तिरूप है, यदि हम परमात्मस्वभावी न हों तो कभी भी परमात्मत्व मुझमें प्रकट नहीं हो सकेगा। ऐसी ही बात सब आत्माओंकी बनेगी। सो परमात्माके अभावका प्रसंग हो जायगा, इस कारण यह पूर्ण निःसन्देह बात है कि हम सब कारण-परमात्मा हैं। एक कारण परमात्मा पर्यायरूप भी है कि जिस पर्यायके बाद सकल परमात्मा हो जाते हैं वह कारण-परमात्मा बारहवें गुणस्थानमें कहा जाता है। उसकी अभी यहां चर्चा नहीं की जा रही है, किन्तु द्रव्यदृष्टिके कारण परमात्माकी बात कही जा रही है, जो कि अनाद्यनन्त चित्स्वभावमय है।

कार्यपरमात्मा उन्हें कहते हैं जिनका ज्ञान अनन्त ज्ञान है जो समस्त लोक (विश्व) व अलोकको प्रत्यक्ष जानता है, जिनका दर्शन है, जिनका आनन्द अनन्त आनन्द है, जिनकी शक्ति अनन्त शक्ति है। ऐसे ही अनन्त ज्ञान दर्शन आनन्द शक्ति रूप अपना स्वभाव है। इस अनन्त स्वभावके विकासको रोकनेवाला साक्षात् आवरण तो राग द्वेष मोह भाव है और निमित्तभूत आवरण ज्ञानावरणादि कर्म हैं। सो राग द्वेष मोह भाव व ज्ञानावरणादि कर्मोंके दूर होते ही यह आत्मा कार्यपरमात्मा हो जाता है जैसे कि सूर्यकी किरण प्रभा तो अतुल सामर्थ्यवाली है, परन्तु मेघपटलका आवरण होनेसे उसका विकास रुका हुआ है, ज्यों ही मेघपटल दूर हो जाता है त्यों ही वह सूर्य-प्रभा अतुल विकसित हो जाती है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लोकमें भी ऐसी प्रसिद्धि है कि परमात्मा घट-घटमें रहता है अर्थात् प्रत्येक देहोमें बसता है। सो इन देहों आत्माओंसे भिन्न कोई एक परमात्मा इन देहोंमें नहीं बस रहा है, क्योंकि यदि ऐसा कोई एक इन देहोंमें बस रहा होवे तो प्रथक् प्रथक् देहोंके बीचमें अन्तराल होनेसे परमात्मा खण्ड खण्ड रूपमें हो जायेगा। ये आत्मा (देहों) ही परमात्मस्वभावको रख रहे हैं यह परमात्मस्वभाव हम सबमें शक्तिरूपसे है, व्यक्तिरूप (पर्यायरूप) से तो हम सब संसारी दुःखी हैं। फिर भी जो महात्मा अपनेमें अनादिसिद्ध बसे हुए शक्तिरूप परमात्मतत्त्वका दर्शन अन्तर्ज्ञानसे कर लेते हैं वे आनन्दमग्न हो जाते हैं। ऐसा परमात्मा हम सबमें, घट घटमें रहता है। उसके दशनका उपाय अन्तर्ज्ञान है। इसका वर्णन इस ग्रन्थमें विस्तृत किया है। सो इस ग्रन्थका स्वाध्याय प्रमादरहित होकर रुचि-पूर्वक करना चाहिए। अन्तर्ज्ञानसे ही सत्य आनन्दकी प्राप्ति होगी। यहां पुत्र, मित्र, बन्धु, स्त्री, वैभव, इज्जत आदि जिन जिन चीजोंका संयोग हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा अतः इन समागमोंमें आसक्त नहीं होना और ध्रुव, सहज स्वभाव रूप निज परमात्मज्योतिके दर्शन करनेके लिये अन्तर्ज्ञानकी प्राप्तिमें उद्यम करना मुमुक्षुका मुख्य कर्तव्य है।

जैसे धातुपाषाणमें (स्वर्णपाषाणमें) सुवर्णको आंखोंसे देखो तो नहीं मिलेगा, हाथोंसे बटोरना चाहो तो सुवर्ण नहीं बटोरा जा सकता, किन्तु औषधि, अग्नि ताप आदि उपाय करनेसे जब उसमेसे परवस्तुका सयोग दूर हो जाता है तब उसमेंसे स्वर्ण प्रकट हो जाता है और धातु पाषाणके समय भी विवेचक यन्त्रों द्वारा सुवर्णत्व अंश समझना चाहो तो समझा जा सकता है। इसी प्रकार हम सब कारण परमात्माओंमें परमात्माको किसी इन्द्रियसे जानना चाहो या ग्रहण करना चाहो तो न जाना जा सकता है और न ग्रहण किया जा सकता है, किन्तु ज्ञान, श्रद्धान, ध्यान समाधिके उपाय बननेसे जब पर वस्तु व परभावका संयोग दूर हो जाता है तब कारणपरमात्मा (आत्मा) में से कार्य परमात्मा प्रकट हो जाता है अर्थात् यह आत्मा परमात्मा बन जाता है और इससमय भी विवेचक अन्तर्ज्ञान द्वारा समझना चाहो तो यह परमात्मस्वरूप समझा जा सकता है।

जैसे स्वर्णपाषाणमें स्वर्णत्व शक्ति है तभी स्वर्णपाषाणमेंसे सुवर्ण प्रकट होता है इस प्रकार हम सब आत्माओंमें परमात्मत्वशक्ति है तभी हममेसे परमात्मत्व प्रकट हो सकता है। परमात्मा कहते किसे हैं? जिस आत्मा में गुण तो परिपूर्ण विकसित हो गये हों और दोष लेश भी न हों वह परम आत्मा अर्थात् परमात्मा है। देखो— जीवोंमें से किसीमें रागद्वेष आदि दोष कम है, किसीमें और कम है, किसीमें और कम है तो इससे साबित होता है कि किसीमें दोष बिलकुल भी नहीं रहते। और देखो—जीवोंमें से किसीमें ज्ञान अधिक है किसीमें ज्ञान और अधिक है, किसीमें और अधिक है तो इससे साबित होता है कि किसीमें ज्ञान परिपूर्ण भी है। देखो—दोष तो हैं औपाधिक याने कर्मके उदयसे होनेवाले, अतः उसकी तो हानि हानि होकर बिलकुल अभाव होता है और ज्ञान है स्वाभाविक, अतः उसकी वृद्धि होकर बिलकुल परिपूर्णता हो जाती है। इसका कारण यह है कि किसी द्रव्यके शुद्ध (केवल) रह जानेपर औपाधिक भाव नष्ट हो जाते हैं और स्वाभाविक भाव परिपूर्ण हो जाते हैं। इस प्रकार जो गुणोंसे परिपूर्ण है और दोषोंसे रहित है वही परमात्मा है। ऐसा परमात्मस्वभाव हम सबमें है इसी नाते परमात्माकी भक्तिकी जाती है। परमात्माके गुणोंमें अनुराग करनेसे आत्मशक्तिका अनुभव होता है और विकास होता है। परमात्मा सहज पूर्ण ज्ञान और सहज पूर्ण आनन्दमें मग्न हैं। भक्तजन उनकी उपासना करके अपने ही स्वयंका सहज ज्ञान और आनन्दका विकास स्वयं कर लेते हैं।

इस संसारी जीवके साथ अनादि परम्परासे चले आये हुए पौद्गलिक कर्म-प्रकृतिका बन्धन है और इसी प्रकृतिको निमित्त मात्र करके कषाय, संकल्प, विकल्प रूप, भावकर्मका बन्धन है। ये दोनों प्रकारके बन्धन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परमात्मस्वभावके ध्यान रूपी अग्निसे भस्म हो जाते हैं। इनमेंसे भावकर्मका बन्धन तो उस प्रकारकी आत्मपरिणति का व्यय होनेसे नष्ट हुआ समझना। द्रव्यकर्मका बन्धन पुद्गल पिण्डमें कर्मत्व पर्यायका व्यय होनेसे नष्ट हुआ समझना। आत्माके शुद्ध परिणामको निमित्त पाकर अथवा भावकर्मके व्ययको निमित्त पाकर द्रव्यकर्मका बन्धन नष्ट हुआ है। इसकारण द्रव्यकर्मका भस्म होना उपचारसे (उपचरित असद्भूत व्यवहारसे) कहा जाता है और भावकर्म का भस्म होना निश्चयसे (अशुद्धनिश्चय नयसे) कहा जाता है। शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें बन्ध व मोक्ष हैं ही नहीं, कारण कि शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमें वस्तु सनातनस्वभावमात्र दीखती है।

जो महात्मा भावकर्म और द्रव्यकर्मरूपी कलङ्कोंको ध्यानरूपी अग्निके द्वारा जला करके नित्य निरञ्जन ज्ञानमय हुए हैं ऐसे परमात्माको नमस्कार किया जा रहा है। वस्तुत: कोई किसी अन्यको नमस्कार नहीं कर सकता, भक्त अपने ज्ञानपरिणमनरूप अपने कार्यमें उस प्रकार परिणत हो रहा है। प्रभुस्वरूपका यथार्थ भावनमस्कार इसी नजमें अभेद रूप होता है। नमस्कार होओ। यह ध्यानरूप अग्नि अन्य कुछ नहीं परमात्मस्वरूपका अभेद स्मरण है। परमात्मस्वरूपके अभेद स्मरणमें, अभेदानुभावमें ऐसी अतुल शक्ति है कि तब भावकर्मका विलय तो होता ही है किन्तु उसको निमित्त मात्र पाकर द्रव्यकर्मका भी विलय हो जाता है। इस प्रसंगमें ध्यानके चार भेद समझ लेना चाहिये—(१) पदस्थ, (२) पिण्डस्थ, (३) रूपस्थ, (४) रूपातीत। मन्त्रवाक्योंमें तो पदस्थ ध्यान होता है, निज आत्माके चिन्तवनमें पिण्डस्थ ध्यान होता है, सकल परमात्माको विषय करके शुद्ध चिद्रूपके ध्यानमें रूपस्थ ध्यान होता है और निरञ्जन शुद्ध, केवल, सिद्धस्वरूपके ध्यानमें रूपातीत ध्यान होता है।

परमात्मस्वरूपका अभेदस्मरण उत्कृष्ट पिंडस्थ ध्यानमें होता है, उसका कारण रूपातीत ध्यान हो सकता है, उसका कारण रूपस्थ ध्यान हो सकता है, उसका कारण पदस्थ ध्यान हो सकता है। पिण्डस्थध्यानमें पार्थवी आग्नेयी मारूती व पायसी धारणायें होती है जिनका विवरण प्रसंगवश आगे किये जानेका ख्याल है वे धारणायें यद्यपि एक साधन हैं तथापि व परमात्मस्वरूपके अभेदस्मरणरूप ध्यान नहीं हैं। वर्तमानमें देह देवालयमें स्थित अभेद चित्स्वभावमात्र निज चित्पिण्डका अभेदानुभव ही परमात्मस्वरूपका अभेदानुभव है और यही उत्कृष्ट पिण्डस्थ ध्यान है। अथवा निज शुद्ध आत्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठान (रत होना) रूप जो अभेदरत्नत्रय, तदात्मक जो निर्विकल्प समाधि उससे उत्पन्न हुआ जो निर्दोष सहज परम आनन्द उसका अनुणव वर्तना ही परम ध्यान है। इस ध्यानके द्वारा जो नित्य, निरञ्जन, ज्ञानमय हुए हैं ऐसे परमात्माको मेरा नमस्कार हो।

परमात्मा नित्य है, परमात्म द्रव्य नित्य है। कुछ न था और परमात्मा हो गया हो ऐसा नहीं है। परमात्मा होकर वह नष्ट हो जाय ऐसा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य स्वत: सिद्ध है अत एव नित्य है। चित्स्वरूप द्रव्य नित्य है। परमात्मा नित्य है, वही द्रव्य परमात्मपनको प्राप्त हुआ है अत: नित्य है। परमात्मा नित्य है, परमात्मा द्रव्य नित्य है। यद्यपि सूक्ष्म दृष्टिसे देखो तो परमात्मपरिणति प्रतिक्षण नवीन-नवीन समान समान हो रही है तथापि यह असंदिग्ध है (इसमें कोई संदेह नहीं हैं) कि इसी प्रकार समान समान शुद्ध परिणमन, एकस्वरूप परिणमन सदा-काल (अनन्तकाल) तक चलता ही रहेगा। अत: परमात्मा नित्य है।

परमात्मा निरञ्जन है। कर्म, रागादिदोष, शरीर और विस्रसा उपचित (स्वयं इकट्ठा होकर आत्मा के साथ रहने वाला स्कन्ध) स्कन्ध आदि किसी भी परद्रव्य व परभावका संपर्क नहीं है और न भविष्यमें कभी संपर्क हो सकता। अत: परमात्मा निरञ्जन है। इस भयसे कि संसारके आत्माओंमें से शुद्ध मुक्त होकर परमात्मा बनते जावेंगे तो कभी संसार खाली हो जायेगा मुक्तको फिर किसीके द्वारा कर्माञ्जन लगवा देनेकी कल्पना करना योग्य नहीं है। यह भय नहीं करना चाहिये कि संसार खाली हो जायेगा और खुदको संसारकी प्रीति छोड़ देना चाहिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संसारमें जीव अनन्तानन्त हैं। अनन्त उसे कहते हैं कि जिसमेंसे अनन्त भी निकाल दिये जावें तब भी अनन्त शेष रहते हैं। अनन्तको और अनन्तकी इस व्याख्याको सभीने माना है। इस लोकमें अनन्तानन्त जीव तो सूक्ष्म शरीर वाले हैं। एक एक शरीरके आश्रय अनन्त जीव हैं ऐसे अनन्तानन्त जीव हैं, फिर स्थूल (किन्तु अदृश्य) शरीर वाले भी ऐसे ही प्रकारके अनन्तानन्त जीव हैं। फिर व्यवहारमें आनेवाले जीव भी असंख्यतासंख्यातों हैं। इन सब जीवोंमेंसे जिन जीवोंका भवितव्य उत्तम है ऐसे अनन्तों आत्मा परमात्मा हो गये हैं और होते रहेंगे फिर भी सदा अनन्तानन्त जीव संसारमें रहेंगे। इसका स्थूल व प्रबल प्रमाण यही है कि अनादिकालसे अब तक मुक्त होते आये हैं फिर भी जगतमें अनन्तानन्त आत्मा हैं। मुक्त शुद्ध आत्मामें अपराध बिना कर्माञ्जन लग जाय यह तो नीति, न्यायके विरुद्ध बात है और फिर परमात्मापर (मुक्त जीवपर) ऐसा अन्याय हो जाय, यह तो किसी विवेकीके चित्तमें जमना कठिन है। परमात्मा निरञ्जन हैं, सर्व प्रकारसे निरञ्जन हैं।

परमात्मा ज्ञानमय है। आत्मद्रव्य ज्ञानस्वभाव ही है। ज्ञान आत्माका अभिन्न स्वरूप है। मलिन अवस्थामें ज्ञानका जो अपूर्ण, अस्थिर विकास है और साथ ही रागद्वेष होने वाला संकल्प विकल्प है उसे दुःखका हेतु देखकर ज्ञान ही दुःखका कारण है और वह नष्ट हो जाने वाला है ऐसा आशय रखकर मुक्त जीवको ज्ञानरहित मानना स्वभावका घात करना है। ऐसा है ही नहीं। प्रत्युत बात यह है कि जैसे आवरण व दोष हटते जाते हैं वैसे-वैसे ही ज्ञानादिस्वभावोंका विकास बृद्धिगत होता जाता है। परमात्माका तो ज्ञान त्रिकाल त्रिलोकवर्ती सर्व द्रव्य, पर्यायको जानता है। परमात्मा ज्ञानमय है परिपूर्ण ज्ञानमय है, अनन्तज्ञानमय हैं, केवल ज्ञानमय हैं, सर्वज्ञ हैं।

जो आत्मा ध्यानाग्निके द्वारा कर्मकलङ्कोंको जलाकर निरंजन ज्ञानमय हुए हैं उन परमात्माको नमस्कार होओ। नमस्कार नम जानेको, उपासना करना या शरण ग्रहण करना नमस्कार। नमस्कार निश्चयसे तो परमात्माके केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंका स्मरणरूप होता है। क्योंकि उपासक निश्चयसे अपना ही तो कोई परिणमन बनावेगा, पर पदार्थका तो कुछ किया भी नहीं जा सकता। इस नमस्कारको भावनमस्कार कहते हैं। इसमें भी क्रिया कारकका सम्बन्ध आगया अतः यह भावनमस्कार शुद्धनिश्चयनयसे कहा जा सकता। सशरीर अथवा अशरीर जो परमात्मा हैं उनको वचनों द्वारा नमस्कार करना अथवा सिर झुकाकर करना व मनके विकल्पोंसे नमस्कार करना आदि सब द्रव्यनमस्कार हैं। द्रव्यनमस्कार व्यवहारनयसे होता है क्योंकि यहाँ एक ही पदार्थकी चर्चा न रही, भक्त और परमात्मा ऐसे दो आत्मपदार्थोंमें क्रियाकारकसम्बन्ध हो रहा, किन्तु यह व्यवहारनमस्कार भी ग्राह्य व्यवहार है। वस्तुतः तो वहां भी उपासक अपना ही परिणमन कर रहा है। शुद्धनिश्चयनयसे उपासक व परमात्माका न तो सम्बन्ध है और न उपासकके परिणामोंको (शुद्ध न होनेसे) शुद्धनिश्चयनय विषय करता है। अतः शुद्धनिश्चयनयसे वन्द्यवन्दकभाव नहीं बनता। तथा परमशुद्धनिश्चयनयसे तो वन्द्यवन्दक भाव है ही नहीं। परमशुद्धनिश्चयनय तो अखंड निर्विकल्प, सनातन, केवल ध्रुवस्वभावको या स्वभावमय वस्तुको विषय करता है।

इस मंगलाचरणके पदोंका अर्थ तो स्पष्ट ही है। वाक्योंमें पदोंके अर्थ तो होते हैं, किन्तु महापुरुषोंके वाक्योंमें चार प्रकारके अर्थ और होते हैं—(१) नयार्थ (२) मतार्थ (३) आगमार्थ (४) भावार्थ। (१) नयार्थ—नय की दृष्टियों द्वारा विभागपूर्वक अर्थ करनेको नयार्थ कहते हैं। (२) मतार्थ—विधि या निषेधरूपसे अन्य मतोंका स्वरूप प्रगट कर देनेको मतार्थ कहते हैं। (३) आगममें, सिद्धांतमें कहे हुए आशयको प्रगट करनेको आगमार्थ कहते हैं। (४) उसमें ग्रहण करने योग्य क्या शिक्षा मिलती है, उसे भावार्थ कहते हैं।

इस मंगलाचरणमें नयार्थ किस प्रकार हुआ है सो कुछ प्रकट ही कर चुके हैं फिर भी उसके विवरणके यत्नमें प्रकारमें प्रायोजनिक नयोंका विवरण करते हैं—यहां नय ४ प्रकारसे जानना—(१) व्यवहारनय, (२) अशुद्ध-निश्चयनय, (३) शुद्धनिश्चयनय, (४) परमशुद्धनिश्चयनय। दो या दो से अधिक पदार्थोंका परस्परमें सम्बन्ध बताना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्रियाकारक भाव लगाना सो व्यवहारनय है। एक ही पदार्थके स्वरूपका अवगम करना निश्चयनय हैं उसमें जब अशुद्धपर्यायरूपसे अर्थात् किसी विकल्प भावसे अवगम होता है तब उसे अशुद्धनिश्चयनय कहते हैं, जब शुद्धपर्यायरूपसे अर्थात् निरुपाधि शुद्धपरिणमनरूपसे अवगम होता है उसे शुद्धनिश्चयनय कहते हैं, जब गुण पर्यायका भेद ही न करके केवल एक स्वभाव अथवा स्वभावमात्र वस्तुका अवगम होता है तब उसे परम शुद्धनिश्चयनय कहते हैं। तीनों प्रकारके निश्चयनयोंमें एक ही वस्तुके स्वरूपका अवगम है अतः पद्धतिभेदसे तीन प्रकारके होकर भी वे सब निश्चयनय ही हैं।

इस मंगलाचरणमें नयार्थ दो जगह प्रकट हुये हैं एक तो कर्मकलंकके दहनके प्रसंगमें और दूसरे परमात्माके नमस्कार प्रसगमें। द्रव्यकर्मका दहन व्यवहारनयसे है और भावकर्मका दहन अशुद्धनिश्चयनयसे है शुद्ध निश्चयनयकी विषयभूत परिणति शुद्धपरिणति है उसमें दहनका काम ही नहीं, और परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमें स्वभावमात्र वस्तु है उसमें बन्ध मोक्ष दोनों ही नहीं हैं। दूसरा प्रसंग है नमस्कारका—नमस्कार दो प्रकारके कहे गए हैं—(१) द्रव्यनमस्कार (२) भावनमस्कार। द्रव्यनमस्कारमें तो भक्त व परमात्मा दो पदार्थोंका क्रियाकारक सम्बन्ध व्यवहृत हो रहा है, अतः द्रव्यनस्कार तो व्यवहारनयसे है और भावनमस्कार उपासककी केवलज्ञानादि अनन्त गुणोंकी स्मृतिरूप परिणति है सो भावनमस्कार अशुद्धनयसे है। शुद्धनिश्चयनयकी विषयभूत परिणति (शुद्धपरिणति) उपासकमें नहीं हैं, अन्यथा अर्थात् यदि उपासकमें शुद्धपरिणति हो तो वही परमात्मा हो गया, उपासक कहां रहा। शुद्धनिश्चयनयसे इसी कारण बन्द्यवन्दकभाव नहीं है। परमशुद्ध निश्चयनयमें तो स्वभावमात्र वस्तु है अतः वह तो बन्द्यवन्दकभाव असंभव ही है। इसतरह नयोंकी दृष्टियोंसे दहन और नमस्कारका विभागपूर्वक अर्थ खोला गया है।

अब इस मंगलाचरणमें मतार्थ किस तरह प्रकट हुआ है इसका विवरण करते हैं—परमात्मा नित्य है इस विषयमें क्षणिकवादका यह आशय है कि सब कुछ अनित्य ही है सो परमात्मा भी अनित्य है। परन्तु ऐसा यदि क्षण क्षणवर्ती पर्यायको ही माना जावे तब तो ठीक है क्योंकि पर्यायार्थिक नयसे प्रति क्षण नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती है। परमात्मामें यद्यपि वैसा ही वैसा परिणमन चलता रहता है तो भी है तो प्रतिक्षणका नवीन-नवीन परिणमन। सो पर्यायार्थिक नयकी विपक्षामें तो क्षणिकवादका आशय ठीक है, किन्तु द्रव्यको ही क्षणिक मान लिया जाय, यह तो ठीक नहीं है। परमात्मा व परमद्रव्य द्रव्यदृष्टिसे नित्य ही है। परमात्मा निरंजन हैं, इस विषयमें कर्तृत्ववादका यह आशय है कि एक सदामुक्त ईश्वर अन्य मुक्तात्माको भी सैकड़ों कल्प बीत जानेपर कर्मांजन लगाकर संसारमें गिरा देता है, इससे परमात्मा सांजन हो जाता है, परन्तु यदि कर्तृत्ववादसे परे होकर भूतनैगमनयकी अपेक्षासे परमात्माको सांजन कह दिया जाय तब तो ठीक है, क्योंकि भूतनैगमनयसे देखा जाय तो परमात्मा पहिले संसार अवस्थामें सकर्मा ही तो थे, सांजन ही तो थे, सो भूतार्थनैगमनयके कथनमें सांजनता तो ठीक है, किन्तु बिना अपराध परमात्माको कोई कर्मांजन लगादे, सांजन बनादे, यह ठीक नहीं है। परमात्मा सदाकाल तक निरंजन ही है। परमात्मा ज्ञानमय, इस सम्बन्धमें प्रकृतिवादका यह आशय है कि आत्माका स्वरूप मात्र चैतन्य है, ज्ञान नहीं, ज्ञान तो प्रकृतिका बिकार है सो प्रकृतिसे मुक्त हो जानेसे परमात्माको सुप्तावस्थाकी तरह ज्ञेयपदार्थोंका ज्ञान नहीं रहता, परन्तु ऐसा यदि क्षायोपाशमिक (ज्ञानावरण प्रकृतिके क्षयोपशमसे उत्पन्न हुए) ज्ञानका अर्थात अधूरे विभाव ज्ञानका अभाव हो जाता है इतना ही समझें तब तो ठीक है, क्योंकि परमात्माके समस्त ज्ञानावरण प्रकृतिका क्षय हो जानेसे अधूरा ज्ञान अर्थात् विभावज्ञान नहीं रहता। सो विभावज्ञानके अभावकी दृष्टिसे यह बात ठीक है, परन्तु कोई ज्ञान स्वभाव ही का अभाव माने तो वह ठीक नहीं है। ज्ञानस्वभावरहित आत्मा क्या? ज्ञानस्वभावरहित चेतना क्या? परमात्माके अधूरा औपाधिक विभावज्ञान नहीं रहता, किन्तु परिपूर्ण निराबाध अनन्त ज्ञान होता है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इस प्रकार परमात्मा ज्ञानमय है। इस तरह परमात्माके तीन विशेषणोंमें मतार्थ प्रकट किया गया है।

अब इस मंगलाचरणमें आगमार्थ क्या है इसका विवरण करते हैं—सिद्धान्तमें यह बताया गया है कि परमात्मा कर्मकलंकसे मुक्त, नत्य, निरंजन, अनन्तज्ञानमय आदि होते हैं वही बात यहां प्रकटकी गई है सो यह आगमार्थ हुआ।

इस मंगलाचरणमें भावार्थ क्या प्रकाशित है इस बातको देखिये—अनित्य सांजन, अज्ञानपरिणमन उपादेय नहीं हैं वह तो अशुद्ध स्वरूप है, क्लेशका कारण है। किन्तु नित्य निरंजन ज्ञानमय स्वरूप निज परमात्मद्रव्य उपादेय है। कल्याणके इच्छुक पुरुषोंको इस परमात्मद्रव्यकी निष्काम उपासना करना चाहिये। यह इस मंगलाचरणके दोहा का भावार्थ हुआ।

भैया ? हम सब ज्ञानस्वरूप हैं ? परमात्मा भी ज्ञानस्वरूप है। यदि हम अन्य झंझट न रखकर मात्र ज्ञानसे ज्ञानके स्वरूपको जानने चलें तो हमे ज्ञानमय परमात्मतत्त्वकी प्रसिद्धि हो सकती है। इस परमात्मतत्त्वके अनुभवका उपाय ज्ञान द्वारा ज्ञानका अनुभव करना है। यह ज्ञानवृत्ति श्रुतज्ञानकी शक्तिसे शक्त और मतिज्ञानकी वृत्तिसे प्रवृत्त होती है।

इन्द्रिय व मनसे जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं तथा पश्चात् लिखने पढ़ने विचारने आदिसे जो उसी पदार्थमें मतिज्ञानसे विशिष्ट ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। केवल ज्ञान जितने विषयको जानता है उतना ही विषय श्रुतज्ञानका भी है, किन्तु अन्तर केवल इतना है कि श्रुतज्ञान तो परोक्षको जानता है, किन्तु केवल ज्ञान प्रत्यक्ष सर्व, द्रव्य, गुण, पर्यायोंको जानता है।

यथार्थ ज्ञान जिसमें प्रकट है, वह अवसर मिलनेपर वैराग्यको प्राप्त हो मुक्त हो जायगा ! अशान्ति समाप्त करनेका उपाय आत्मामें ज्ञानका उपयोग करना है। प्राणीको कभी भी अतिज्ञानका अभिमान नहीं करना चाहिये। जीव जिस-जिस प्रकार अपने विकारी कर्मोंसे दूर होता जाता है उस प्रकार ज्ञानकी वृद्धि होती जाती है। निमित्तदृष्टिसे जीवका सबसे बड़ा शत्रु वह है जिससे वह मोह रखता है। इस प्राणीकी ऐसी विचित्र दशा हैं कि जिससे वह मोह रखे है वह यदि अन्याय या अनीतिका सहारा लिये हुये है तो भी उसीका पक्ष करता है। एक जमाना ऐसा भी था कि यदि अपना ही पुत्र आदि कोई भी अन्याय करता था तो न्यायका अविलम्बन ही किया जाता था बिना किसी भेदभावके। किन्तु आजकी दशा अति शोचनीय हो गई है। अत: मोहमें पड़कर प्राणी स्वयं दुर्गतिके कारण बनते हैं। अपने आत्मज्ञानके अतिरिक्त कोई भी संसारसे मुक्ति नहीं दिला सकता। मुमुक्षुको आत्माके स्वभावको समझते हुए शरीरादिको अपनेसे पृथक समझना चाहिये, जो बाह्य कर्म हैं उनको करते हुए की स्थितिमें भी आत्माके सहज चैतन्य स्वभावको समझते रहना चाहिये। तथा निर्णय रखना चाहिये कि परिग्रह व ममता ही विपदाके कारण हैं।

यदि प्राणी तीन बातें धारण करें तो उन्हें दुःखका कारण दूर करनेमें देर न लगेगी। (१) चैतन्य स्वभाव की प्रतीति ! (२) ब्रह्मचर्यका पालन ! (३) न्याय व प्रेमका व्यवहार !

कभी भी लोभ आदिमें पड़कर अन्याय नहीं करना चाहिये। सर्वदा सब प्राणियोंसे नम्रतासे प्रेममय व्यवहार करना चाहिये इन सब बातोंके होते हुये भी कभी भी न तो अपनेको सबसे तुच्छ समझना चाहिये। तथा न अपनेको सबसे, विलक्षण न बड़ा समझना चाहिये। थोड़ा ज्ञान होनेपर ही प्राणी अपनेको बहुत बड़ा समझने लगता है, किन्तु जैसे-जैसे वह ज्ञान प्राप्त करता जाता है वैसे ही वह अनुभूति करता है कि इतने विशाल ज्ञानके समक्ष मेरा ज्ञान बहुत ही कम है। संसारमें यदि प्राणीका सबसे बड़ा शत्रु है तो वह मोह माया है। भैया ! बुद्धिका अहंकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न करके विकल्मष निर्विकल्प परमात्मतत्त्वके दर्शनकी उत्सुकता रखकर इस ग्रन्थमें दिये गये महर्षिके उपदेशोंका हम चिन्तन करें।

जगतमें शान्ति केवल अपने आपमें प्रवेश करना ही है। अन्य कोई उपाय नहीं है! अपने आपमें प्रवेश करनेका बाह्य पदार्थोंसे हटनेका उपाय अपने स्वभावके विपरीत जो बाह्य हैं उनसे दूर रहना है। जगतके बाह्य द्रव्य अन्य हैं, चतुष्टयकी अपेक्षापूर्ण हैं। सो पुद्गल, धर्म-अधर्म आकाश काल व विभावोंसे हटना अपने स्वभावमें प्रवेश करना चाहिये। देखो—आत्मा जो भी कुछ करता है, अपनेमें अपने द्वारा अपने लिये ही करता है। बाह्य पदार्थ तो निमित्तमात्र हैं। उपादानका कार्य परिणमना है। मेरा लक्षण है ज्ञान-दर्शन। ज्ञान-दर्शनको परिणति जो कुछ करता हूं वह सब अपने लिये ही करता हूं। मैं पर-पदार्थोंका करने वाला नहीं हूं तथा न कराने वाला ही हूं और न अनुमोदन करने वाला हूं।

किसी कार्यका प्रयोजन जिसे प्राप्त हो, उसे करानेवाला कहते हैं, "कार्यप्रयोजकत्वं हि कारकत्वं जैसे नौकरसे कार्य कराना है। अब इसमें नौकरने जो कार्य किया उसका प्रयोजन किसे मिलना है, व्यवहारमें जो होता हो सो बताओ। नौकरने जो कार्य किया उसका प्रयोजन मालिकको मिला इस कारण कहा जाता है कि मालिकने नौकरसे काम कराया। जैसे मालिकने नौकरसे रसोई बनवाई तो रसोईका भोग तो मालिक करेगा, सो मालिकको प्रयोजन मिल जानेसे ऐसा कहा जाता है कि मालिकने नौकरसे काम कराया। यह तो व्यवहारकी बात हुई, परन्तु वहाँ भी वास्तवमें देखो तो नौकरने जो कुछ भी किया उस समस्त कायका प्रयोजन नौकरको ही मिलेगा, क्योंकि उसकी आकांक्षाएं उसी कार्य पर निर्भर हैं। यदि वह उस कार्यको पूर्ण कर लेगा तो उचित पारिश्रमिक पा लेगा अन्यथा नहीं। अतः नौकरका कार्य करनेसे ही प्रयोजन रखता है। और मालिक उस कार्यमें जैसा अपना भाव बनायेगा, वैसा फल उसे प्राप्त होगा मेरेसे बाहर मेरा कार्य पर पदार्थोंमें नहीं होगा। मेरा परिणमन स्वक्षेत्रसे बाहर परपदार्थोंमें न होगा। उस कार्यका प्रयोजन करनेवालेको ही मिलता है। यह प्राणी सुख, दुःख व आनन्दकी अनुभूति अपने अपने ही कार्योंसे प्राप्त करता है। मैं अपनेमें अपनेसे अपने आपको अपने लिए देखता हूं, मैं चेतता हूं इसीको चेतना कहते हैं। यह प्राणी अपने आपसे अपनी अनुभूतिका स्मरण करे तो इसके समक्ष सब ऐश्वर्य फीके पड़ते हैं, क्योंकि यह सत्य आनन्दस्वरूप है।

इस जीवने ऊंचे-ऊंचे पद प्राप्त कर सब भोगोंको भोगा किन्तु आत्माके आनन्दकी बराबरी कोई नहीं कर सका। अब, इसके समकक्ष सब भोग व ऐश्वर्य व्यर्थ है। मेरा साथ देनेवाला मेरा ही स्वभाव है। परपदार्थमें लगाव दुःखका कारण है, इस प्रकार प्राणियोंको सर्वदा विचार करना चाहिये। यह मेरा है, यह मेरी पत्नी है, यह पुत्र है इत्यादि परके विषयोंमें लगा हुआ अध्यवसाय दुःखका कारण है। सारी विपत्तियां इसी स्व परके एकत्वके अध्यवसायपर निर्भर हैं। यह अध्यवसाय समाप्त हो तो इसके समाप्त होते ही सारी विपत्तियां समाप्त हो जाती हैं। इसका कारण यह है कि सारी विपत्तियां इसीके पीठ पर रहनेसे जिन्दा हैं। एक बच्चोंकी कहानी है कि:—

एक जंगलमें एक सियार और सियारणीका युगल रहा करता था सियारणीको बच्चा जननेके लिये शेरकी गुफा पसन्द आयी तथा वहां पर उसने बच्चे जने। तब उन्होंने विचार किया कि शेरके आने पर बचनेका क्या उपाय है? सियारणीने सलाह दी कि तुम भीतके ऊपर चढ़कर बैठ जाओ तथा जब शेर आये तब इशारा कर देना। शेरके आने पर उपरोक्त कार्य किया गया। सियारणीने बच्चोंको रुला दिया तथा सियारके पूछने पर उत्तर दिया कि इन्हें शेरका मांस चाहिये। शेर यह सुनकर डर गया कि यह कौन मेरा भी मांस खाने वाला पैदा हो गया? धीरे-धीरे यह बात शेरोंके सामने आयी कि यह कौन हमारे ही घरमें सवाशेर आ गया जिसे हमारा मांस चाहिये। वे सब सलाह करने लगे कि जो कुछ बबाल है वह वृक्षपर रहने वाला ही है अतः क्यों न हम सब मिलकर उसको

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखें। तब यह समस्या सामने आयी कि उसके पास तक कैसे पहुंचा जावे, निर्णय हुआ कि एक दूसरेके ऊपर चढ़कर उसके पास पहुंचनेका रास्ता निकाला जावे, फिर समस्या यह हुई कि सबसे नीचे कौन रहेगा। काफी विचार-विमर्श के पश्चात् निर्णय हुआ कि सबसे नीचे लंगड़ा शेर रहेगा। निर्णयके अनुसार लंगड़े शेरको सबसे नीचे रखकर एकके ऊपर एक शेर चढ़कर उस सियार तक पहुंचना ही चाहते थे कि इतनेमें सियारणीने बच्चोंको रुला दिया। स्यारने पूछा कि बच्चे क्यों रोते हैं। स्यारणी बोली कि बच्चे कहते हैं कि हम लंगड़े शेरका मांस खायेंगे। इस बातको सुनकर लंगड़ा शेर नीचेसे खिसक कर निकल गया तथा सब शेर एकके ऊपर एक गिर गये। इसी प्रकार ज्ञान गुणके प्राप्त हो जाने पर अज्ञानके नष्ट होते ही विषय कषाय, राग, द्वेष अहंकारादि भाव स्वयं ही खिसक-खिसक कर नष्ट हो जावेंगे।

जब कि मैं चैतन्य स्वभाव वाला हूं, अन्य कुछ नहीं, तब इस लोकमें क्या भय है। मैं तो अनादिकालसे प्रकाशमान हूं। बाह्य पदार्थमें दृष्टि आने पर शंका हो सकती है। किन्तु मैं तो चैतन्य स्वरूप आत्मा हूं। एक क्षेत्राव-गाह सम्बन्ध होने पर पुद्गलके निमित्तसे सुख-दु:खकी प्रतीति होती है। वस्तुत: मैं अपनेमें अपना ही परिणमन करता हूं बाह्य ज्ञेयके अनुसार आकार होता है। सो आकारको जाना जाता है। विकल्पकी अपेक्षा व्यवहारमें रहते हैं। जैसे मैंने पुस्तकको जाना यह कहा, वहां वस्तुत: पुस्तकाकार विकल्प किया। जिस प्रकार दर्पणमें देखकर प्राणी सब कुछ बता देता है, उसी प्रकार मैं केवल अपने आपको जानकर सारे विश्वका वर्णन करता हूं। मैं अपने आपको केवल अपने द्वारा ही जानता हूं। प्रकाश आदिकी अपेक्षासे नहीं, बल्कि अपने ज्ञान भावके द्वारा जानता हूं। पुद्गल में स्थित इन्द्रियों द्वारा जन्य ज्ञान इन्द्रियों द्वारा होते हुए भी इन्द्रियोंसे नहीं होता, वह भी ज्ञानसे ही होता है। मैं जानता हूं, अपने लिये अपने द्वारा अपनेको अपनेसे जानता हूं। जाननेका फल भी आत्मको ही मिला और जनन क्रिया आत्मासे हुई। जैसे वृक्षसे पत्र गिरा। तात्पर्य यह कि स्थिर वस्तुओंसे कोई अंश विमुक्त हुआ! उसमें अपादान पंचम विभक्ति है। मैं चेतना स्वरूप ध्रुवतत्त्व हूं। आत्मस्वभाव ध्रुव है। यह मैं तो ध्रुव हूं और इसमें होने वाली परिणति एक मिटती है और दूसरी होती है अर्थात् पहली परिणतिसे हटकर नवीन परिणतिमें परिणमन करता हूं। जितने भी द्रव्य हैं उन सबमें परिणमन होता है, बिना परिणमनका कोई द्रव्य नहीं है। जाननेकी अपेक्षा देखना सूक्ष्म होता है किन्तु व्यवहारमें देखनेकी अपेक्षा जानना सूक्ष्म बताते हैं। जिसे देखना कहते हैं वह भी जानना ही है। समस्त वस्तुओंके सामान्य प्रतिभासको देखना कहते हैं। समस्त वस्तुओंका सामान्य प्रतिभास समस्त वस्तुओंके ज्ञाता के निराकार उपयोगको कहते हैं। ज्ञान और दर्शन मेरे सहज स्वरूप हैं। अत: विचार करना चाहिये कि मेरे प्राण तो ज्ञान दर्शन हैं उनका उच्छेद कैसे हो सकता है। मुझे जो सुख प्राप्त होगा वह सम्यक्ज्ञानसे ही होगा। इस प्रकार यह प्राणी सम्यग्ज्ञानको प्राप्त होकर बाह्य पदार्थोंसे दूर होता है तथा अपनेमें अपना ज्ञान करता है।

जो सिद्ध भगवान हैं उनसे उत्कृष्ट कोई नहीं है। तथा जो सिद्धका स्वरूप है वह मेरा भी है। लेकिन हम लोग मोहमें फंसकर संसार रूपी समुद्रमें गोते खा रहे हैं। जैसे कि शेर भेड़ियोंके बीच फंसकर विकल्पमें भेड़िया बन जाता है। वास्तवमें तो आत्मोपलब्धिका नाम ही सम्पदा है तथा इस सम्पदाके समक्ष सब धन, ऐश्वर्य, विभूति, रईसी व्यर्थ है। यह ऐसी रईसी है जिसमें आपत्तिका नाम नहीं है। ऐसा विश्वास कर, इसको उपयोगमें सिद्ध कर प्राणी सिद्धपनेको प्राप्त होते हैं, ऐसे सिद्धोंको मेरा नमस्कार हो। तथा जो आगे होंगे श्रेणिक आदि उन्हें भी मेरा नमस्कार होवे। संसारके उस पार पहुंचनेका नाम सिद्ध होना है, इसका तात्पर्य यह नहीं कि ३४३ राजूको पार करना है, अपितु संसाररूपी समुद्रसे मोह, माया, राग-द्वेषसे दूर होना है। भैया! जो संसाररूपी समुद्रमें गोते खारहे हैं वे कैसे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त कर सकते हैं। आकाश क्षेत्रमें जो सिद्ध भगवानके पास होंगे ऐसे निगोदिया

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव क्या अपने दुःखसे छुटकारा पा जाते हैं, नहीं, उन्हें वहाँ भी एक श्वासमें १८ बार जन्मना और १८ बार मरना होता है। वहां पहुंचकर दुःखकी कमी हो गयी हो, सो बात नहीं है। अपने अन्दर जो हमने विकल्पका जाल बुन रक्खा है वह साक्षात् विपदाको देने वाला है तथा वर्तमानमें भी उससे कोई सुख नहीं है किन्तु ऐसा पक्का रंग प्राणियोंके ऊपर चढ़ गया है कि यह अपनेको, जिस पर्यायमें है उसी रूपमें समझता है।

यह संसार अथाह समुद्र है इससे पार होनेका एक ही मार्ग है, वह यह कि जिस प्रकार संसारको समुद्र बनाया उसी प्रकार निर्विकल्प समता आदि भावोंको जहाज बनाकर इससे पार हो जावो, इससे अन्य कोई उपाय नहीं। संसारसे पार होनेका उपाय है तो बस यही है। प्रत्येक पदार्थमें ऐसी दृष्टि होनी चाहिये कि अमुक पदार्थमें अमुक गुण हैं, ये ही इसके सर्वस्व हैं, इसका इससे बाहर कुछ नहीं, उसी प्रकार मेरा गुण भी मुझमें है मुझसे बाहर मेरा कुछ नहीं, मैं भी तो एक पदार्थ ही हूं मेरा गुण भी मुझमें ही है इससे बाहर कुछ नहीं है। यदि ऐसी धारणा नहीं बनती तो सर्वश्रम व्यर्थ हैं। भाईयों विचार करना चाहिए कि सांसारिक विषयोंमें फसनेके लिये मैं तो किसी का कोच करु ? क्यों किसीसे झूठी अपनी बड़ाई सुनकर प्रसन्न होऊं। कुछ नहीं, मैं भी तो एक पदार्थ हूं। मेरा गुण भी मुझमें ही है इससे बाहर कुछ नहीं है। यदि ऐसी धारणा नहीं बनती तो सर्व श्रम व्यर्थ हैं। भाइयो ! विचार करना चाहिये कि संसारिक विषयोंमें फंसनेके लिए मैं क्यों तो किसीका सकोच करु ? क्यों किसीसे झूठी अपनी बड़ाई सुनकर प्रसन्न होऊं और यह बड़ाई करने वाला भी तो कल नहीं रहेगा। जो चेतन द्रव्य है उसमें कोई पाप नहीं है ऐसा विचारकर सब पर समता भाव पैदा करना चाहिये फलस्वरूप अपने अन्दर गुप्त परमात्माके दर्शन होंगे यह दर्शन रत्नत्रयका मूल है। सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान, सम्यक्‌चरित्रके उपायसे जो सिद्ध होंगे उन्हें मैं नमस्कार करता हूं।

ते वंदे खिरि सिद्धगण होसोंहि जे वि अणंत।
सिवमय निरुवमणाणमय परमसमाहि भजंत ॥२॥

अपनेमें जो अनन्त विपत्तियाँ लगी हुई हैं उन्हें दूर करनेके लिए अपनी आत्मामें अनन्त सिद्धोंकी उपासना करो। मैं समस्त सिद्धोंको नमस्कार करता हूं। अहो अनादिकालसे मोहमायामें फंसे रहनेसे मुझमें इतना मल चढ़ गया है कि उसे धोनेके लिए अनन्ते सिद्धोंकी अपनेमें उपासना करना आवश्यक हो गया है। अलंकारमे कहा जाता है कि मुक्तिलक्ष्मीका वर बनो। सो मुक्तिको बनाया लक्ष्मी (स्त्रीलिङ्ग) तो दूल्हा बननेके लिए १२ भावनाकी बनाओ बाहन तथा सर्व सिद्धोंको बनाओ बराती व परीषहजयको बनाओ श्रृङ्गार इस प्रकार इनसे सजकर दूल्हा बन, लक्ष्मीका वरण करो। फिर भी विषय, कषाय-क्रोध, मान, माया, लोभ आदि बाधा ढालने वाले होते हैं सो उसके लिए अपने बराती इतने शक्तिशाली रखो उनकी अधिक उपासना करो कि कोई बाधा न डाल सके। जिनको बराती बनाया वे ही हुए अनन्तेसिद्ध। उनकी उपासनासे फिर कोई आत्महितमें बाधा न डाल सकेगा।

सिद्ध भगवान परम कल्याणमय हैं। ज्ञानानन्दरससे ऐसे लबालब भरे हैं जैसे मिश्रीके डेलेमें सर्वत्र मधुराई भरी है। ये सिद्ध सब प्रदेशोंमें ज्ञानानन्दसे परिपूर्ण हैं। तथा वे अनुपम हैं। कोई सोचे कि क्या वे इन्द्रकी तरह आनन्दवाले हैं नहीं भैय्या ! इन्द्र तो माया विषयवासनामें रत है किन्तु सिद्ध भगवान इन सबसे परे हैं। अतः वे सर्व इन्द्रोंसे भी अधिक सुखवाले हैं। उनका ज्ञान आनन्दमय है व आनन्द निरूपम है। उनकी ज्योतिस्वरूप आत्मा है ऐसा ही अपना स्वरूप है कभी भी इस भ्रममें मत पड़ो कि ज्ञान व आचरणको छोड़कर मेरा अन्य कोई सहायक है। सोचो ! यदि ज्ञान व आचरण बिगड़गया तो जितने भी ये अन्तरंग मित्र देखते हो भले-भले साथी देखते हो, सबके सब मुंह फेर लेंगे ! कोई भी सहायक न होगा। ज्ञान व चरित्र ही आत्मबल देने वाले हैं अन्य कोई नहीं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरा ज्ञान सर्वदा निर्विकार बना रहे ऐसी कोशिश करनी चाहिये।

मैं उन सिद्धोंको नमस्कार करता हूं जो ज्ञानमय हैं। और जो आगे सिद्ध होंगे उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूं। सिद्धोंके सिद्धत्व प्रकट कैसे हुआ। जिन साधु संतोंने संसारसमुद्रसे तिरानेवाली समाधि नौकाका आश्रय लिया उन्होंने चतुर्गतिके दुःखरूपी क्षार जलसे परिपूर्ण संसारसमुद्रसे पार होकर सिद्धत्व प्राप्त किया। इस समाधि-भावमें अमूल्य रत्नत्रय अन्तर्निहित है। विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावात्मक निज शुद्ध आत्मतत्त्वका यथार्थ श्रद्धान यथार्थ ज्ञान व तदनुरूप आचरण ही मोक्षमार्ग है, रत्नत्रय है। यह रत्नत्रय परिपूर्ण समाधि है। इसमें विषय कषाय आदिक किसी भी विभावके प्रवेश पानेको छिद्र नहीं है। इस समाधिबलसे ही शुद्धात्माकी भावनासे उत्पन्न सहज आनन्द अमृतका सेवन होता है। सो साधु परमेष्ठियोंने इस परम पावन समाधिभावके अवलम्बनसे सिद्धत्वकी प्रभुता प्रकटकी है।

ये सिद्ध भगवान लक्ष्मी और विभूतिसे युक्त हैं। यह "लक्ष्मी" शब्द स्त्रीलिङ्ग है इसका अर्थ भी लक्षण है तथा नपुंसक लिङ्गमें जो लक्ष्मीका लक्ष्म बनेगा उसका अर्थ भी लक्षण है। अर्थात् लक्ष्मी और लक्ष्म दोनों शब्द एक ही अर्थके द्योतक हैं। मेरा लक्षण ज्ञानदर्शन है यही लक्ष्मीका तात्पर्य है। लक्ष्मी उसको समझते हैं जो धन बरसाती हो उसे एक प्रकारसे देवी मान लिया है। पहिले तो मनुष्य जानते थे कि मेरा ज्ञान लक्ष्मी है। इसीसे भला होता है। वैभव-विभवसे बनता। वि=विशेष रूपसे भव=होना! अर्थात् विशेष रूपसे होनेके परिणामका नाम वैभव है। मुझमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र ये ही विशेष रूपसे मुझमें होंगे। यदि बुरे होंगे तो विकृत हो सकते हैं, विशिष्ट होंगे तो निर्मल पनेको प्राप्त हो जावेंगे। उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, सिद्धोंमें हैं। अतः मैं उन सब सिद्धोंको नमस्कार करता हूं।

भैया विचार करो कि हम भी वीतराग द्वारा बताये हुए मार्गके अनुसार इस दुर्लभ रत्नत्रयको प्राप्तकर मुक्त होंगे। जो निर्दोष, ज्ञानघन व आनन्दमय हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं।

रागद्वेष जब तक है तब तक यह जीव भटकता रहता है, रागद्वेष वश होकर इतनी कषाय रखते हैं प्राणी, कि अपने दुःखके शमनके लिये दूसरोंके प्राण तक भी नष्ट कर सकते हैं। एक जगह एक सेठानी अपनी पड़ोसिन गरीब औरतसे झगड़ रही थी। सेठानीने गरीब औरतके बालकको पीट दिया तो उस बालककी मांको इतना अधिक क्रोध आया कि तीन दिन तक खाना पीना कुछ नहीं लिया तथा क्रोधके कारण चेहरा भी विकृत रहा। एक दिन उसको सेठानीका लड़का मिलगया। उसने उसे किसी प्रकार फुसलाकर टुकड़े-टुकड़े काटकर गाड़ दिया। अदालतमें मुकदमा पहुंचनेपर उसने बयान दिया कि मैं तीन दिन तक क्रोधके कारण खाना नहीं खा सकी। जब इसके लड़केको काट कर दाब दिया तब मुझे शान्ति मिली। बताओ कितनी तीव्रकषाय है यह? अतः हे भाइयो! रागद्वेष जब तक साथमें है तब तक आत्माका आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता अतः रागद्वेषसे दूर होओ वीतरागपनेको ही सिद्धि कहते हैं, इसी वीतरागपनेको प्राप्त करनेके लिए मन्दिर जाते हैं तथा सामायिक आदि पुण्य के काम करते हैं। इनसे हमारे खोटा उपयोग नहीं होता। निज आत्माकी पुष्टि ज्ञानसे होगी। तभी तो ज्ञानदानसे बढ़कर दुनियामें कोई महत्वका कार्य नहीं है। निजस्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जानेपर सब कल्पनाएं नष्ट हो जाती हैं तथा अलौकिक सुख प्राप्त होता है। अतः ऐसे ज्ञानका दान भी करो तथा दूसरों द्वारा ग्रहण भी करो! जिन्होंने अपने स्वभावको पहिचान लिया है तथा आत्माके आनन्दमें विभोर हैं ऐसे सिद्धोंको मेरा नमस्कार है। यह ग्रन्थ परमात्मप्रकाश है इसमें स्वयंका ही वर्णन है। स्वयं स्वयंके सहज आनन्दको जैसे प्राप्त कर सके जिससे सहजानन्दमय रह सके ऐसा पुरुषार्थ करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है। गृहस्थ हैं तो क्या हुआ उनके दो ही तो कार्य हैं—१ अपना उद्धार करना व अपनी आजीविका करना। अपनी आजीविका न्याय पूर्वक करनी चाहिये। तथा धर्मका पालन करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिये। इन दो बातोंको छोड़कर और सब धंधोमें व्यर्थ ही चिन्ता मत करो ? दूसरोंका भला बुरा सोचनेसे इस जीवको क्या फायदा है ? परोपकार करना भी यदि लक्ष्य शुद्ध हो तो धर्मपालनमें ही शामिल है। अब कर्मविमुक्त सिद्धोंको पुनः नमस्कार किया जा रहा है।।

ते हउं वंदउं सिद्धगण अच्छहिं जेवि हवंत।
परमसमाहिमहग्गिएं कम्मिंधणहं हुणंत ॥३॥

मैं उन सिद्धोंको जो परमसमाधिरूप अग्निसे कर्मरूपी ईन्धनको भस्म कर रहे हैं सिद्ध भक्ति द्वारा नमस्कार करता हूं। पहिले भूतकाल व भविष्य कालकी अपेक्षा वर्णन किया जा चुका है अब यहां वर्तमानकी अपेक्षा सिद्धोंका वर्णन है। वे सिद्ध भगवान पारमार्थिक हैं अर्थात् निर्दोष परमात्मा हैं जो परम समताभावका अविनाभावी हैं अर्थात् रागद्वेष रहित वीतराग, समताभाव युक्त है ज्ञानके अविनाभावी समताभावके बिना प्रभुकी उपासना नहीं की जा सकती, अतः मैं समता भाव धारण करके सिद्धोंकी पूजा करता हूं। जो सकल ज्ञानकी कलाओंसे रमणीक हैं ऐसे सिद्धोंको मैं नमस्कार करता हूं। जो समताभावका पूरक ज्ञान है वह अपनी आत्मामें ही मिलेगा। सिद्धोंकी तरह मेरा भी स्वरूप अनादि अनन्त एक स्वरूप सहज सिद्ध है। उसकी पूजा तो समतारसकी धारके द्वारा ही हो सकती है। रागद्वेषयुक्त होते हुए सहजसिद्धकी पूजा नहीं की जा सकती। अतः मैं अपने मनरूपी भाजनमें रखी हुई धारा के द्वारा सिद्धोंकी पूजा करता हूं। सहजसिद्ध स्वरूप अनादिकालसे लगे कर्मकलंकका नाश करने वाला है। हम लोगों को तो सहजपरमात्मतत्त्वकी महिमाको करनेकी क्या हस्ती। चार ज्ञानका धारी गणधर भी उनका वर्णन करनेमें अपनी जिह्वाको असमर्थ पाता है। अर्थात् गणधर भी उनके गुणोंका बखान कहनेमें समर्थ नहीं है। मैं सहजसिद्ध प्रभुको पारमार्थिक शक्तिके द्वारा नमस्कार करता हूं। इनकी महिमा अलौकिक है। जिसकी कोई उपमा नहीं, ऐसे ये सिद्ध भगवान हैं, अपने आपमें लीन हैं। ज्ञानज्योतिर्मय है इस प्रकार सिद्धोंके दर्शन करनेसे जो तरंगें उठती हैं वे अलौकिक सुखकी देने वाली है। मैं जैसा हो सकता हूं वैसा हूं अन्यथा नहीं, इसप्रकार विचार करना चाहिये।

भैया ! धनका गर्व एवं ज्ञानका गर्व करनेसे अपने स्वभावका, अपने आत्माका ज्ञान नहीं हो सकता। बड़े-बड़े जनोंको सहजप्रभुत्वके दर्शन न हों और मेंढ़क पशु-पक्षीको हो जायें ऐसा भी हो जाता है। क्योंकि अपने परिणामोंके कारण ही अपनी आत्माका स्वरूप जाना जा सकता है। जिस प्रकार कहा जाता है कि अधिक चतुर मनुष्य सब्जी लेनेमें ठगा जाता है, अर्थात् जो अधिक चतुर है उनसे कोई न कोई ऐसी भूल हो जाती है जिससे वह ठगा जाता है। ऐसे ही यह निश्चित नहीं कि जो बहुत बड़े पुरुष भी हैं उन्हें ही अपनी आत्माका स्वरूप मालूम हो, इससे विपरीत भी हो जाता है। स्वानुभवके लिए ज्ञानकी आवश्यकताके साथ-साथ सहजसिद्ध चरित्रकी भी आवश्यकता है। अर्थात् अपने उपयोगको उसी रूप परिणमन कराना है मैं सहजज्ञान द्वारा सहजआनन्द भावकी दृष्टिसे सिद्धोंको पूजता हूं, ऐसा भाव होना चाहिये। समस्त दोषोंको शुद्ध करनेमें समर्थ जो महत्त्वशाली अक्षय सहज ज्ञान भाव है उसके द्वारा सुबोधके निधान सहज सिद्धकी मैं पूजा करता हूं। सहज ज्ञान, किया हुआ ज्ञान नहीं अपितु सहज ज्ञान, जो अपने आप बोध होता है वही सहज ज्ञान है। सहज ज्ञान द्वारा ही सहज सिद्धके दर्शन होंगे। जिनकी अवधि नहीं है ऐसे प्रचुर गुणोंसे युक्त सिद्धोंको मैं पूजता हूं। सिद्धस्वरूपके स्मरणमें आत्मीय सहज धर्मोंका मिलन होता जा रहा है। यह साधर्म्यमिलन एक अपूर्व मिलन है। साधर्म्य वात्सल्यसे भी अलौकिक सुखकी प्राप्ति होती है।

एक राजाके दरबारमें नर्तकीका नृत्य हो रहा था, नृत्य देखने आये हुओंमें एक अन्धा भी था। अब जो संगीतको जानते थे वे भी गर्दन हिलाते जाते थे और जो नहीं जानते थे वे भी गर्दन हिलाते जाते थे, क्योंकि नहीं तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वे संगीत कलामें मूर्ख समझे जाते। अन्धा नृत्य गानके समय बोला कि यह जो तबला बजा रहा है इसका अंगूठा मोमका है, देखने पर मालूम हुआ कि वास्तवमें बात सत्य है। यह देखकर नर्तकी बहुत प्रसन्न हुई कि कोई तो संगीतका नृत्यका समझने वाला इस सभामें है। थोड़ी देरमें ऐसे ही नाचते-नाचते नर्तकीके चारों ओर एक भ्रमर आकर रमने लगा तथा वह चक्कर लगाते हुये नर्तकीके वक्षस्थल पर बैठ गया। अब नर्तकी हाथसे इसलिए नहीं उड़ाती कि हाथसे उड़ाने पर नृत्यमें कहीं भंग न पड़ जावे। अतः उसने नाचते-नाचते ही इस तरहसे एक प्रकारका स्वास लिया कि भौंरा उड़ गया, उस घटनाके अनुभवसे आनन्दित होते हुए अन्धेने अपना दुपट्टा नर्तकीके ऊपर फ़ेंक दिया क्योंकि गरीबीके कारण और कुछ तो उसके पास था नहीं। नर्तकी उसी दुपट्टेको सिर पर रखकर खुश होती हुई चारों ओर नाचने लगी। यह संगीत गुणानुरागका प्रेम है। इसी प्रकार धर्मात्माओंमें जो वात्सल्य होता है वह भी निरुपम होता है। मैं इन सहज रत्नमय सिद्धोंको सहज रत्नकी रुचियोंसे पूजता हूं। सहज रत्न उसे कहते है जो कि गुणोंमें प्रकाश करने वाला होता है। आत्माका विकास करने वाला जो निरवधि सहजरत्न है उसके द्वारा मैं सहज सिद्धकी पूजा करता हूं। जो परमसमाधि रूपी अग्निसे कर्म रूपी ईन्धनको जला रहा है ऐसा निर्दोष परमात्मस्वभावरूप जो परमात्मा है, मैं निर्विकल्प स्वसवेदन द्वारा उसकी पूजा व भक्ति करता हूं।

भैया सच जानो, यह मानव पर्याय मिलना अति कठिन है, उसमें भी जैन धर्मका समागम पाना महा दुर्लभ है और उसको पाकर भी योंही विषय कषायोंमें खोदेना बुद्धिमानीका कार्य नहीं है। अतः इन विषय कषायो को छोड़कर वात्सल्यभाव जगाओ तथा सहजज्ञान द्वारा सिद्धोंकी पूजा करो। इन कषायोंको जला डालो। भय्या जो आनन्द वात्सल्यमें है वह विषय कषायोंमें कहां है। अतः जब हमने मानवपर्याय पायी तो कमसेकम इतना तो लाभ पाते जायें कि सिद्धभगवानके दर्शन हो जावें। इस समय भी अनेकों आत्मा पांच महाविदेहोंसे सिद्ध हो रहे हैं वे वीतराग निर्विकल्प समतापरिणामके अविनाभावी निर्दोष परमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान अनुचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक समाधिरूप अग्निमें कर्मेन्धनकी आहुतियोंसे होम करते हुये कर्म मुक्त होकर सिद्ध हो रहे हैं ऐसे सब वर्तमान सिद्धोंको निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानरूप पारमार्थिक सिद्धभक्तिसे नमस्कार करता हूं। इस गाथामें यह भावार्थ प्रसिद्ध हुआ कि उपादेयभूत शुद्ध आत्मद्रव्यकी प्राप्तिका उपायभूत निर्विकल्प समाधि ही उपादेय है।

मैं उन सिद्धोंको नमस्कार करता हूं जो सिद्ध हो रहे हैं सिद्ध होते हुए ठहर रहे हैं। एक बड़ा होम करते हुए सिद्ध हो रहे हैं। होममें अग्निकी आहुति दी जाती है। यहां होममें निर्विकल्परूप समाधि हुई अग्नि तथा कर्म हुए ईन्धन अर्थात् निर्विकल्प समाधि रूपी अग्निमें कर्म रूपी ईन्धनोंको होम कर रहे हैं। अतः वे निर्विकल्परूप समाधि अग्निमें कर्मरूपी आहूतियोंके द्वारा होमकर समाधिमें ठहर रहे हैं। भैया ! सदा समताभावका आदर करना चाहिये। यहां पर कोई कहे कि यह तो मायाचार हुआ। यह शंका निर्मूल है। मायाचार तो उसे कहते हैं कि स्वार्थ की बुद्धिसे या ठगनेकी बुद्धिसे मनमें कुछ रखना बताना कुछ और करना कुछ। देखो ! असंयतसम्यग्दृष्टिके चारित्र व्रत, तप, संयम नहीं केवल श्रद्धा उसके है। तो श्रद्धा है स्वभाव और पद प्रवृत्ति विधेयक, यह तो मायाचार नहीं है क्योंकि यहां अन्तरङ्ग तो वैसा ही समताभावनाका है अतः मायाचार नहीं हुआ। मैं सिद्ध समान हूं। अतः चैतन्यभावका ही उपयोगी रहूं ऐसी भावना वालेके इस विवेकी मनमें यदि क्रोध होता है तो वह इसलिये कि क्रोधादि का उदय लगा हुआ है, हो जाता है, इसे मायाचारी नहीं कहते। वैसे तो जो उसकी भावना है उसे वह वैसा ही व्यक्त कर रहा है। धन्य है उस निर्विकल्प समाधिरूपी अग्निको जिसमें योगीजन कर्मरूपी ईन्धनको जलाते रहे हैं। ऐसी निर्मल श्रद्धा बनाओ कि सब आत्मा भगवानके स्वभाव वाले हैं। ऐसा श्रद्दान हो गया तो समझना चाहिये कि हमने बहुत बड़ी वस्तु प्राप्त करली है अन्यथा ये बाह्य उपकरण तो सब नष्ट हो ही जावेंगे। भैया सब जीव भगवान के स्वभावकी तरह चैतन्य स्वभाव वाले हैं, तथा मुझसे भिन्न हैं। फिर उन जीवोंमें छटनी करना कि यह मेरा है, यह तेरा है, यह सब मोह है, अन्य कुछ नहीं। सब पर क्षमा करनेका भाव बनाये रहो ऐसा करनेसे वात्सल्य भाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाग्रत रगा। उन जीवोंमें छटनी मत करो। राग-द्वेषकी भावना मत भावो। मेरा तो केवल मैं ही हूं मेरा कुटुम्ब मेरे गुण हैं। मेरा सहाय मैं हूं। मेरा वैभव उन गुणोंका विकास है। इससे अन्य मेरा क्या है कुछ भी तो नहीं। जैसे कोई बहुत बड़ा अफसर है वह जब तबादले पर कहीं जाता है तो प्राय: उसको कुछ भी दु:ख नहीं होता, क्योंकि जानेके लिये उसका मुफ्त प्रबन्ध हो जाता है। एक दो डिब्बे रेलवेके फ्री मिलते हैं। कामके लिये सरकारी नौकर मिल जाते हैं। फिर जहां जावेगा उसको आदर प्राप्त होगा, यहांका आदर तो बल्कि अब उतना है भी नहीं क्योंकि रहते हुए काफी दिन हो गये फिर अफसरोंका प्राय: जनसमूहसे प्रेम नहीं रहता। अत: इन सब परिस्थितियोंमें जब कि वह अपना चूल्हा चक्की तक सब साथमें ले जासकता है उसे क्या जाते हुए क्लेश होगा ? बिलकुल नहीं। उसी प्रकार ये ज्ञानी जीव भी इस पर्यायको छोड़कर अन्य पर्याय धारण करे तो क्या दु:ख है। जिसमें मैं बस रहा हूं, वे मेरे गुण तथा वही कुटुम्ब है। गुणोंका जो विकास है वही मेरी इज्जत है। ज्ञानी होनेके कारण मैं यहांके लोगोंसे अन्तरंगमें मोह बढ़ाता नहीं हूं फिर मुझे क्लेश क्यों, दु:ख क्यों। यह भी तो सोचो छोटी सी बात कि जितनी खुशी व पूंछ उस समय थी जबकि तुम पैदा हुए थे, क्या उतनी ही आज भी है आज तो तुम कमाते भी हो जबकि उस समय कमाते नहीं थे। आज वह पूंछ वह इज्जत नहीं जो जन्मके समय थी। खैर जो मेरा गुण है उसे तो मैं साथ ही ले जा रहा हूं। गुणोंके विकासको भी साथ ही लिये जा रहा हूं। अत: मुझे तो इस पर्यायको छोड़ते हुए कोई कष्ट नहीं होना चाहिये।

समता ही एक ऐसी अग्नि है जिसमें कर्म ईन्धन जलते हैं, अत: जीवों पर समताका भाव पैदा करो। अपने व्यवहारमें हमेशा समता ही प्रगट करो। अन्तरंगमें चाहे थोड़ी कमी हो किन्तु व्यवहारमें बराबर समताका भाव बनाये रखो। मेरे अन्तरंगमें भी तो समताकी भावना ही है बीचमें जो व्यग्रता आ गयी है उसे मैं मिटा लूंगा। व्यवहारमें असमता लानेसे शल्य बढ़ता है। अपनेमें जो भूलमल है उसे ज्ञानरूपी जलमें नष्ट करना चाहिये। इससे इस लोकमें भी सुखी होओगे तथा परलोकमें भी सुखी होओगे। अभेदरत्नत्रयको समाधि कहते हैं। अनादि अनन्त निर्दोष जो परमात्मत्व उसका ही अभेदरूप दर्शन-ज्ञान, वह हुआ समाधि उसमें ही योगीजन ठहरा करते हैं।

ज्ञानीका लक्ष्यबिन्दु सहज परमात्मतत्त्व ही होता है। ज्ञानी श्रावक पूजककी भी अन्तरकी आवाज यह है कि हे प्रभो यह मन्दिरका शुध्द स्थान है, ये पुष्पादि आठों द्रव्य शुध्द हैं ये आपकी मुद्रा भी शुध्द है, मैं भी शुध्द हूं ये सब कुछ होते हुए भी मेरे लिए सब चीजें एक ही हैं। जैसे द्रोणाचार्यने मोमकी चिड़िया पर निशाना लगानेके लिए अपने शिष्योंकी परीक्षा ली उन्हें कहा गया कि चिड़ियाकी आंखमें तीर मारना है। धनुष ताने हुए सबको पूछा कि क्या दिखता है। पूछने पर किसीने कहा कि मुझे सबकुछ दिख रहा है आदि-आदि किन्तु अर्जुनने कहा कि मुझे तो आंखके सिवाय कुछ नजर नहीं आता। अत: अर्जुन जी परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। उसी प्रकार ये पुजारी भी उसी दशामें उत्तीर्ण हैं जबकि वे समझे कि मैं एक ही हूं। यह सब वहां एक है, हम लोग तो पूजा करते समय बाह्यमें इतना ध्यान देते हैं कि कुछ हमसे छू तक न जाये। ऐसी दशामें यह भाव कैसे आ सकता है ? हां अभिषेकके समय पूर्ण शुध्दताका भाव रखना चाहिये तथा ध्यान रखना चाहिये। अब बादमें यदि कोई छू जाय तो उसमें हम क्या कर सकते हैं हमारे भाव तो पूर्ण शुध्दिके हैं।

पूजा करते समय चैतन्यमात्र परमात्मतत्व ही दीखना चाहिये। इस जाज्वल्यमान बलज्ञानरूपी अग्निमें मैं एकमन होकर सारी पुण्य सामग्रीको स्वाहा करता हूं। अलंकारमें एक चर्चा है मानो भगवान बोले हे प्राणी तू दस या ग्यारह आनेकी सामग्री स्वाहा करके ही ऐसा बोलता है कि समग्रपुण्यको स्वाहा करता हूं तब पुजारी बोला कि नहीं, मैं अपना सब ऐश्वर्य आदि भी स्वाहा करता हूं। भगवान बोले कि बाह्य वस्तुको त्याग कर क्या उदारता दिखायी। तब पुजारीने कहा कि मैं एक क्षेत्रावगाहकी तिजोरीमें रखे हुए पुण्यकर्मको भी स्वाहा करता हूं। वह भी जड़ है ऐसा रोकने पर फिर बोला कि मैं भाव पुण्यको भी स्वाहा करता हूं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ते पुण वंदउं सिद्धगण जे णिव्वाण वसंति।
णाणिं तिहुयणि त्रसयवि भवसायरिण पडंति ॥४॥

मैं उन सिध्दोंको नमस्कार करता हूं जो सबसे अधिक वजनदार हैं। अर्थात् सर्वज्ञ हैं वही हुए वजनदार। भारी वस्तु नीचेकी ओर गिरा करती हैं यह वस्तुका स्वभाव है किन्तु वे इनसे अधिक ज्ञानगुरु होनेपर भी संसार रूपी समुद्रमें नहीं गिरते हैं। उनके बराबर तीनों लोकोंमें कोई भारी नहीं। जो गुरु होकर भी भवसागरमें नहीं गिरते हैं ऐसे सिध्दोंको मैं नमस्कार करता हूं। तथा जो हमेशा निर्वाणमें विराज रहे हैं तथा जिन्होंने निज स्वरूप को पाकर कर्मोंका क्षय कर दिया है, जिन्होंने वीतराग, निर्विकल्पक ज्ञान स्वसंवेदन द्वारा आत्माको प्राप्त कर लिया है वे तीनों लोकोंमें गुरु होते हुए भी ऊर्ध्व लोकमें ठहरते हैं, अर्थात् तनुवातवलयके अन्तमें ठहरते हैं, उनसे ऊपर कोई नहीं है। उनके ज्ञानमें समस्त द्रव्य आगये उनके ज्ञानके बाहर कुछ नहीं है। प्रत्येक द्रव्यमें अनन्त गुण होते हैं वे भी उनके ज्ञानमें आगये। प्रत्येक गुणकी पर्यायें भी उनके ज्ञानमें आगयीं। प्रत्येक पर्यायमें अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं वे भी उनके ज्ञानमें आगयीं सर्वरस भी उनके ज्ञानमें आगया! इस प्रकार दुनियांमें जो तत्व हैं वह सब उनके ज्ञानमें आगया। उनसे बाहर कुछ नहीं। ऐसे वे लोक परलोकका प्रकाश करनेवाले स्वसंवेदन ज्ञानके कारण सिध्दभगवान बहुत गुरु हैं—भारी हैं। फिर भी संसार समुद्रमें नहीं गिरते।

निमित्त पाकर होनेको भव (संसार) कहते हैं। इस संसार रूपी समुद्रमें अनेक खतरे हैं। जैसे लहरोंके कारण पानीके जन्तुओंके कारण अगाध होनेके कारण, आदि-आदि कारणोंसे बहुत खतरनाक है ये समुद्र। उसी प्रकार यह संसार भी खतरेकी चीज है जन्म, बुढ़ापा, राग, द्वेष, कषाय आदि के कारण यह संसार समुद्र खतरोंसे परिपूर्ण है। बहुतसे प्राणी इस खतरेमें भी पड़े हुये हैं बहुतसे उभर भी गये हैं। इन खतरोंसे दूर होनेके कारण ही सिद्ध भगवान तीनों लोकोंके गुरु हो गये। जिनकी आराधनाकर हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु यह सब विचार करनेके लिये हमारे पास समय ही नहीं है, हम तो मोह मायामें पड़े हुये हैं, किसीसे राग, किसीसे द्वेष, किसीसे अपनत्व, किसीसे शत्रुत्व आदि भावनाओं-कल्पनाओंमें बह रहे हैं, जिनकी आराधना करनेसे डूबते हैं वही सब कर्म करते हैं। इन सबसे कालिमा ही लगती है अन्य कुछ नहीं। घरको चलानेके लिए सम्बन्धियोंके प्रति क्या कुछ तन मन धन सेवा करनेमें कुछ कमी करते, सभी उद्यम कर डालते हैं। ऐसे कार्योंके प्रति तो यह जीव उद्यम करता है किन्तु अपनी आत्माके अनुकूल भाव नहीं करता, उद्यम नहीं करता।

अब तो कल्याणके लिए प्रधान उपाय सत्संग और स्वाध्याय है। जैनोंकी अपेक्षा अन्य बन्धु सत्संगको बहुत महत्व देते हैं। किसीसे भी पूछो कि भाई कहांसे आ रहे हो? चाहे वह रामायण सुनकर आरहा हो, उत्तर यही देगा कि सत्संगसे आरहा हूं। पुजारी भी तो यही भावना कर जाता है कि शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्। सर्वस्यापि प्रियहित वचो भावना चात्मतत्त्वे सम्पद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽत्पवर्गः। हे प्रभु जब तक मुझे मोक्ष न हो, तब तक (१) शास्त्राभ्यास (२) जिनपतिनुति जिनकी स्तुति, प्रणाम, ध्यानादि, (३) संगति-सवदा आर्य पुरुषोंके साथ सज्जनोंका समागम (४) सदवृत्त कथा, (५) दोषवादमें मौन, (६) सबसे प्रियहित वचन, (७) आत्मतत्त्वकी भावना, आदि बातें बनी रहें। प्रत्येक गांवमें एक या दो सज्जन होते ही हैं, अतः जैनी भी यदि ज्ञानगोष्ठी बनाकर सत्संग करें अपने स्वभावकी चर्चा करें तो वात्सल्य भाव बढ़ता है।

यह संसारका समागम तो नष्ट होना ही है इसमें तो कुछ सार ही नहीं है। यह धन समाज भी नष्ट ही होनी है (१) या तो किसीको दान देनेसे (२) या मृत्यु हो जाने पर छूट जाय (३) या सामने बरबाद हो जावे। चार चोरी करलें आदि। फिर क्यों जीवनके ये थोड़ेसे क्षण इस आकर्षणमें लगाये जावें। अतः यही विचार करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिये कि हे प्रभु ! मुझे ऐसी शक्ति दो ताकि मैं न्यायपूर्वक अपनी आजीविका कर सकूं तथा धर्मध्यान कर सकूं। क्योंकि जिन परिणामोंसे पाप संचित किया जाता है वह तो अवश्य ही भुगतना पड़ेगा। अतः सबसे बड़ी बात यह है कि अपने भावोंको मलिन न होने देवें। ऐसा विचार करनेसे अपना जाता ही क्या है कि सब जीव सुखी होवें, सब पर मेरा क्षमाभाव रहे। और फिर ऐसे परिणाम रखना कि मैं इसका अनिष्ट कैसे करूं ? ये क्लेशको ही देने वाले हैं। अतः सब जीवों पर सुखी होनेकी भावना करना, अपने ऊपर ही करुणा करना है। अगर किसीके द्वारा कुछ अपनेको ठेंस भी पहुंचे तो भी यही सोचे कि इसका कल्याण हो सम्यग्दृष्टि जीव सग्राम करते हुए भी यही सोचते हैं कि इसका भी कल्याण हो जाये, इसे सद्बुद्धि हो जाये। अगर किसी प्रकार इसको सद्बुद्धि आ जाती है तो तुरन्त मित्रता भी हो जाती है।

भैया ! किसीका बुरा न सोचनेसे अपनी आत्मा पवित्र होती है और फिर मानलो अपने बुरा सोचनेसे उसका अनिष्ट हो ही गया तो अपनेमें क्या वृद्धि हो गयी। यदि ईर्ष्या ही करनी है तो मोक्षरूपी लक्ष्मीसे ईर्ष्या करो। इसमें ईर्ष्या करनेसे क्या लाभ कि मैं इससे अधिक रुपये वाला हो जाऊं। जो सबसे बड़ी वस्तु मोक्ष है उसके प्रति ईर्ष्या करो। यदि मैं किसीको शत्रु मानकर उस पर ईर्ष्या करूं तो यह निश्चय है कि मैं संसारके दुखों को भोगता रहूंगा। यदि किसीके प्रति बहुत पहिलेसे बुरा भाव बनाया हो तो उसे इसी क्षण छोड़ दो, जैसी बुद्धि हम मकान आदिको पूरा न बनने तक करते हैं कि इसे तो पूर्ण करना ही है। इस प्रकार परमार्थमें नहीं करते भैया, यह भावना बनाओ कि मैंने किसीके प्रति बुरा भाव बना रखा है तो उसे किस प्रकार जल्दीसे जल्दी छोड़ दूं। किन्तु इससे विपरीत ही मोहीजन सोचते हैं कि जिसको पालपोसकर बड़ा कर दिया उसका राग मैं कैसे छोड़ दूं। आचार्य कहते हैं कि परपदार्थमें राग द्वेषकी बुद्धि छोड़ने योग्य है। अपने अन्दरके क्रोध मान माया लोभ आदि बुरे भावोंको अपनेसे दूर कर दो। इनमें न तो सुख ही है और न ही अपने आत्माका कल्याण ही है।

तीन लोकमें गुरु होते हुए भी जो संसार समुद्रमें नहीं गिरते, ऐसे वे जो निर्वाण पद पर ठहर रहे हैं, उन्हें मेरा नमस्कार हो। वे निर्विकार रूप हैं, समाधानरूप हैं, चैतन्य स्वभावमय हैं तथा शुद्धरूप है इस प्रकारका परिणमनका पूरा अनुभव तो उसी स्थितिको प्राप्त कर लेने पर होता है। स्वरूपाचरण श्रद्धा, ज्ञान ठीक हो तो विकल्पोंसे ज्ञान हो जाता है। उसका वैभव फ़िर भी नहीं जाना जासकता, वह तो उसी अवस्थामें होकर यथार्थ जाना जा सकता है। यही निर्वाण पद उपादेय है कल्याणकारी है मुक्तिका साधक है। सम्यग्दृष्टि जीव यही विचार करता है कि जो सिद्ध स्वरूप है वह मुझे कब प्राप्त हो ? उसीकी बाट जोहता रहता है।

जो तीर्थंकर परमदेव भरत राघव पाण्डव आदिक पूर्व कालमें वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञानके बलसे शुद्ध आत्मस्वरूपको पाकर कर्मक्षय करके निर्वाणमें ठहर रहे हैं उन सबको नमस्कार करता हूं। यह निर्वाण पद क्या है—परमात्मस्वरूपका शुद्ध पूर्ण विकास है। यह निर्वाण पद उपादेय है यह अब इस दोहासे लेना चाहिये। अब इसके बाद व्यवहारसे व निश्चयसे दोनों प्रकारसे जो शुद्ध हैं, वे निर्वाणमें बसते हैं परन्तु निश्चय नयसे शुद्धात्म-स्वरूपमें ही ठहरे हैं इस तथ्यका प्रतिपादन करते हैं।

ते पुण बंदउं सिद्ध-गण जे णिव्वाणि वसंति।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिं विराल णियंत ॥५॥

मैं उन सिद्धोंको नस्कार करता हूं। जो सिद्धलोकके शिखर पर रहते हैं। यह व्यवहारनयकी बात है। निश्चयनयकी अपेक्षा सिद्ध आत्मा अपने आपमें विराजमान हैं। जो आत्मामें बसते हुए भी लोकालोकके समस्त द्रव्योंको जानते हैं मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। सिद्ध एक द्रव्य है और शिखर एक द्रव्य है। निश्चयनयकी अपेक्षा आत्मामें जितने भी गुण हैं उनकी क्रिया आत्मामें ही होती है। आत्माके ज्ञान गुणकी क्रिया आत्मा ही में होगी। ज्ञानका अर्थ है जानना। ज्ञानका परिणमन परपदार्थमें नहीं हो सकता आत्मामें ही परिणति होगी अंन्यमें नहीं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे कि क्रोध करनेका अवसर अपने पर ही होता है। परका जानना उपचार व्यवहार है स्वका जानना व ज्ञायकत्व निश्चयनय है। जैसे दर्पणके पीछे अनेक आदमी हैं उसमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है। दर्पणमें जो परका प्रतिबिम्ब हुआ यह है व्यवहार दर्पणमें जो निजी स्वच्छता है जिसके बल पर प्रतिबिम्ब पन पाया जाता है। वह बात निश्चय है। प्रतिबिम्बरूप परिणमन व्यवहार है। दर्पणमें अमुक आ गया, यह हुआ उपचार। उसी प्रकार आत्मामें जो ज्ञान शक्ति है वह निश्चयनय है! ज्ञेयाकार व्यवहारनय हैं। मेरे ज्ञानमें बम्बई आ गयी आदि, यह हुआ उपचार। मैं अपना ही परिणमन कर सकता हूं। यहां नमस्काररूप परिणमन भी एक मेरा ज्ञान परिणमन है जिसका सम्प्रदान मैं हूं अत: मैं कर्मक्षयके लिए सिद्धज्ञेयाकार परिणमनरूप नमस्कार करता हूं।

हे जिनेन्द्र भगवान! मैंने शुभअशुभ भाव जो भव-भवमें किये उनके फलस्वरूप अनन्त कर्मोंका जाल बंध गया है वह मरनेपर भी नहीं छूटता साथ ही जाता है। हममें जो परद्रव्यके प्रति रागद्वेष विभाव भरे हुए हैं विपदा के कारण हैं। मेरे मात्र यही अभिलाषा है कि रागद्वेष छूटे, मोहमाया मिटे क्योंकि ये दु:खोंके देने वाले हैं। एकी-भाव स्तोत्रमें बताया है कि भव भवमें मेरे द्वारा जो कर्म जाल बनाया गया एकत्रित हुआ ये सब कर्म जाल भी भगवानकी भक्ति करनेसे नष्ट हो जाते हैं किन्तु भगवानपर श्रद्धा होय तब तो। ऐसी भक्ति करे कि भगवानके गुणों में अपना भावरस एकमेक हो जावे।

वैसे तो भैया! भक्ति सभी करते हैं, जिसका जिसमें उपयोग लगे उसके लिए वही भक्ति है, जैसे पिता भक्ति, स्त्री भक्ति, पति भक्ति, भगवद् भक्ति। अब सोचो कि हमारा पुण्य भी ठीक है जो हम जैनकुलमें पैदा हुए। आजीविका भी ठीक ही चल रही है, स्वास्थ्य भी ठीक है, ग्रन्थोंका अध्ययनभी ठीक है, उपदेश भी ठीक ग्रहण कर रहे हैं। जब चाहे ऋषिमुनियोंका भी समागम हो ही जाता है। ऐसी स्थितिमें कुछ सही तो निर्णय करो कि कौन सा कार्य हमें सुख पहुंचा सकता है। परदृष्टि रखनेसे दु:ख ही होगा। क्या परद्रव्यमें मोह रखनेसे गुजारा हो जावेगा? भय्या! इन सबसे पूरा नहीं पड़ेगा। स्वात्मभक्तिसे ही भला होगा। जो आज मोहवशमें हमें दश आदमी भला कह रहे हैं, कल न वे होंगे और न हम रहेंगे। रागद्वेष करनेसे कुछ नहीं होगा। यही सब सोचनेकी बात है। यदि हम इतना ज्ञान रखकर भी गिर गये तो बहुत नीचे गिरेंगे। सावधानीसे चलनेका, सहनेका अवसर है। हे प्रभो! जब तुम्हारी भक्ति उस जालको भी नष्ट कर सकती है तब अन्य क्या कठिनाई है जो नष्ट नहीं हो जायगी। उपयोग यदि सही हो जावे तो सर्व आपदा दूर हों, आत्माका स्वभाव भी तो यही हैं। जैसे किसी बच्चेको हिचकी आरही होती है तो उसका उपयोग अन्यमें लगानेके लिए कुछ ऐसी बात करते हैं ताकि उसका उपयोग हिचकीसे दूर हो जावे ताकि हिचकियां बन्द हो जावें। उसी प्रकार जगतके ये दन्दफन्द मोहमायाका जाल भी एक प्रकारकी हिच-कियां हैं उनको दूर करनेका उपाय है जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति, अपनी आत्माको पहिचाहना।

भैया! पहिले जैनधर्मका बहुत प्रचार था, जैसे रात्रि भोजन न करना, झूठी गवाही न देना, न्याय करना आदि आदि। बुजुर्गोंने जो इनका पालन किया था उसका ही यह परिणाम है, यह नतीजा उन्हीं की कमाईका है कि आज भी हममें संस्कार बने हुए हैं। लोग आज भी जैनसमाजको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। जैनोंका आचरण फिर भी अधिक नहीं गिरा। भय्या यह धन, वैभव तो पुण्यके बलसे प्राप्त होता ही रहेगा फिर अपने भाव बिगाड़नेसे क्या लाभ है? यदि कोई इस धारणाको बनाता है। कि मैं कमाता हूं तो सुनलो जरा, कमानाका भावार्थ है कम, आना अर्थात् भाव बिगाड़नेसे कम ही आता है और अपने पूर्वजन्मके पुण्यसे जितना है उतना आवेगा ही फिर अपने भाव बिगाड़नेसे क्या लाभ? सोचो! ऊपरसे हम शुद्ध भाव बनायें व ग्राहक यह निश्चय मानें कि इस दुकानदारके यहां सच्चाई है, न्याय है तब लेनदेन करता है, नहीं तो ग्राहकको यदि अविश्वास रहे तो वह कैसे आयगा, ग्राहक भी तभी आयेगा जबकि उसे उसकी ईमानदारी पर विश्वास है। फिर जब ऊपर अच्छा व्यवहार दिखानेसे ग्राहक पर इतना प्रभाव पड़ता है तब अन्तरंगमें शुद्धभाव रखनेसे कितना नहीं पड़ेगा। अत: अन्तरंगसे ही शुद्ध भाव रखने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चाहिये। भगवानसे यही प्रार्थना करे कि हे प्रभु! स्वप्नमें भी मेरे खोटे भाव न आवें, यही तो असली कमाई है जो अगले जन्ममें भी काम आवेगी। इन सब विचारोंकी पुष्टता भी सिद्धभक्तिके प्रसादसे होती है।

मैं कर्मक्षयके अर्थ सब सिद्धोंको नमस्कार करता हूं। ये सर्वसिद्ध कैसे हैं कि ये व्यवहारसे सर्वलोकालोकको प्रतिभासते हैं परन्तु निश्चयसे अपने आत्मास्वरूपमें ही बसते हैं। आत्माका स्वरूप है विशुद्ध ज्ञान दर्शन। उस विशुद्ध स्वभावकी वर्तनारूप उपयोगमें ही वे सदा बसते हैं। अन्य लोक व अलोक परद्रव्य हैं। परद्रव्यके साथ स्वप्रभु की तन्मयता नहीं है। यह तो ज्ञायक भावकी स्वच्छताका चमत्कार है कि ज्ञान अपने आपको परज्ञेय विषयक जानन-क्रिया करते हैं। जैसा व्यवहार है वैसा जानन बना इससे व्यवहारसे यह कहा जाता है कि प्रभु लोक अलोकको जानते देखते हैं। निश्चयसे प्रभु स्वसंवेदनस्वरूप अपने यत्नमें ही रहते हैं। यदि बाह्य पदार्थोंको सीधा जानें देखें या अनुभवें तो बाह्यकी सुख दुःख वर्ण रसादिपरिणमनोंका अनुभव भी प्रभुमें आ धमकेगा। परके राग द्वेष पर्यायको निश्चयसे जाना तो प्रभु रागी द्वेष बन बैठेगा। किसीके सुख दुःखको निश्चयसे जाना तो प्रभु सुखी दुःखी हो जायगा। पुद्गल के पर्यायको निश्चयसे जाना तो प्रभु जड़ हो जायगा। प्रभु तो मात्र अपने चिदानन्द स्वभावमें ठहरते हैं। इसी विशेषताके कारण वे योगिजनों द्वारा ध्येय होते हैं? प्रभु निश्चयस्वस्वरूपमें अवस्थित हैं यही उनकी महत्ता है। हम आप सबको स्वस्वरूपमें अवस्थान होना उपादेय है।

अपने आपमें चैतन्य स्वभावको अनुभूति ही अमृत है। यदि नहीं तो बताओ वह और कौनसा अमृत है जिसको पीकर मृत्यु न हो। क्या पौद्गलिक-वस्तु खानेसे जीव अमर हो जाता हैं। औषधि आदिसे भी इतना हो सकता है कि कुछ अधिक जीवन का समय बढ़ जाये किन्तु यह सम्भव नहीं कि मृत्यु ही न हो। देवताओंमें भी कई माहमें भूख लगने पर अमृत झड़ता है तथा भूख शान्त हो जाती है किन्तु मृत्यु तो उनकी भी होती ही है। न मरने वाला ऐसा जो निजी स्वरूप उसका ध्यान करना ही अमृत पार करना है! कितने भवोंसे रागद्वेष प्राणीका चलता आया है किन्तु जब यह भाव आ जाय कि मेरा कुछ नहीं मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं, वहीं सब संकट समाप्त हो जाते हैं। यही अमृतपान है। योगी जन जब अपनेमें लीन हो जाते हैं तब कण्ठसे जो घूंट नीचे सहज उतरता है उस समय जो घूंट गुटका जाता है वह घूंट उस समयका बहुत बड़ा अमृत होता है। आत्मस्वभावकी दृष्टि करना ही अमृत है। ये दृष्टि वस्तुको स्वतन्त्र-स्वतन्त्र निहारने पश्चात् ही मिलती है।

एक राजाके यहां सुकुमाल पुत्रको वैराग्य हो गया। वह दीक्षा लेकर मुनि हो गया। उसके सम्बन्धीने जहां यह प्रबन्ध किया कि कोई कष्ट न होवे वहां दूसरे सम्बन्धीने जिसे अधिक स्नेहका, किन्तु इच्छाके प्रतिकूल वैराग्य ले लिया, यह परिणाम किया कि जहां भी वह मिले उसकी खाल खिच वालें। सुकौशलकी मांने भी सिंह बनकर पुत्रघात किया था। भैया! यह मोहजाल विपदाका कारण है जो प्राणिको मोहवश क्रोधमें क्यासे क्या कर देता है। लेकिन धन्य हैं वे प्राणि जो उपसगकी स्थितिमें भी इस अमृत चैतन्यका ध्यान करके ऐसा प्रखर भेद-विज्ञानका व्यवहार करते हैं कि क्लेश नहीं होता। उस जीवने सब कुछ प्राप्त कर लिया जिसने अपनेको सब जीवों से विभक्त कर लिया है। धन, कंचन, ऐश्वर्य, वैभव आदि सब प्राप्त हो सकता है किन्तु सबसे कठिन व पूर्ण लाभ-मय एक ही यह आत्मदर्शनकी बात है जो किसीके देनेसे, ऐहसानसे नहीं मिलती, यह तो खुदके ही विकाससे प्राप्त होती है। परपदार्थको अपना मानना आदि सब विडम्बना है। इन सबसे कोई लाभ नहीं। क्या तत्व है परपदार्थमें रागद्वेषकी कल्पना करनेसे।

भवदेव व भावदेव नामके दो सगे भाई थे। बड़े भाई वैराग्य पाकर मुनियोंके सत्संगमें पहुंच गये। वहां उनका धीरे-धीरे बहुत सम्मान होने लगा। यहां तक कि वे संघके गुरु हो गये। सब कोई इनका आदर करते थे। छोटे भाई कि जिस दिन शादी हुई, उस दिन उन्हें पता लगा कि भवदेव आये हुए हैं अतः उस दिन ही प्रति गृह या करके अहार करा और उनको छोड़नेके लिए वहां तक गये जहां उनका आश्रम था। वहां जाकर उन्होंने देखा कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

मेरे भाईका यहां कितना सम्मान है ? कितना आदर है ? अब यहांसे जानेका मतलब बड़े भाईका अपमान है। कुछ और सोचा। इस प्रकार वहीं पर उन्हें भी वैराग्य हो गया और दीक्षा ले आश्रममें रहने लगे। उधर उनकी स्त्रीने अपने महलका नक्शा ही बदल दिया। अपने लिए छोटा सा कमरा रहनेके लिए व रसोई बनानेके लिए रखकर बाकी चैत्यालय बनवा दिया। इस प्रकार वह भी धर्मसाधन करने लगी ! इधर ४-५ वर्ष पश्चात् भावदेव जी को विकल्प हुआ कि न मालूम वह कैसे रह रही होगी, जिसे शादी होते ही छोड़कर मैं यहां आ गया। अतः विकल्पोंमें फंसकर उसी घरकी ओर समाचार जाननेके लिए चल दिया तथा यह पूछता हुआ आया कि भय्या भावदेवका मकान कौनसा है ? वह जब वहां पहुंचा तो मकानका सम्पूर्ण ही नक्शा बदला हुआ पाया। वहीं पर उनकी स्त्री बैठी हुई थी। स्त्री उन्हें पहिचान गयी, क्योंकि उसने उन्हें देख लिया था किन्तु भावदेवजी उसे नहीं देख पाये थे, अतः भावदेवजी उसे न पहिचान पाये और उसीसे पूछने लगे कि हे देवि ! यहां पर भावदेव रहते थे ना। उत्तर मिला कि हां यहीं रहते थे। फिर प्रश्न किया कि उन्होंने शादी भी की थी। उत्तर मिला कि हां ! मालूम नहीं उनकी पत्नी कैसी अवस्थामें है ? इस प्रश्नके पूछने पर वह बोली कि वह बहुत आनन्दसे है और वह मैं ही हूं, मुझे तो सब प्रकारका आनन्द है। इस प्रकार चरणोंमें नमस्कार कर अपना पूर्णवृत्तान्त सुना दिया कि मैं अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करती हुई बहुत सुखसे हूं, आप मेरी ओरसे कोई चिन्ता न करें। यह सुन भावदेवजी अति प्रसन्न हुए प्रकटमें बोले कि आज मैं बहुत प्रसन्न हूं, मेरा शल्य जो मुझे विकल्पोंमें फंसाये हुए था कि पता नहीं तुम कैसी होगी, समाप्त हो गया और इस प्रकार निःशल्य हो विहार कर गये।

भैया ! जिस प्राणीको अपने स्वतन्त्र स्वरूपका ज्ञान हो जाता है वह अपनेमें ही लीन रहा करता है। पापपरिणामोंसे जो बन्ध होता है वह भव-भवमें दुखी करता है और यदि अपनी आत्माके स्वभावका अमृतपान कर सके तो सब आनन्द प्राप्त होगा। मैं द्रव्यक्षेत्रकाल भावकी अपेक्षा परिणमनशील स्वयंमें हूं, परमें नहीं। मैं अबन्ध हूं, बंधा हुआ नहीं हूं। जैसे गाय रस्सीसे बन्धी है यह लोक व्यवहार है, परन्तु वास्तवमें तो रस्सी रस्सीसे बन्धी हुई है, गायका गला बीचमें है, उसी प्रकार विचार करे कि मैं नियत हूं ज्ञानवान् हूं बन्धा हुआ नहीं हूं। तब यह सब सम्बन्ध अपने आप छूट जावेंगे। श्रद्धासे नहीं चूकना चाहिये। खाना पीना भी करते रहो, सब काम करते हुए भी अपनी श्रद्धाको मत छोड़ो। क्योंकि खानेके बिना आजीविकाके बिना भी कार्य नहीं चलेगा, अतः ये सब करते हुए भी अपनी श्रद्धा बराबर बनाये रखो कि मैं मेरा हूं, चैतन्यस्वरूप हूं, ज्ञानमय हूं। मैं अपनेमें हूं, मुझसे बाहर मेरा कुछ नहीं और किसीका मेरेमें कुछ नहीं। और यदि यह श्रद्धा नहीं हुई तो भगवान्की मूर्तिके नीचे भी क्यों न बैठो वहां भी सुरक्षित नहीं रहोगे।

अपने कर्मोंके क्षयके लिए मैं उन सिद्धसमूहोंको नमस्कार करता हूं। जो कर्मोंका जाल है वही विपत्ति है। कहीं भी जावे यह प्राणी मरकर कर्मोंका जाल साथ लगा ही है। सिद्धभक्तिका प्रयोजन ही कर्मोंकाक्षय है। यह सब जो वैभव आज प्राप्त है कमानेसे या परिश्रमसे नहीं प्राप्त हुआ, बल्कि आत्माके निर्मल परिणामोंही का ही फल है। वर्तमानमें चाहे निर्मल परिणाम न हों किन्तु यह वैभव निर्मलपरिणामोंका ही फल है। आज जो अन्यकी अपेक्षा सब कुछ वैभवादि है वे पूर्वभवके पुण्यकर्मकी ही कमाई है, आत्माके निर्मलपरिणामोंका ही फल है और यदि सामर्थ्य होते हुए वर्तमानमें भी निर्मलता लावे, उपकार करे, सबको क्षमा करे, सबको अपनी तरह ही माने, सब सुखी होवें, इस प्रकारके भाव रखने, इस प्रकारके निर्मलपरिणामोंसे आगे भी ये पुण्य कमाई चलती रहेगी। अन्यथा मलिन परिणामोंसे तो बंधा हुआ पुण्यकर्म भी नष्ट हो जावेगा। प्रतिभास करनेके अतिरिक्त अपनेको अन्यका कर्ता समझना ही विपत्ति है। मेरा स्वभाव प्रतिभास करनेका ही है, अन्य कुछ नहीं। जिन्दा होते हुए आंखबन्द कर रहे याने इन्द्रियोंको संयत रखें तो आत्मविभूतिके दर्शन होते हैं, मरनेपर तो आंखें बन्द हो ही जाती हैं। जिन्दा होते हुए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो आंखें बन्दकर अपने स्वभावको पहिचाने तो आत्माके वैभवके दर्शन होते हैं। और यदि इन्द्रियजन्य ज्ञानोंमें ही फंसे रहे तो समझो कि अन्धेरा ही अन्धेरा है। अत: मैं कर्मोंके क्षयके निमित्तसिद्ध समूहोंको नमस्कार करता हूं।

सिद्धभगवान् सहज यत्न पूर्वक अपनेमें ही ठहरते हैं। करने वालेसे देखनेवालेका दर्जा ऊंचा होता है। जैसे बड़े कारखानोंमें करने वाले होते हैं मजदूर और देखने वाला होता है मालिक। भगवान्‌का ऐसा विलक्षण स्वरूप है कि वे अपने सहजस्वभावमें विराज रहे हैं करनेका काम उनपर नहीं है। यदि होता तो वे भी मजदूर होते। घरमें ही देखलो, काम करने वाला मजदूर होता है और देखने वाला निरीक्षण करने वाला मालिक। वास्तवमें देखो तो भगवान् करता भी क्या है? निश्चयनयसे अपने स्वभावमें स्थित है, व्यवहारनयसे लोक अलोकको साक्षात् देख रहे हैं। किन्तु परपदार्थमें तन्मय नहीं है। वैसे परपदार्थमें तो हम भी तन्मय नहीं हैं किन्तु उपयोगसे अपनी कल्पनासे जुटे हुए हैं। जो परपदार्थमें तन्मय होते तो परके सुखसे सुखी और परके दु:खसे दुखी होते किन्तु वास्तवमें देखा जावे तो ऐसा कोई आता नहीं है, केवल जीव कल्पनासे ही ऐसा मानता है। मोहभावके कारण अन्यका दु:ख देखकर अपना ही दु:ख बढ़ाता है और सुख देखकर अपने सुखसे सुखी होता है।

एक सेठ था उसके यहां जो सेठानी थी उसपर सेठ बहुत बिगड़ा था। सेठ उसे बहुत तंग करता था। आखिरकार वह मर गयी दूसरी सेठानी आयी वह भी मर गयी, तीसरी जो सेठानी आयी उसे पास पड़ौस वालियों ने समझाया कि सेठजीकी आज्ञा न मानने पर गुजारा होना बहुत कठिन है। सेठजी बहुत हैरान करते हैं आदि-आदि। सेठानी चतुर थी। एक दिन सेठजीके सरमें दर्द हुआ। सेठजीने तुरन्त सेठानीके पास नौकर भिजवाया कि सेठानीको जल्दी बुलाकर लाओ। सेठानीने कुछ अपनी ऐसी स्थिति बनायी कि झूठमूठ बहुत बीमार बन गयी और नौकरसे कहा कि जाकर कहो कि सेठानी बहुत बीमार है मालूम नहीं क्यों कांप रही है। उनका पूरा शरीर कांप रहा है। सेठजीने जब सुना तो तुरन्त आये और आकर बोले कि क्या बात है? तुम्हें क्या हो गया? सेठानी बोली कि मुझे तुम्हारे सरके दर्द सुनकर इतने जोरका दर्द हुआ कि उठना कठिन हो गया। हारकर सेठजी बोले कि मैं अब ठीक हूं। आत्मा तो अपनेमें परिपूर्ण है, वह न किसीके दु:खसे दुखी होता, न सुखसे सुखी।

निश्चयसे भगवान् अपनेमें स्थित है और व्यवहारसे लोक अलोकके पदार्थोंको जानते हैं। किन्तु फिर भी उनमें तन्मय नहीं होते। हम भी परमें तन्मय नहीं हैं केवल कल्पनासे ही यह सब होता है। यह जो सहजस्वभाव है यदि इसका पता लग जावे तो इससे बड़ा वैभव दुनियामें क्या है? मेरा बाह्य पदार्थोंमें कुछ भी तो नाता नहीं है। उनके घटनेसे न मेरा कुछ घटता है, उनके बढ़नेसे कुछ बढ़ता ही है। यदि मेरी समझमें मेरा सहजस्वभाव आ गया तो सम्पन्न हूं अन्यथा तो नरकीट ही हूं! किया क्या—पैदा हुए जवान हुए, शादीकी, मलिन परिणामकर मर गये। एकका भाई मर गया, तो जब पड़ौसी बैठने आये तो पड़ौसियोंने पूछा कि तुम्हारे भाई तुम्हारे लिए क्या कर गये। तो वह बोला—"क्या बतायें यार क्या कारोनुमा कर गये। बी०ए० किया नौकर हुए पेन्सन मिली और मर गये। असली बात तो भैया! परिणामोंकी है। आत्मामें जो प्रताप आया वह परिणामोंकी स्वच्छतासे आता है जो अपने को परभवमें भी शान्ति देता है। अत: यही विचार करना चाहिये कि मेरे स्वप्नमें भी खोटे परिणाम न हों। यदि स्वप्नमें भी त्यागीके खोटा परिणाम आ जाता है तो उसका प्रायश्चित करना पड़ता है।

हे नाथ! स्वप्नमें भी मेरा खोटा परिणाम न हो किसीके प्रति। यदि इस प्रकार भाव रखकर जीवन बीत जावे तो इससे बढ़कर खुशी क्या है? तभी तो ज्ञानी पुरुषोंने छह खण्डका भी राज्य त्यागकर अपनी आत्माका आराधन किया। अत: यही सिद्ध हुआ कि सिद्ध भगवान् ज्ञायकस्वभावमें ही ठहरते हैं तथा व्यवहारमें लोक अलोकके सब पदार्थोंको प्रत्यक्ष जानते हैं। मोह बढ़ा तो ये बातें ठीक जंचती है किन्तु ऐसा है नहीं! भीतरमें जो मिथ्या संस्कार बन गये यही अन्धकार है, अन्याय है, निश्चयसे हम परपदार्थोंमें नहीं ठहर रहे हैं, किन्तु अपनेमें ठहर रहे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। यदि परपदार्थमें तन्मय हो जावे तो परपदार्थ और मैं एक हो जाता। किन्तु है ऐसा कुछ नहीं और यदि हम परपदार्थोंको जानते हैं और तन्मय हो जाते हैं तो दूसरेका बुखार हमें चढ़ना चाहिये था। यदि ऐसा वास्तवमें होता तो अच्छा था तब यह तो डर लगता कि मैं परपदार्थमें तन्मय होऊंगा तो उसका बुखार भी मुझे हो जावेगा। श्रद्धाका निर्मल होना स्वयंके ही काम आवेगा। वस्तुका यथार्थस्वरूप प्रतीतिमें लाना यही श्रद्धा है।

प्रत्येक पदार्थ अपने चतुष्टयमें ही हैं। किसीका किसीमें कुछ नहीं। व्यर्थमें, मेरा कहकर पिट रहे हैं। एक लड़का था, उसका नाम था रामू। उसने एक दुकानसे एक रसगुल्ला खरीदा। सामने धोबी कपड़े धो रहा था, उसका लड़का खड़ा हुआ था, इसने वह रसगुल्ला धोबीके बालकको खिला दिया। धोबीके बालकको वह मीठा लगा तथा वह अपने पिताजीसे उसकी याचना करता हुआ रोने लगा। धोबीने उससे पूछा कि भैया ! यह वहां मिलता है, क्योंकि उसने पहिली बार देखा था, अतः उसके विषयमें ज्ञान न था)। रामू बोला उस बगीचेमें चले जावो वहां मिलते हैं। धोबी बोला कि भैया मैं इसे बगीचेसे रसगुल्ला दिलवाऊं अतः तुम मेरा गधा, कपड़े लोटा आदि सब सामान देखते रहना तथा जाते हुए पूछा कि तुम्हारा नाम क्या है ? वह बोला मेरा नाम कल परसों है। धोबीके जाते ही उसने बढ़िया कपड़े पहिने, लोटा लिया और आवश्यक सामान ले आगे चल दिया। जब उस धोबीको वहां रसगुल्ले न मिले तो वह वापिस आया और उस चालाक लड़केको व अपने कपड़े व सामानको न देख चिल्लाने लगा कि मेरे कपड़े कल परसों ले गया, जनता इकट्ठी हुई और उसीको ही मूर्ख बताया। वह लड़का आगे चला तो उसे एक घुड़सवार मिला। उसे लगी हुई थी प्यास। वह बोला कि भैया जरा मेरा घोड़ा पकड़ना मैं तुम्हारे लोटेसे पानी पी आऊं और जाते जाते बोला कि तुम्हारा नाम क्या है ? वह लड़का बोला—मेरा नाम 'कर्ज देनेमें है। जब वह पानी पीने चला गया तो इसने घोड़े पर चढ़ एड लगायी और घोड़ा भगाकर लेगया। आगे गांवमें जाकर शाम होने पर एक धुनियाके घर जाकर मां से बोला कि मुझे एक रातके लिए जगह दे दो। धुनेनीने ठहरा लिया। वह पासकी बनियेकी दुकानसे सामान लाकर खाने लगा और कीमत चुकानेके लिए बोल दिया कि प्रभातमें चुका दूंगा। नाम पूछनेपर बताया कि मेरा नाम "मैं था" है। बुढ़ियाके नाम पूछनेपर बताया था कि मेरा नाम "तू ही तो था" है। उसने खाना खाया, बनाया और जूठन रूईपर फ़ेंक दी बिना बनियेके पैसे दिये चला गया। कुछ समय बाद धुनिया उस घर मालिक, जिसमें वह लड़का ठहरा था, आया और रूईकी यह हालत देखकर बोला कि यहां कौन आया था। धनेनी बोली 'तू ही तो था।' धुनिया बहुत नाराज हुआ और उसकी पिटाई करने लगा। बनियेने जब यह दशा देखी तो उसे दया आयी, उस लड़केने अपना नाम "मैं था" बताया था, अतः वह जाकर बोला कि भाई जो ठहरा था वह 'मैं था" धुनियाने उसकी पिटाई शुरु कर दी।

जगत्के जो पदार्थ हैं इनके ये ही स्वामी हैं मैं कुछ नहीं, ऐसा विचार करना चाहिये। किन्तु ऐसा न करके हम विकल्प करते हैं, कि मैं हूं ये मेरा है आदि आदि। परिणमन तो हो रहा है निमित्तनैमित्तिक पाकर किन्तु इस जीवको लगा यही है कि मैं था, मेरा है और ये ही विपत्तिका कारण है। अतः ऐसा विचारे कि मैं जानता तो हूं किन्तु उनमें तन्मय नहीं हूं। मैं भी सिद्धोंकी तरह निश्चयसे अपनेमें ही अवस्थित हूं। सिद्धोंको नमस्कार करके अब श्री जिनेन्द्र अरहंतोंको नमस्कार करते हैं।

केवलदषणणाणमस्य केवलसुक्खसहाव।
जिणवर वंदउं भत्तियए जेंही पयासिय भाव ॥६॥

अभी तक सिद्ध भगवानका वर्णन किया गया। सिद्ध भगवान जो शरीर रहित हैं उन्हें नमस्कार करके अब सिद्ध स्वरूपका प्रतिपादन करने वाले अरहन्त भगवानको नमस्कार करते हैं। जो केवलज्ञान, केवलदर्शन, केवल सुखके स्वभाववाले हैं उन्हें मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। जो आत्मा अपने ज्ञानदर्शन शक्तिमय हो गये हैं उन्हें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही तो जिनवर कहते हैं। वह अलौकिक शक्ति जो उनमें है, अपनेमें भी है किन्तु हम उपयोग नहीं लगा रहे हैं। सबसे बड़ा क्लेश ममता है। कोई अपना दुःख सुनाने बैठे पूरी कथा सुनाये, आपको उस दुःखका कारण ममता ही मालूम होगा। जितना दुःख होता है वह इसी ममताके कारण होता है। परपदार्थोंमें रागद्वेषकी बुद्धि छोड़ दें तो ये सब दुःख क्षणभरमें समाप्त हो जावें। त्यागका उपाय यही है कि अपने आपके सहजास्वरूपके दर्शन करे। अतः जो जीव अनन्तचतुष्टयरूप हो गये उन्हें मैं नमस्कार करता हूं। नमस्कारका अर्थ है, नमना या झुकना। अतः मैं उन्हें, जो अनन्तचतुष्टयको प्राप्त हो गये हैं, नमता हूं झुकता हूं, मेरा सर्वस्व यही है। नमनका मतलब समवशरणमें प्राप्त करना नहीं कहा है बल्कि अभेदरत्नत्रयात्मक जो भाव है उसे परिणत करना कह रहे हैं। उपदेशमें जो कहा जावे, वे ज्ञान उपदेश नहीं, जो तत्व कहा गया है जो स्वरूप कहा गया है उसको ग्रहण करनेका नाम ही उपदेश है। देशनालब्धि तत्वग्रहणकी शक्तिको कहते हैं। कानसे सुननेका अर्थ उपदेश नहीं बल्कि तत्वको पकड़नेका, धारण करने का नाम उपदेश है। अभेदरत्नत्रयात्मक परमात्मतत्वका सच्चा ज्ञान यही है। यदि कीचड़ वाले जलका स्वभाव कोई पूछे तो भी वही होगा जो स्वच्छ जलका स्वभाव है। अर्थात् जलका स्वभाव स्वच्छ है, चाहे उस कीचड़ वाले जलमें बिल्कुल भी स्वच्छता व्यक्त न हो। उसी प्रकार हमारा तुम्हारा भी स्वभाव सिद्ध भगवानके जैसा है।

मोही जीव जिस शरीरमें बैठा उसीको समझता है। किन्तु उसे नहीं मालूम कि यह शरीर उसी प्रकार है जैसे विष्टासे भरे हुए टोकरे पर स्वच्छ तौलिया ढका हुआ है। छहढालामें बताया है कि मलराधरुधिर मल थैली, कीकस वसादितैं मैली। नवद्वार बहैं घिनकारी, असदेह करै किमि यारी॥ अर्थात् हे प्राणी! यह शरीर अनेक रोगों का घर है, इसमें खून, पीप, मांस, हड्डी आदि अनेक अपवित्र चीजें भरी हुई हैं तथा नौ द्वार घिनावने बहते रहते हैं ऐसे घिनावने शरीरका तू क्योंकर स्नेह करता है। एक भंगिन थी वह विष्ठेका, टोकरा लिये जा रही थी। एक आदमी उसके पासको निकला तो उसे बदबू आई, दूसरोंको बदबू न आवे इसलिए टोकरेके ऊपर एक स्वच्छ कपड़ा ढक दिया। जब वह कुछ दूर चली तो तीन आदमी उसके पीछे लग गये कि न मालुम यह इसमें क्या लिये जारही है? भंगिन बोली कि तुम मेरे पीछे क्यों पड़े हो इसमें तो विष्ठा है। उनमेंसे एक तो यह सुनकर ही वापिस लौट गया। फिर कुछ दूर जाकर वह बोली कि तुम भी लौट जावो इसमें कुछ नहीं है। उन्होंने कहा हमें विश्वास नहीं। अतः उसने कपड़ा उघाड़कर दिखा दिया। दूसरा आदमी देखकर वापिस हो गया। किन्तु तीसरा व्यक्ति बोला कि नहीं मुझे विश्वास नहीं मैं तो सूंघ कर वापिस जाऊंगा, और जब उसे सूंघकर विश्वास हुआ तब वापिस लौटा।

इसी प्रकार जगतके प्राणियोंकी दशा है। पहिले नम्बरके तो वे हैं जो ऋषियोंके उपदेशसे ही अपनी आत्माके कल्याणमें लग जाते हैं। दूसरी श्रेणीमें आते हैं जो जीवोंकी करुण दशा देखकर, जो कि कष्ट उठाये होते हैं, विषयवासनाओंमें दुःखी रहते हैं, अपनी आत्माके कल्याणमें लग जाते हैं। किन्तु तीसरी श्रेणीमें वे हैं जो उनमें फंसकर, विषयवासनाओंको, विषयभोगोंको भोगकर यदि बैराग्य हो गया तो अपनी आत्माके कल्याणमें लग जाते हैं अथवा उन्हींमें लिप्त रहते हैं। मेहतरका अर्थ है कि सबसे बड़ा। वैसे है वह कामकी अपेक्षा सबसे छोटा किन्तु छोटे को छोटा कहनेमें उसे दुःख न पहुंचेगा अतः महत्तर कह दिया। जो विवेकी हैं उन्हें यह शरीर सुन्दर नहीं लगता। वे इसकी सुन्दरतामें अपना समय बर्बाद नहीं करते, किन्तु जो अविवेकी हैं वे शरीरको बहुत सुन्दर समझते हैं और उसे ही सजानेमें लगे रहते हैं। अतः उस अभेदरत्नत्रयको प्राप्त करनेका उपाय यही है कि देहकी ममता छोड़कर सुख दुःखमें, जीवन मरणमें, लाभ अलाभमें, शत्रु मित्रमें समानताका भाव रखे। अपने स्वभावका जिसको ज्ञान हो गया उसे सब कुछ प्राप्त हो गया। यदि अपनेसे प्रतिकूल भी कोई बोले, निन्दा भी करे, गाली भी दे तो भी समता धारण करें, द्वेष मनमें न लावें। जीवन मरणमें भी वह भावे कि इस जीवनसे क्या और आगे मिलेगा उससे भी क्या? मैं तो अमर हूं, चैतन्यस्वरूप हूं। सम्यग्ज्ञान बना रहे तो यहां भी लाभ और आगे भी। यदि ज्ञान न रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो कहीं भी सुख नहीं। आत्माका अनुभव करने वालेको कितना ही कष्ट क्यों न मिले किन्तु उसके कष्टसे अमृत ही झरता है। ध्यान एकाग्र हो जाने पर तो ध्यान अवस्थायें होने वाली ध्यान वायु, वह श्वास नाभिके नीचेसे होती हुई पीठकी ओर जाकर ब्रह्म छिद्रसे बड़ी सूक्ष्मतासे निकलती है, फिर वहां कागसे जो पेय झड़ता है वही अमृत है। है तो वैसे वह भी पानी ही किन्तु वह योगामृत है।

भैया! विपरीत अवस्थामें भी समान भाव धारण करना चाहिये। ऐसा करनेसे निर्विकल्पक भाव प्राप्त होता है। जो निर्विकल्पसमाधि द्वारा अनन्त चतुष्टयको धारण कर सिद्ध हो गये मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। विशेष रूपसे कर्मोंका अभाव होने पर मोक्ष होता है। ऐसे मोक्षका, सिद्धोंका जिन्होंने प्रतिपादन किया उन्हें मैं भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूं। मैं अन्य कुछ नहीं, मैं तो चैतन्यस्वरूप हूं, एक हूं, ऐसी परिणति अभेदरत्नमय है। जिसने यह बताया उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार करता हूं।

ये जिनेन्द्र देव किस पद्धतिके अनुसरणसे जिनेन्द्र हुए हैं? इन्होंने पहिले तो जिनेन्द्रका उपदेश पाया जिसमें केवल ज्ञानादि अनन्तचतुष्टयस्वरूप परमात्मतत्त्वके सम्यक् श्रद्धान ज्ञान और आचरणरूप अभेदरत्नत्रयात्मक होनेका आग्रह किया गया है, जिसमें सुख दुख, जीवनभाव, लाभ अलाभ, शत्रु मित्रमें समान परिणाम रखने रूप वीतराग निर्विकल्प समाधिकी शासनाकी गई है। पश्चात् इस अभेदरत्नत्रयके पालनके परिणाममें अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन केवलानन्द व केवलशक्तिमय हुए। अनन्त चतुष्टयस्वरूप जिनेन्द्रदेवसे निर्वाञ्छरिक उपदेश प्रकट हुआ जिसमें यथाविधिवत् जीवादिक पदार्थोंका प्रकाशन हुआ, केवल ज्ञानादि अनन्तगुणमयस्वरूपके लाभरूप मोक्षका वर्णन हुआ और शुद्ध आत्मस्वभावके यथार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण रूप रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गका विवरण हुआ। ऐसे श्री जिनेन्द्रदेवको मेरा भाव पूर्वक नमस्कार हो।

भैया, अरहन्तदेवके गुणोंके स्वरूपकी भांति शुद्ध आत्मस्वरूप ही उपादेय है—यह भाव इस गाथाके मर्मरूप जानना। अब इसके बाद भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रयके आराधक आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठीको नमस्कार किया जारहा है।

जे परमप्पु णियंति मुणि परमसमाहि धरेवि।
परमाणंदह कारणिण तिण्णिवि तेवि णवेवि ॥७॥

अरहन्त व सिद्धको नमस्कार करके अब आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुको नमस्कार करता हूं। ये अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रयके आराधक हैं। शुद्धात्मस्वरूपके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र चरणके अभेद परिणमनका नाम अभेदरत्नत्रय है तथा सप्ततत्त्वोंका श्रद्धान, ज्ञान और व्रत संयमोंका आचरण भेदरत्नत्रय हैं। सभी साधु सतोंने इस शुद्ध चिदानन्दमय एकस्वभावका आश्रय लिया है। यह शुद्धात्मतत्व द्रव्यकर्म व नोकर्मसे रहित है रागद्वेषादि भावकर्मसे रहित है मतिज्ञानादिक विभावगुणपर्यायोंसे रहित है, नरकादिक विभावद्रव्यपर्यायसे रहित है। यही शुद्धात्मतत्व भूतार्थ है और इस परमार्थरूप समयसारशब्दवाच्य सर्वप्रकार उपादेय रूप शुद्धात्मतत्वसे विपरीत जो कुछ भाग हैं वह सब हेय हैं। ये साधु परमेष्ठी निश्चय पञ्चआचारोंके पालनमें युक्त हैं। चल मलिन अगाड़ दोषरहित निश्चयश्रद्धानरूप सम्यक्त्वमें आचरण होनेको दर्शनाचार कहते हैं। संशय विपर्यय अनध्यवसाय दोषरहित स्वसंवेदन ज्ञानमें आचरण होनेको ज्ञानाचार कहते हैं। शुभ अशुभ संकल्प विकल्प रहित नित्यानन्दमय निजस्वरूपकी स्थिरतामें आचरण होनेको चरित्राचार कहते हैं। परद्रव्योंकी इच्छाके निरोधपूर्वक सहज आनन्दरूपसे प्रतापमय होने में आचरण होनेको तपाचार कहते हैं और अपनी शक्ति न छुपाकर शुद्धात्मस्वरूपमें आचरण होनेको वीर्याचार कहते हैं इन निश्चय पञ्च अचारोंमें साधु उद्यत रहते हैं और इन्हीं पांच बाह्याचारोंमें भी सावधान रहते हैं। निःशंकितादि अष्टगुणोंके आचरणको बाह्यदर्शनाचार, कालविनयादिक अष्टज्ञानाङ्गोंके आचरणको बाह्यज्ञानाचार, महाव्रतसमिति-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

गुप्तिरूप चरित्रके आचारको बाह्यचरित्राचार, अनशनादिक द्वादश तपोंको बाह्यतपाचार और इन बाह्याचारोंमें शक्ति न छुपानेको बाह्य वीर्याचार कहते हैं। यह निञ्चयवाह्याचार सभी मुनियोंको समान होता है।

उनमें जो प्रधान है, आचार्य हैं वे शुद्ध ज्ञानदर्शनस्वभावी आत्मतत्वके श्रद्धान ज्ञान अनुष्ठानरूप रत्नत्रय का, व इच्छानिरोधरूप तपञ्चरणका, शुद्धोपयोगभावनाका, निर्विकल्प समाधिका स्वयं आचरण करते हैं व साधुवों को कराते हैं। जो उपाध्याय परमेष्ठी हैं वे पांच अस्तिकाय, छहद्रव्य, सात तत्व व नवपदार्थोंमें शुद्धजीवास्तिकाय, शुद्धजीवद्रव्य, शुद्धजीवतत्व व शुद्ध जीवपदार्थ नामक शुद्ध आत्मभावको उपादेय कहते हैं और उससे अन्यको सबको हेय कहते हैं तथा श्रद्धात्मभावके श्रद्धान ज्ञान आचरणरूप रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गका प्रतिपादन करते हैं। साधु परमेष्ठी आदेश उपदेशकी मुख्यतामें न रह कर रत्नत्रय आराधन व निर्विकल्प समाधिकी साधनामे तत्पर रहते हैं। ऐसे भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रयके आराधक तीन परमेष्ठियोंको मैं नमस्कार करता हूं। दुनियांके परपदार्थोंको असार जानते रहो, ये मेरे लिए कुछ नहीं कर सकते। अपना ज्ञान व आचरण ही सब कुछ है। पूर्व जन्मका भाव निर्मलता से ही तो यह जन्म मिला है। कोई भी ज्ञान जबरदस्ती नहीं हो सकता। पढ़ना ही यदि शक्तिपूर्वक करना चाहो तो सम्भव नहीं। उसी प्रकार धन भी जबरदस्ती नहीं आता, निर्मल परिणाम करो इसीमें सार है। जिनमें सफलता नहीं उनमें परिणति करना हानि ही उठाना है। फायदा कुछ नहीं। सदा यही सोचो कि चाहे सब कुछ लुट जावे किन्तु मेरी परिणतिमें खोटा परिणाम न आवे। यदि हित है तो वह परिणामोंकी निर्मलतामें ही है। अपने स्वरूप को निर्मल करो तो लाभ है। अतः भेदरत्नत्रय और अभेदरत्नत्रयके आराधक आचार्य, उपाध्याय, साधुका गुण स्मरणकर उन्हें नमस्कार कर कहते हैं कि जो मुनि परमसमाधिको धारणकर परमात्माको परमानन्दके लिए देखते हैं, ऐसे तीनों परमेष्ठियोंको मैं नमस्कार करता हूं।

पंचपरमेष्ठीका ध्यान करो तथा अपने सहजस्वरूपका ध्यान करो परमआनन्द मिलता है। और सम्बन्ध तो हेय हैं, परमात्मसम्बन्ध उपादेय है। जैसे कोई ग्राहक कपड़ा लेने आया उसको सब थान खोल खोलकर दिखाये, उनके पीछे हैरान हुए तीन घन्टे मगजपच्ची भी की किन्तु उसने न लिया तो खेद होता है। इसी प्रकार ५०-६० साल तक जिन्दा रहे आखिरमें सब कुछ छोड़कर चले गये। क्योंकि लेना देना तो कुछ था ही नहीं। अतः इस समागमसे क्या लाभ हुआ कुछ भी तो नहीं, यदि सहजस्वरूपका ध्यान कर लिया तो यह सबसे बड़ा लाभ है। बाकी कुछ नहीं। व्यवहारमें ही द्रव्यकर्म नोकर्मका सम्बन्ध है किन्तु यह परमात्मतत्त्व दोनोंसे रहित है। रागादिकके सम्बन्धसे भी रहित है। मैं क्या हूं? इसका ज्ञान न होने पर हीं सब विपदाएं आती हैं। यदि अन्तरंगमें सहज-स्वभावका पता पा लूं तो ये सब विपदाएं क्षणभरमें दूर हो जावेंगी। मतिज्ञानादि पर्यायोंसे भी रहित ऐसा आत्म-तत्व ही उपादेय है। जैसे डरकर बालक अपनी मां के आंचलमें चिपट जाता है तथा अपनेको उस आंचलकी छायामें रहकर अपनेको भयसे दूर मानता है। फिर कोई कुछ भी कह देवे अपना उससे बनता बिगड़ता क्या है? मोह व मूढ़ताके अलावा दुःख ही क्या है? अतः स्वानुभूति रूपी माताकी गोदमें पहुंच जावो, और ऐसे पहुंचो कि विकल्प-रूपी लोगोंको भी दिखायी न दो। ऐसे किये बिना तो भला नहीं, चाहे अब करलो चाहे बादमें, करना पड़ेगा ही। ऐसा किये बिना गुजारा नहीं होगा। इसके अलावा सब हेय हैं।

एक लड़का था नाम था। उसका रुलिया। उम्र २५ वर्षके आस पास थी, फिर भी बहुत भोला था। एक दिन उसकी बुढ़िया मां बोली कि बाजारसे जाकर सागसब्जी ले आ। वह बोला मैं रास्ता भूल गया तो क्या होगा? बुढ़िया बोली बेटा रस्ता नहीं भूलेगा। फिर उसके रूठनेपर बुढ़ियाने एक धागा उसके हाथमें बांध दिया और बता दिया जिसके धागा बंधा वही रुलिया हो। जब वह बाजारमें गया तो वहां थी भीड़। अतः भीड़के कारण वह धागा टूट गया। जब उसकी नजर अपने हाथ पर पड़ी तो रोना शुरू कर दिया कि मैं रुल गया। घर आकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

रोता हुआ अपनी मां से बोला कि देखो मां मैंने पहिले ही कहा था ना कि मैं रुल जाऊंगा। अब बताओ मैं रुल गया मैं क्या करूं ? मां बोली कि बेटा कोई बात नहीं सो जाओ, मिल जाओगे। जब वह सो गया तो झट उसकी मां ने फिर धागा बांध दिया। उठते ही वह कहने लगा कि मां मैं मिल गया, मिल गया। वह धागा सहजस्वरूपकी दृष्टि है यदि उसको पहिचान लिया तो हम अपनेमें हैं अन्यथा रुलना पड़ेगा।

भैया ! साधुजन जिस निर्विकल्प समाधिको कहते हैं आचरते हैं, साधते हैं वह निर्विकल्प समाधि है, हम सबको उपादेय हैं। यह समाधि ही शुद्धआत्मतत्वका साधक है। यह शिक्षा हम इस गाथाके उपदेशसे ग्रहण करें। यहां तक योगीन्द्र देवने योगसाधनोंके महान् उपदेशके करनेसे पहिले पञ्चपरमेष्ठियोंको नमस्कार किया है। यह पञ्चपरमेष्ठित्व आत्माका ही परिणमन है। अपने आत्माका भी ऐसा परिणमन होगा उस परिणमनको अपने ध्यान में लेकर अपने आपमें उस पदका निक्षेप करें और इन परम पदोंके आनन्दकी रेखाओंका अनुभव करें।

भावि पणविवि पंचगुरु सिरि जाइंदु जिणाउ।
भट्टपहाररि विण्णविउ विमुल करेविणु भाउ ॥८॥

यहां पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया जा रहा है। जिस प्रकार उन्होंने परमानन्द रसका स्वाद लिया है उसी प्रकार मुझे भी मिले, अत: नमस्कार करता हूं। परमरसीभाव होना, उत्कृष्ट समताका भाव होना हां आनन्द है। रागद्वेष ही इसके बाधक हैं, वे इसे चैन नहीं लेने देते। इनके न रहने पर ही आनन्द मिल सकता है। समता और आनन्द ये दोनों अविनाभावी हैं, अर्थात् एकके होनेपर दूसरा स्वय हो जावेगा। सांसारिक सुखोंमें आनन्द नहीं किन्तु क्लेश ही है ! वैसे यह जीव विषयभोगोंमें रहकर सुख व आनन्द मानता है वह उसी प्रकार है जैसे कुत्ता सूखी हड्डी मिलने पर उसे उठाकर दूर ले जाता है और उसे चबाता है उसके चबानेसे उसके मसूड़े फट जाते हैं और खून निकलने लगता है, वह समझता है यह खून हड्डीमें से ही निकल रहा है और उसीमें आनन्द मानता है। सो भैया, सब जीवोंमें ज्ञान व आनन्द गुण है। जितना भी ज्ञान आनन्दरूप परिणमन होता है वह ज्ञान आनन्द गुणके कारण ही ज्ञान आनन्दरूप परिणमन होता है। किन्तु मोही जीव वैभव, धन स्त्री आदिसे आनन्द मानता है। उसका विकल्प है कि जो सुख मिलता है वह आनन्दगुणके परिणमनसे ही मिलता है। ऐसा विश्वास मोही, अज्ञानी जीव नहीं करते अत: दु:ख भोगते हैं। किन्तु पंचपरमेष्ठी बाह्य पदार्थोंमें शरण न मानकर बुद्धि लगाते हैं। निर्विकार निर्विकल्पक होकर परपदार्थोंमें उपेक्षा भाव रखते हैं। वे निर्विकल्पकसमाधि, समतापरिणामवाले हैं जिसमें ऐसा आनन्द मिलता है जो कि सत्य है। ऐसे शान्तभाव रखकर वे उनका स्वाद ले चुके, अत: मैं भी उसी स्वादकी वांछा से पंचपरमेष्ठीको नमस्कार करता हूं, उनके सम्पर्कमें रहता हूं, निकट रहता हूं, सम्बन्ध बनाये रखता हूं। जितना उनका सम्पर्क मिले, आचरण मिले उतना ही सम्पर्क बनानेका प्रयत्न करता हूं। यही मेरा नमस्कार करनेका प्रयोजन है।

वास्तवमें अपनी आत्माके अन्दर बसा हुआ ही यह ध्रुव चैतन्यस्वभाव उपादेय है। इससे अन्य सभी हेय हैं। अपने आपमें बन्धा हुआ स्वरूपमय निजज्योति है वह ही साध्यरूप है और जिन्होंने ऐसा कर लिया वे ही पंच-परमेष्ठी हैं। जैसे कहते हैं कि हमारा परमउपकार अरहन्त भगवान्ने किया, उन्होंने ही हमें उपदेश दिया, उन्हींकी दिव्यध्वनिसे ये सब शास्त्र रचे गये। हमारे परमउपकारी आचार्य उपाध्याय सर्व साधु हैं। किन्तु यह साक्षात् सम्बोधन है। साक्षात् उपकार परमेष्ठिका ही है। वे कैसे हैं—जो निस्पृह हैं, जो सांसारिक भाव नहीं सोचते, जो अपनेको आपमें पाकर अपना स्वाद लेते हैं यदि ऐसे परमेष्ठी मेरी दृष्टिमें बने रहें तो मुझे भी स्वाद मिल जावेगा। क्योंकि जैसी संगति होगी, वैसी ही भावनाएं बनेंगी। जो महापुरुष हुए हैं क्या वे जन्मसे ही महान् हुए हैं, महान् सम्पर्कसे ही महान् हुए हैं। ये डाकू आदि क्या जन्मसे ही अपना नाम डाकू रखवाकर आये नहीं, इन्होने अपना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्पर्क ही ऐसा रखा जिसमें लूटने मारनेके विचार बनें सो वे डाकू हो गये। अच्छी सगतिसे अच्छे विचार बनते हैं। अच्छेसे अच्छा बनता है और बुरेसे बुरा। यही विचारो कि मैं तो यहां अपनी आत्माका कल्याण करने आया हूं, कर्मोंकी निर्जरा करने आया हूं जिसका ऐसा विचार हो गया उससे बढ़कर दुनियांमें कुछ नहीं है। जिस समय सांसारिक भोगोंसे हटकर आत्मामें उपयोग लग रहा है वह घड़ी धन्य है। श्री अकलंक देव, कुन्दकुन्दाचार्य आदि गुरुवोंके निकट रहनेका मौका जिन्हें मिला होगा वे अपनेको कितना धन्य नहीं मानते होंगे। जिनके शब्दोंको सुनकर यही भाव बनते हैं कि यदि तुम आज होते तो तुम्हारे चरणोंमें पड़े रहते चाहे फिर शरणमें लेते, या दुत्कार देते, किन्तु आश्रय न छोड़ते और जिनको निकट सम्बन्ध मिल गया होगा वे तो कृतार्थ हो गये होंगे।

भैया! अपने आपमें बसे हुए परमात्मतत्वकी दृष्टि ही सब कुछ है अन्य कुछ नहीं। जीविकोपार्जनके लिए जो जो विकल्प किये जा रहे हैं वे सब दुःखदायी हैं उनसे लाभ कुछ नहीं। गृहस्थ तो स्वाद ले लेकर दुखी हो रहे है किन्तु यदि त्याग करनेके बाद भी किसी स्त्री आदिककी इच्छा रखी तो कल्याण नहीं। क्योंकि गृहस्थी तो वैराग्य होने पर कल्याणके मार्गपर लग सकता है किन्तु यदि त्यागी अपने त्यागको ही छोड़ देगा तो अकल्याण ही है अन्य कुछ नहीं। यदि उपादेय है तो बस चैतन्यस्वभावकी दृष्टि है, अन्य कुछ नहीं! साधु परमेष्टि पंचाचारके पालनमें लगे हुए हैं और गृहस्थके पंचसूना लगे हुए हैं। तीन शल्योंसे रहित होनेके कारण जिनका श्रद्धान निश्चित है वह दर्शनाचार कहलाता है। कोई भी उपद्रव क्यों न आवे तो भी वे अपने श्रद्धानसे नहीं डिगते। श्रद्धान करके जो निश्चय हो गया है जो ध्यानमें लग रहे हैं। आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु तो अपने स्वभावके दर्शन करनेमें, निकट रहनेमें, आनन्द लूटनेमें नहीं अघाते और यह मोही जीवने भी यह कार्य किया। उससे हटकर वह किया, खानेमें आनन्द नहीं आया तो आराम किया उसमें आनन्द नहीं मिला अन्य कार्य किया। तात्पर्य यह कि आनन्दकी खोजमें यत्र तत्र भटकनेमें नहीं अघाता। सांसारिक बाह्यपदार्थोंमें एकसे दूसरेमें दुःखी होता फिरता है किन्तु उसे सच्चा आनन्द प्राप्त नहीं होता। प्राप्त होगा भी कैसे? यदि सच्चा आनन्द है तो वह है अपनी सहजस्वरूप, चैतन्यस्वरूप आत्मामें और वह तभी होगा जब मोह व अज्ञान छोड़ देगा।

जंगलमें जो साधु अकेले रहते हैं वह भी तो अपना ही आत्म बल है। अपने सहजस्वरूपके चैतन्यस्वभाव के आनन्दमें रत रहते हैं। उन्हें पता ही नहीं अन्य बातोंको जानते सब हैं किन्तु उनकी ओर परिणमन नहीं होता। यह चैतन्यमें उपयोगका ही तो बल है। तभी तो वे वहां बने रहते हैं। वे दर्शनाचारकी मूर्ति हैं। स्वसंवेदन ज्ञान बनाना यही सम्यग्ज्ञान हुआ। उनमें आत्मस्वभावका ज्ञान दृढ़तापूर्वक है। न विपरीतता है, न सन्देह है और उस ज्ञानमें ही आचरणरूप परिणमना ज्ञानाचार कहलाता है। वहां जो सुख मिला स्थिरता हुई, उसका अनुभव करना सम्यक् चारित्र है। एकके होने पर तीनों गुण हो जाते हैं। तीनों एक ही हैं और जीवका भला करने वाले हैं।

एक बुढ़ियाके तीन लड़के थे, उस गांवमें ही एक बनिया भी रहता था। बनिये ने सोचा कि ब्राह्मणको जिमाना चाहिये। वह था लोभी प्रकृतिका अतः यही सदा सोचता रहा कि किसको निमंत्रण दूं जो कम खावे। बहुत सोच विचारकर बुढ़ियाके पास आकर बोला कि बुढ़िया तेरा सबसे छोटा लड़का कहां है? आज उसका हमारे यहां निमंत्रण है। बुढ़िया बोली कि चाहे छोटेको ले जावो, चाहे मंझलेको, चाहे बड़ेको खुराक तीनोंकी बराबर तीन-तीन सेरकी है। उसी प्रकार आनन्द इन तीनोंमें है। तीनोंसे आत्मीभूत है वह आत्मा। अपने ज्ञाता दृष्टा रूपमें तपते रहना सबसे बड़ी तपस्या है। कषाय और क्लेश मनमें न आवे इस प्रकारका आचरण करनेमें जो अन्तर्मनको लगानेमें जो बल लगता है वही तपस्या है। वस्तुस्वभावका यथार्थज्ञान ही हमारा कल्याण करेगा! वही शरण है। इसको अच्छी प्रकार सोच लो। यदि वस्तुका सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर लिया तो समझो सब कुछ मिल गया। वह नहीं हुआ तो समझो कुछ नहीं किया, जीवन व्यर्थ है। उसका कोई मूल्य नहीं। जैसे एक न रहने पर आगे कितनी ही बिन्दियां क्यों न बढ़ादो उनका मूल्य कुछ नहीं है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भैया, मोहकी ढिबरीको हटादो मोक्ष हो जावेगा। निकटभव्य जो हैं वह ऐसा ही श्रद्धान करते हैं कि जो होना होगा होता रहेगा। सारभूत है तो वह है आत्माका कल्याण—ऐसा पक्का श्रद्धान तुम भी बनालो परद्रव्यकी इच्छा दूर करने पर ही तप मिलेगा। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह यदि इनके उपायोंसे भी कुछ कमा लिया तो वह काम क्या आवेगा ? यहां तो वह प्राणी सुख पा ही नहीं सकता, आगे भी सुख प्राप्त न होगा, शान्ति नहीं मिलेगी ? बड़ों-बड़ोंका जीवनचरित्र देखलो, रामचन्द्रजी थे उन्हें बनवास हुआ क्या वे राज्य छोड़ बन जानेमें दुखी हुए, नहीं। फिर राज्य मिला तो क्या वें सुखी हुए, नहीं। यह सब सम्यक्त्वका ही तो प्रभाव था और जो सुख दुखकी अनुभूति हुइ वह रागद्वेषसे। शुद्ध आत्मवस्वरूपमें स्थिर होनेका यत्न करना इस प्रकारका परिणमन वीर्याचार कहलाता है। इस प्रकार पांच आचार्योंका पालन करने वाले साधु महाराजोंको मेरा नमस्कार है।

मैं आचार्योंको नमस्कार करता हूं। जो परमसमाधिको धारण कर रहे है। जो सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रको प्राप्त कर चुके हैं, धारण कर रहे हैं। दर्शनाचार आठ प्रकारका है। निःशक्ति आदि आठ अगोंका पालन करना ही दर्शनाचार है। पहिला अंग है निःशंकित अंग, अर्थात् जिनेन्द्रभगवानके कहे हुए वचनोंमें शका करना। इसका यह मतलब नहीं कि कोई बात समझमें न आवे तो भी उसे न पूछना, नहीं तात्पर्य यह है कि जैसा तत्त्व बताया गया है उसमें ऐसा न सोचे कि यह झूठा है क्या ? इस लोक परलोकका भय न माने। इसका यह मतलब नहीं कि किसीका डर न मानकर स्वच्छन्द हो जावे, मनमानी करे, दूसरोंको त्रास देवे, नहीं। यह भय न माने कि मेरा मरण होगा आदि। क्योंकि आत्मा तो अमर है। अतः अपनेको चेतनास्वरूप समझता हुआ अपनी आत्मामे अमर रहे।

जिस प्रकार दर्शनाचारके आठ अंग हैं उसी प्रकार शरीरके भी (१) हाथ (२-४), (५) पीठ, दो पैर, (६) मस्तक, (७) वक्षस्थल, (८) नितम्ब ये आठ अंग हैं। जिस प्रकार इन आठ अंगों बिना शरीर नहीं उसी प्रकार आठ अगोंके बिना सम्यक्दर्शन नहीं कहलाता। वे आठ अंग इस प्रकार हैं—(१) निःशंकित (२) निःकांक्षित (३) निर्विचिकित्सा (४) अमूढ़दृष्टि अग (५) उपगूहन अंग (६) स्थितिकरण अग (७) वात्सल्य अग (८) प्रभावना अग। इस प्रकार ये दर्शनाचारके आठ अंग हैं। सप्नमें भय न होता, जिनेन्द्र भगवानके वचनोंमें शंका न करना। चर्चा व समझनेके लिए की गयी शंका दूसरी बात है। किन्तु जो सात तत्व तथा और और बातोंका सूक्ष्म उपदेश दिया है उसमें ठीक है या नहीं इस प्रकारकी शंका न करनी चाहिये। किसीके प्रति उद्दण्डताका तात्पर्य भयरहित नहीं है। जो उद्दण्डतासे या गर्वसे किसीके साथ पेश आवे उसे तो अपने स्वरूपका ही ज्ञान नहीं है। यहां तो चर्चा उन जीवों की है जिन्होंने अपने स्वरूपको पहिचान लिया है। उन्हें सांसारिक, आजीवकाके प्रति, आदि आदि भय नहीं। क्योंकि वह जानता है कि आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र है उसमे किसी भी प्रकारका कि आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव-मात्र है उसमें किसी भी प्रकारका उपद्रव नहीं है और यह व्यावहारिक जीवन तो कर्मोंके आधीन हे। जो होना होगा वह होता रहेगा भय कैसा ? इसी प्रकार वे ज्ञानी जीव परलोकका भी भय नहीं मानते। लोग समझते है कि मेरी दुर्गति न हो, अगला भव न बिगड़ जावे इस प्रकारका भय मानते हैं, किन्तु धर्मात्मा इस प्रकारके विचारको मिथ्यात्व समझते हैं। उसे परलोकका, इस भवका भय ही नहीं है। मेरा जो चैतन्यस्वभाव है वही मेरा इहलोक, वही मेरा परलोक है। यदि वह मेरी दृष्टिमें है, उपयोगमें है, तब तो ठीक है। परलोक ही क्या कुछ भी उसमे उपद्रव नहीं कर सकता। वेदनासे प्राणी तड़फड़ाते हैं किन्तु यह वेदना मेरा स्वरूप नहीं, मेरेमें वेदना नहीं, मेरा शरण मैं ही हूं। भय्या इन्द्रियोंको एकाग्र करके, इन्द्रियोंको वशमें करके तो अपनेमे दृष्टि करो बाहर कुछ नहीं। तेरे अन्दर ही सब कुछ है। यदि प्राणी ऐसा सोचता है कि मैं सुरक्षित नहीं। मकान ठीक नहीं है। दरवाजे आदि भी टूटे पड़े हैं, कोई भी घुसकर मुझे त्रास दे सकता है। किन्तु ऐसा सोचना दुःखका ही कारण है क्योंकि तेरी आत्मामें तो किसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी उपद्रवका प्रवेश नहीं। यदि तेरा ध्यान, तेरी दृष्टि आत्मा पर है तो और तो क्या, मरणका भी भय न रहेगा क्योंकि मैं तो इस शरीरमें भी पूर्ण हूं, छोड़कर इस शरीरको जाऊंगा तो भी पूर्ण हूं। अतः यदि मरणभय करें तो वह वृथा है, मिथ्यात्व है। भय्या मेरे प्राण तो ज्ञान और दर्शन हैं। मैं तो ज्ञाता दृष्टा हूं। ज्ञानी जानता है कि इस आत्मामें किसी भी उपद्रवका प्रवेश नहीं है। इस प्रकार निःशंकित अंगका पालन करना चाहिये।

भैया ! जगत्के प्राणियोंमें छटनी न करो, मोह न करो कि यह मेरा है। बाह्यपदार्थोंमें उपेक्षाभाव रखे सो निःकांक्षित अंग कहलाता है। ग्लानि न करना मुनियोंका तन देखकर ग्लानि न करना सो निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है। कुगुरु, कुदेव: कुधर्मको न मानना उन्हें नमस्कार न करना, उसका आचरण न करना खोटे गुरुओंको, जो असत्य शिक्षा बताते हैं उनको व खोटे देवताओंको व खोटे धर्मको न मानना अमूढ़दृष्टि अंग कहलाता है। अपने धर्मको बनाये रखना जो नियमादि लिये हैं उनका विधिपूर्वक पालन करना, यदि त्रुटि हो जावे तो प्रायश्चित् करना च्युत होते हुए दूसरोंको धर्ममें लगाना स्थितिकरण अंग कहा गया है। साधर्मी भाइयोंका सत्संग करना, ज्ञानकी बात करना, उनसे निष्कपठ प्रेम करना, सो वात्सल्य अंग है।

यदि किसी कारण वश अपने धर्मका अपयश हो तो उसे न होने देना सो उपगूहन अंग कहलाता है और रत्नत्रयकी उपासनासे अपने धर्मका प्रचार करना, संस्था आदि विद्यालय आदि या मन्दिर आदि बनवाकर या पुस्तक बांट कर किसी भी प्रकार धर्मका प्रचार करना सो प्रभावना अंग कहलाता है।

इसी प्रकार अपने शरीरके आठ अंगों पर भी यह वृत्त घटित है। जैसे—एक पैरका काम शंकारहित होकर आगे बढ़ना रहता है सो हुआ निःशंकित अंग और पिछले पैरको उठाते समय उस स्थानसे कोई मोह नहीं होता उपेक्षाके भावसे तुरन्त उस स्थानको छोड़ देता है सो हुआ निःकांक्षित अंग। बांया हाथ हुआ निर्विचिकित्सा अंग इससे हम बिना ग्लानि किये शौच आदि साफ करनेका कार्य करते रहते हैं बिना ग्लानि अनुभव किये। अमूढ़दृष्टि हुआ दाहिना हाथ, इससे संकेत करके यथार्थ बताया जाता है देव शास्त्र गुरु ही सच्चे हैं आँदि। नितम्ब हो गया उपगूहन अंग। स्थितिकरण अंग हुई पीठ। वात्सल्य अंग हुआ हृदय। मस्तक हुआ प्रभावना अंग। अतः हमारा शरीर भी ८ अंगकी बात बता रहा है। वैसे आत्माके निश्चयसे ८ अंग दूसरी प्रकारके हैं शरीरके दूसरी प्रकारके हैं। अपने स्वरूपमें शंका नहीं करना, अपने स्वरूपको छोड़कर अन्य प्रभावनामें इच्छा न रखना। उपद्रव आवे, शंका आवे फिर भी अपने स्वरूपकी दृष्टि बनाये रखना, स्वभावमात्र ही मैं हूं। अन्य प्रकारका मोह न आने देना, अपने चैतन्यका विकास होने देना, विभाव भावोंको अपने अन्दर प्रकट न होने देना, अपना स्वभाव स्थिर रखना, इस प्रकारके दर्शनाचारका पालन करने वालेको मैं नमस्कार करता हूं।

मेरा स्वभाव चैतन्यस्वरूप है। मैं शरीररहित हूं, वशरहित हूं, घररहित हूं, जो कुछ हूं सो चेतनास्वरूप हूं। मेरा स्वभाव तो चेतनामय है। जितने भी जगतके प्राणी हैं वे सुख चाहते हैं और दुःखसे डरते हैं। उनकी इच्छा है तो केवल यही कि किसी प्रकार सुख प्राप्त हो, दुःख दूर हो। दुःखको बढ़ाने वाली कषाय हैं जो दुख देती हैं। जहां कषाय है वहां सुख प्राप्त नहीं हो सकता। जब तक कषाय जीवमें है तब तक शान्तिके परिणमन नहीं आ सकते। यह शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब कषायोंको दूर कर दो छोड़ दो। जो आत्माको कषे उसे कषाय कहते हैं। इससे दूर होनेके लिए वस्तुका सत्य ज्ञान करना चाहिये।

जितने जीव हैं सब अपनी अपनी सत्ता लिए हुए हैं। जैसा भगवानका स्वरूप है वैसा ही इन सब जीवों का भी स्वरूप है। यह जो संसारी जीवोंकी दशा हो रही है सब मोहके कारण हैं. परपदार्थमें दृष्टि है इसी लिए ये सब दशाएं इस जीवकी हैं अन्यथा आत्माका कुछ अपराध नहीं है। यथार्थ बातको समझते रहो जीवका स्वभाव, लक्षण वही है जो भगवानका है। दूसरोंको अपने स्वभावरूप माननेसे अपनेको दूसरेके स्वभावरूप माननेसे ही अशांति

http://sahjanandvarnishastra.org/

मिलती है। और भगवानका स्वरूप सदृश अपने स्वरूप मात्र अथवा स्वरूप जानो, शान्ति प्राप्त होगी। आज भी बहुतसे ऐसे प्राणी हैं जो सब दुनियांके प्रपंच रोजगार आदि छोड़कर आत्मकल्याणके मार्गमें लग रहे हैं। और यदि नहीं लग रहे तो इसमें आत्माका क्या अपराध है ? बल्कि दूसरे मजहब वाले तो सब जीवोंमें प्रभुका दर्शन करते हैं। बात करते समय भी इसीका उच्चारण करते हैं कि—हां प्रभो, आप ठीक कह रहे हैं आदि। तात्पर्य यह कि व्यवहारमें भी इसीका प्रयोग करते हैं किन्तु हम जो स्याद्वादके द्वारा वस्तुका स्वभाव जाननेका दम भरते हैं, सब जीवोंमें यदि भगवानको देखें, भगवानका दर्शन करें तो अपनी ही तो सुध दृढ़ होगी, फिर कषाय अपने आप नष्ट हो जावेंगी तथा आत्माका दर्शन होगा, अपने आपका सहजस्वरूप मालूम हो जावेगा किन्तु हम तो दूसरे दूसरे रूपमें देख रहे हैं। यदि दूसरोंको देखना है तो उन्हें भगवानके स्वरूप वाला समझो और यह सब जो नाटक हो रहा है इसे उपाधिका ही नाटक समझो। इस प्रकार देखना व समझना निकट भव्यकी निशानी है। इसीमें हमें शान्ति प्राप्त होगी। रागद्वेष करनेसे क्या प्राप्त होगा। ?

भैया ! जब यह समझमें आगया कि यह रागद्वेष ही, मोहमाया ही भव-भवमें भ्रमण कर रहा है, दुःख दे रहा है, त्रास दे रहा है, अपने सहजस्वरूपके दर्शनमें बाधक है तब क्यों उसमें लगे रहना ? जब तक ज्ञान नहीं, ठीक हैं अज्ञानतामें रहा और दुःखको सुख मानकर झेलता रहा किन्तु अब जबकि वास्तविकता समझ गया ? वास्तवमें स्वरूप क्या है यह समझमें आजाने पर क्यों मोहमायामें लगा हुआ है, क्यों इनसे चिपक रहा है, बस अब भी यही रट लगाये है कि यह मेरा पुत्र है, यह पत्नी है आदि-आदि। परिणाम भी सोचता है, जानता है, समझता है फिर भी मोहकी इतनी प्रबलता है कि छोड़े नहीं छूटता। अतः भैया इसे त्यागकर अपनी आत्माके कल्याणमार्गमें प्रवृत्त हो। यह सब साथ जाने वाली भी तो चीजें नहीं हैं। क्या ले जाओगे इनमेंसे साथ, क्या जावेगा तेरे साथ, सो चेतो, विचार तो करो। ज्ञान ही तो हमारे लिए प्रभुकी छाया है। यदि ज्ञान नहीं तो भगवानकी हम पर छाया भी नहीं। सदा भटकना ही रहेगा। कोई शरण नहीं है। यदि ईश्वरको पालिया तो सब कुछ प्राप्त कर लिया।

भैया, हम जो विषयभोगोंमें, ऐयाशीमें, वैभवमें, धनमें मदमें पोजिशन बनानेमें डूबे हुए हैं यही तो हमें विपदा दे रहे हैं ये ही विपदाके कारण हैं। इनका मोह छोड़ दो, इनका त्याग कर दो, उपेक्षा भाव रखो तो ये तो पीछे-पीछे फिरेंगी। ये सब तो नष्ट होने वाले पदार्थ हैं, साथ न जाने वाले पदार्थ हैं तब क्यों इनके पीछे पड़ा हुआ है ? क्या रखा है इन सब बातोंमें ? इनका त्याग करके तो देखो कितना सुख मिलेगा कहा नहीं जा सकता, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। एक बार इन सब मोहमायाको छोड़ कर तो देख ! भैया तेरा स्वभाव तो ज्ञाता दृष्टा है, चैतन्यस्वरूप है, चिदानन्द है फिर क्यों इन सब बाह्यपदार्थोंके पीछे पड़ता है। कल्याण यदि होगा तो अपने सहजस्वरूपके दर्शन करने पर ही होगा। दूसरे जीवोंके प्रति तथा अपने प्रति बस एक यही भावना बनावें कि स्वभाव तो चैतन्यस्वरूप है, किन्तु यह सब जो हो रहा है सब उपाधिका नाटक है। इससे अन्य कुछ नहीं। ऐसा समझलें तो किसी भी विभावमें हठ न रहें। यदि हमारी यही हठ रहेगी कि इन सब सुखोंसे, विषयभोगोंके झूठे आनन्दसे, पोजिसनसे, वैभवसे, धनसे हम अलग नहीं रहना चाहते तो निश्चय ही संसारके भ्रमणमें भटकते रहनेका यत्न है, चौरासी लाख योनियोंमें भटकने रहनेका प्रोग्राम है।

भैया सोचो तो ये मानव पर्याय न जाने कितना पुण्य किया था जो प्राप्त हुई। और अब इसको विषय-वासना रागद्वेषमें ही व्यतीत कर देनेसे कोई लाभ न होगा। अतः हे हितैषीजनों, यदि संसारके भ्रमणसे छुटकारा चाहते हो तो अपने स्वरूपको पहिचानो, सब जीवों पर समता भाव रखो। यही सोचो कि दुनियांके सब जीव सुखी हैं। कोई दुःखमें न रहे। सब प्राणी मात्र पर क्षमाभाव रखो। आखिर ऐसा सोचनेसे अपना नुकसान ही क्या है और फिर ऐसा सोचनेसे विपदा नामकी, अशान्ति नामकी मनमें कोई बात न आवेगी। यदि हमारे तन मन धन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वचनसे संसारके प्राणी सुखी हो सकते हैं तो हर्षकी बात है। फिर ये तन, मन, धन वचन तो विनाशको प्राप्त होने ही वाले हैं यदि इनसे किसीको सुख प्राप्त हो सके अर्थात् तनसे परिश्रम करके किसीका उपकार हो सके, मनसे अच्छी भावना आनेसे उपकार हो सके धनका दान देनेसे उपकार हो सके वचनसे अच्छा बोलने पर किसीका उपकार हो सके तो अपना क्या नुकसान ? हर्षकी ही बात है इनमें अपना खर्च भी तो कुछ नहीं होता। यदि इसका उपयोग किसी भी परमात्मा (उत्कृष्ट आत्मा वाले) के काम आवे तो करो। यह तो ज्यों ज्यों उदारता बरतोगे इनमें त्यों-त्यों ही अपने आप अगले-अगले जन्मोंमें उत्तम-उत्तम प्राप्त होता रहेगा। और यदि इनका दुरुपयोग करोगे तो आगे इनसे वंचित होना पड़ेगा। जैसे पशु पक्षी, कीड़े, पेड़ आदि। हमारे लिए तो एकसे हैं उनमें कौन तो इष्ट और कौन बैरी सब बराबर हैं। अतः दुनियांके सब जीव प्रसन्न रहें, सुखी होवें मेरी यही अन्तरंगसे भावना रहनी चाहिये। भैया इन संसारी जीवोंमें छनली मत करो कि ये मेरा है और ये तेरा है। आखिर एक न एक दिन तो इस अवस्थाको पहुंचना ही होगा फिर क्यों न अभीसे इसके लिए प्रयास किया जाय। फिर भलाई भी तो इसीमें है। भैया यह सब धनादि वैभव तो स्वयं पीछे-पीछे फिरेगा, यदि अपने आत्मकल्याणमें लगे तो फिर इनकी इच्छा ही न रहेगी।

इच्छाके न रहनेको, इच्छा निरोधको तप कहते हैं। बाह्यपदार्थोंमें अपनी इच्छाको न जाने देना, बाह्यपदार्थोंकी कामना करना बाह्यपदार्थोंसे इच्छा रोकना सो तप है। इस तपको करनेका उपाय यह है कि ज्ञानदर्शन वाले अपने निज आत्मतत्त्वका सही श्रद्धान करो और उसीमें रमण करो, फिर बाह्यपदार्थोंकी इच्छा अपने आप न रहेगी। कोशिश यही करो, भीतरमें ऐसी ही भावना विचारो—मैं ज्ञाता दृष्ठा हूं, चैतन्यस्वरूप हूं, सहजस्वरूप वाला हूं। मेरी सब जीवों पर "सुखी रहें" यह भावना रहे, सब पर क्षमाभाव रहे। ऐसी इच्छा करनेसे बाह्यपदार्थोंमें इच्छा नहीं रहती किन्तु करे शुद्ध मनसे, अन्तरंगसे। यदि अच्छी ज्ञानसे रह लिये तो क्या खूब बढ़िया-बढ़िया भोजन कर लिया तो क्या ? इसके उपाय करनेसे ऐसे साधन करनेसे लाभके स्थान पर हानि ही है। उपाय ऐसा करो कि जिससे शरीरकी स्थिति बनी रहे इसके लिए भोजनका तो प्रयास करो, इसका उद्देश्य यही हो कि शरीरकी स्थिति बनी रहे, क्योंकि इसके रहते धर्मसाधन करना है, अतः भोजनके लिए तो विकल्प लेवें, किन्तु और पदार्थोंको, बाहरकी वस्तुओंको आवश्यक न समझें। इससे अपनी आत्माका ज्ञान बढ़ेगा, यथा समय निर्दोष भोजनके अतिरिक्त और कोई विकल्प मनमें न लाओ, बस सदा आत्माके ध्यानमें रत रहो। तपस्या वही है जो बाह्यपदार्थोंका मोह न रखें उसकी कामना न करे, स्वभाव का उपयोग करके बाह्यपदार्थोंमें मोह न करे।

जबसे त्यागी होते हैं, नियम लेते हैं तभीसे बाह्यपदार्थोंका त्याग हो जाता है। आत्मचिन्तन करना अपने को पहिचानना तभीसे ध्येय बन जाता है जबसे त्यागी हुए। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, तपाचार, वीर्याचार, चरित्राचार इन पांचोंका जो अभेदरत्नत्रयरूपमें पालन सो ही समाधि कहलाती है। वास्तवमें इसीको समाधि कहते हैं। किन्तु भेदरूपमें पालन करनेसे समाधि नहीं कहलाती। अभेदरूप पालनमें वीतरागा, निर्विकल्पक समाधि कहलाती है। जो स्वयं आचरण करते हैं व दूसरोंको कराते हैं, ऐसे ये आचार्यपरमेष्ठी है। वास्तवमें कृपा तो, उपकार तो इन आचार्योंका ही है क्योंकि माता-पिता तो जन्मके साथी हैं, माता-पिताने तो जन्म दिया इतने ही उपकारक, रक्षक हैं किन्तु जो सन्मार्गपर लगा देवे हम किस लिए आए इसके वास्तविक स्वरूप पर पहुंचा देवे वे ही तो वास्तविक हितकारी हैं। जो आत्माको ज्ञानमें लगाये हुए हैं, वे ही वास्तवमें हितकारी उपकारक हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्यने, समन्तभद्राचार्य, अकलंकजीने जो उपदेश दिया उससे हमें शिक्षा मिली है, उसीके द्वारा हम अपनी आत्माके स्वरूप को जान पाये, मुक्तिका मार्ग प्राप्त किया। उनका कितना बड़ा उपकार है यह बतानेकी सामर्थ्य नहीं। उनके सामने केवल जन्म ही देने वाले माता-पिताकी क्या कीमत ? वे ही बड़े उपकारी जीव हैं, (आचार्यादि) अतः मैं उन्हें नमस्कार करता हूं।

उपाध्याय परमेष्ठी भी हमारे उपकारक हैं जिन्होंने शुद्ध आस्तिकायका, शुद्ध द्रव्यका उपदेश दिया है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

व्याख्यान किया है, वह निजात्मा शुद्ध है। शुद्ध आत्माके अतिरिक्त हेय हैं। ऐसा जिन्होंने दिखाया—वे ही बड़े उपकारक हैं हमारे। द्रव्य-क्षेत्र, काल भाव, इनमें द्रव्य-जीवपदार्थ, क्षेत्र-जीव अस्तिकाय, काल-जीव द्रव्य, भाव-जीवतत्व, इस प्रकार नाम बतायें हैं। द्रव्य नाम पिण्डका है। मोक्षशास्त्रमें बताया है कि "गुणपर्ययवद्द्रव्यं"। द्रव्यकी दृष्टिसे देखनेपर पता लगता है कि यह जीव अस्तिकाय है। इतना लम्बा इतना चौड़ा, इतना ऊंचा है, तथा असंख्यात प्रदेशों वाला है। कालदृष्टिसे जीवद्रव्य अपार कालका दृष्टिसे है जीवद्रव्य। कालने पर्यायोंको ग्रहण किया। भाव-दृष्टिसे जीवतत्त्व ग्रहण किया गया। इससे स्वरूपका पता लगता है, यह स्वरूपको ग्रहण करता है। इनका जो शुद्ध वर्णन करते हैं ऐसे ये उपाध्याय परमेष्ठी हैं। जो निश्चय मोक्षमार्गका प्रतिपादन करते हैं। निश्चय अभेदरत्नत्रय और भेदरत्नत्रय व्यवहारका जो प्रतिपादन करते हैं ऐसे ये उपाध्याय परमेष्ठी हैं। अभेदरत्नत्रका मतलब है कि शुद्ध स्वभावमें शुद्ध ज्ञानके द्वारा रमण करे वह अभेदरत्नत्रय कहलाता है। जीवादि सात तत्वोंका श्रद्धान करना, वे सात तत्व मोक्षशास्त्रमें इस प्रकार बताये हैं कि जीवाजीवाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्व। अर्थात जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्व कहे गये हैं। गुण व उसकी पर्यायोंके साथ पदार्थका ज्ञान करना, महाव्रत पालना, समिति पालना, इसका नाम व्यवहार मोक्षमार्ग है। दोनोंका जो प्रतिपादन करते है उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं उन्हें उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिए मैं नमस्कार करता हूं।

सर्व उपदेशका तात्पर्य है—ममता भाव धारण करें ज्ञाता दृष्टा बने, तभी तो आत्मदर्शन कर सकोगे। जितने भी क्लेश, सन्ताप, दुःख, विपदा आदि भोग रहे हो यह सब रागद्वेष, ससारके जीवोंमें छननी आदि बुरे परिणामोंका ही फल है। भैया, यदि सब जीवों पर यही भाव रखो कि दुनियांके जितने भर जीव हैं सब सुखी होवें तो अपना क्या बिगड़ जावेगा ? जितना भी परोपकार करोगे, मन, बचन, काय, धनसे दूसरोंका हित करोगे उतने ही परिणाम निर्मल होंगे और आत्मदर्शनमें सुलभता प्राप्त होगी। यह जितना भी परिश्रम कर रहा है, और जिनके लिए कर रहा है, यह नहीं सोचता कि उनसे कोई लाभ नहीं होने वाला है। बल्कि ये लोग तो और तुझे पतनके मार्गमें ढकेल रहे हैं। अतः यदि तू अपना भला चाहता है तो आचार्यों द्वारा दिये गये उपदेशका आचरण करता हुआ अपनी आत्माको भलाईके मार्ग पर लगा। सब विपदाएं, रोग शोक अपने आप दूर भाग जावेंगी। अतः तू अपनेको पहिचान और बस यही सोच कि मैं तो चैतन्य स्वरूप, ज्योति स्वरूप, निज सहज स्वभाव वाला हूं, और चैतन्य ही मेरा सब कुछ है। इस संसारमें जो साधु पुरुष हैं वे धन्य हैं। जो साधे सो साधु, आत्माकी सिद्धि करे सो साधु। रागद्वेष दूर करनेसे समता आती है। रागद्वेष दूर करनेके लिए ज्ञान व आचरण सम्यक् बनावें। दर्शनसी आराधना करे। मेरा तो यही कार्य है कि ज्ञाता दृष्टा रहूं। इसके अतिरिक्त कोई कार्य नहीं। ज्ञाता दृष्टाकी स्थितिकी आराधना सो चरित्रकी आराधना है। तपमें शक्ति न छिपाना सो तपाराधना। आराधना तो सब कोई करता ही है, किन्तु यह विचारना चाहिये कि कौनसी आराधना हमें शान्ति दे सकती है। दुनियांमें ऐसे तो बहुतसे हैं जो मोह बनाये हुए हैं किन्तु ऐसे बिरले ही हैं जो ज्ञान और वैराग्यमें प्रगति कर रहे हैं, जो समता परिणाम बनाये हुए हैं, सबको समानदृष्टिसे देखते हैं वे कल्याणमय हैं। ऋषि मुनियोंका समागम प्राप्त कर अपनेको सावधान कर लेना बहुत ही महत्वकी बात हुआ करती है। लोगोंके आराम, ऐश वैभव, धन आदि देखकर तृष्णा होती है। किन्तु जो आत्मकल्याणके इच्छुक हैं वे इस पर कभी विचार नहीं करते। ये तो भ्रमणशील प्राणीका मोह है, तृष्णा है जो अपनेसे अधिक वैभव देखकर, अपनेसे अच्छे वस्त्र देखकर कल्पना करता है कि मुझे भी इसी प्रकार प्राप्त हों। किन्तु ध्यानी जन इससे विपरीत ही विचार किया करते हैं।

साधुजन निर्ग्रन्थ रहते हैं। अपना जो सहजस्वभाव, चैतन्यस्वरूप है, शरीरसे अलग उस स्वभावका ही सान्नुज ? श्रद्धान करते हैं, ज्ञान करते हैं, आचरण करते हैं, कोई भी, कैसा भी कष्ट क्यों न आवे उसे भी समता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

परिणामोंसे ही सहन करते हैं। गृहस्थीके जंजालमें फंसकर किस प्रकार आत्मोद्धार हो सकता है, क्योंकि ज्ञानकी बात तो कोई करता नहीं। स्त्री अपनी फरमाइश करती है, पुत्र अपनी। तात्पय यह कि सब कोई अपनी-अपनी आकाङ्क्षाएं पूर्ण कराना चाहते हैं उसमें आत्माकी क्या और कैसे भलाई हो सकती है। अतः अपने परिवारको भी ज्ञानकी बातें सिखाओ ज्ञानी बनाओ। विद्यामें सब कोई निपुण हों अपने धर्मका ज्ञान हो ऐसा जितना हो सके प्रबन्ध करना चाहिये। विद्या गृहस्थ जीवन में बहुत ही आवश्यक है। बताया भी है कि "माता शत्रुः पिता बैरी येन बालो न पाठितः॥ अर्थात् उसके मा बाप, उस पुत्रके या पुत्रीके मां, बाप बैरी है दुश्मन हैं जिन्होंने अच्छी शिक्षा नहीं दिलाई, शान्तिका उपाय नहीं बताया। अतः आवश्यक है अपने गृहस्थ जीवनको सुखी बनानेके लिए उनका आचरण सुधारना, उनमें धर्मके प्रति श्रद्धा जगाना, ज्ञानवान बनाना, ज्ञान चर्चा करना चाहिये। किन्तु यह सब ज्ञानके द्वारा ही साध्य हो सकता है। जिसने अपने परिवारको ज्ञानी बनाया वह सुखी रह सकता है। अच्छी बात होगी कि अपनी सन्तान व्यसनोंमें न पड़कर, कुमार्गमें न लगा कर सदाचारी बन, ज्ञानवान बने। स्वयं भी न्याय नीतिसे आजीवनको चलाये ताकि लोगोंमें, लोकमें प्रिय बन सके।

जब तक साधु अवस्था तक नहीं पहुंचता हो तब तक घरमें रहकर ही आत्मचिन्तन करो, अपनेको परिवारको ज्ञानी बनाओ। उन्हें समझाओ कि देखो भैया! सुख यदि है तो वह अपनी आत्मामें है, अपने आपमें है, इसके लिए बहुत ही आवश्यक है कि भोजन सादा हो। वस्त्र साफ और सादा हो, विचार ऊंचे हों। यह नहीं कि आता कुछ नहीं और पोशाक ऐसी कि जिससे प्रकट हो कि बहुत बड़ा निपुण होगा। अतः भैया उच्चविचार रखो। अपने परिवारकी व्यवस्था बहुत ही विचारकर करो, सबसे बड़ी बात ज्ञानको है, समाधि ही सबसे ऊंची चीज है। रागद्वेषरहित समता परिणाम ही उत्कृष्ट परिणाम है। सब जीवोंपर क्षमा भाव रहे और यदि कदाचित् अपनोंने किसीका अनिष्ट विचारा और वह निमित्तसे हो भी गया तो इस आत्मामें क्या वृद्धि हो गयी? यह मैं तो पूर्ण एक, सहजस्वभावी चैतन्यस्वरूप हूं। अतः कोई विकल्प न करके ज्ञानाराधना करो। सिद्धमें श्रद्धा करो।

सोचो मैं हूं वह हैं भगवान्, मैं वह हूं जो हैं भगवान्। अर्थात् मैं वही हूं जो भगवान् हैं और जो मैं हूं वही भगवान् हैं और जो मैं हूं वही भगवान् हैं। प्रत्येक जीव सिद्ध जैसे स्वभाववाला है। अतः यदि कोई किसी जीवका अपमान करता है तो वह भगवान्का अपमान करता है। उसको वेदना हुई यह बात तो अलग है, उसका तो अलग ही दोष लगा किन्तु वह जो अपमान हुआ वह अलग। अतः सब प्राणियों पर समताभाव रखो। यदि कोई अपनेको प्रतिकूल बात भी कह देता है तो भी मनमें क्लेश न कर उसपर करुणा ही रखो और यही सोचो कि यह भी तो चैतन्यस्वरूप है किन्तु कर्मोंके कारण, अज्ञानके कारण इसकी ऐसी दशा हो रही है। फिर यह तो मुफ्तमें ही काम हो गया जो वह कुछ कहकर प्रसन्न हो गया। जीवका तो दया करना धर्म ही है जितना भी बन सके दूसरोंकी भलाई करो चाहे दान देकर चाहे मीठे वचन बोलकर। इससे अपनेको भी सुख मिलता है और दूसरोंको भी। ये पुत्र स्त्री आदि जो बाह्यपदार्थ हैं और जिन्हें तू समझ रहा है केवल विपदा ही देने वाले हैं। कल्याण करने वाले नहीं। यदि इस प्राणीका कल्याण है तो वह संसारी प्राणीमें छटनी करना नहीं। बल्कि कल्याण हैं अपने सच्चे स्वभावको पहिचानना, अपने सहज स्वभावको पहिचानना, उसमें श्रद्धान् करना, आत्मचिंतन करना इसमें अलौकिक सुख मिलता है, आत्माके दर्शन होते हैं, किन्तु उसके लिए अपना ज्ञान व आचरण निमल रखना अनिवार्य है। मैं तो सहजस्वभाव मात्र हूं। समताका उपाय है अपना स्वभाव पहिचानना कि मेरा सत्त्व सबसे भिन्न है मैं तो अपने आपमें सहजस्वभाव मात्र हूं, अपने आपमें परिपूर्ण हूं, ये सब जो दृश्य देखे जा रहे हैं पुण्य पापके खेल हैं, उपाधिके नाटक हैं! जब तक ज्ञान नहीं तभी तक परपदार्थोंमें दृष्टि लगी हुई है अतः यही दृष्टि रखो कि मेरा शरण मेरा स्वभाव है, भगवान् है और यदि इन कर्मोंके जंजालोंमें फंसे रहे तो चाहे भगवान्के पीछे भी छिप जावो वहां भी इन विपदाओंसे न बच पावोगे।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अब तक सात दोहोंमें पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है। जो परमपदमें स्थित हों, उत्कृष्ट हों उन्हें परमेष्ठी कहते हैं। परमेष्ठियोंमें साधुओंसे ऊंचापद अरहन्त भगवन्तका है उनसे ऊंचापद सिद्धोंका है। तो अब तक की भूमिकामें जो पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया गया है वह इसलिए कि हम उनके गुणोंको प्राप्त कर सकें, उनके अनुरूप आचरण बना सकें। सो गुणोंकी प्राप्तिके लिए ही नमस्कार किया गया है। यदि यह उद्देश्य लेकर पूजा करें नमस्कार करें कि हमें अमुक वस्तुकी प्राप्ति हो जावे, हमारा अमुक कार्य सिद्ध हो जावे या हमारे घर लड़का पैदा हो जावे तो वह मिथ्याचार है। अब प्रभाकर भट्ट गुरु महाराजसे अपना भाव निवेदन करते हैं—

गउ संसार वसंन्ताहं समिय कालु अणंतु !
परमइं किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंत्तु ॥९॥

हे स्वामिन् ! संसारमें बसते हुए, जन्ममरणके चक्रमें घूमते हुए मेरा अनन्तकाल व्यतीत हो गया, किन्तु मैं सुख रच भी न पा सका और बड़े दुःखोंको ही प्राप्त करता रहा। हमारेमें और आपमें परमात्मा व्यक्त नहीं। व्यक्तमें दुःख लग रहे हैं, अज्ञान है, किन्तु शक्तिसे परमात्मतत्त्व भरा हुआ है। यदि ऐसा न होता तो शुद्ध आत्माका विकास न होता। इस परमात्मप्रकाश ग्रन्थमें शक्तिके परमात्माका ही वर्णन है। इसमें बताया है कि वह आत्मा घट-घटमें विराजमान है प्रत्येक जीवमें प्रकाशमान है। श्री प्रभाकर भट्ट अपने गुरु श्री योगेन्द्रदेवसे प्रश्न कर रहे हैं कि हे गुरुदेव, संसारमें बसते हुए अनन्तकाल व्यतीत हो गया किन्तु अब तक सुख प्राप्त न हो सका अपितु, दुःख ही दुःख मिला।

श्री प्रभाकर भट्टने व गुरु श्री योगेन्द्रने प्रथम तो पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया। ऐसा है कि गुरुका कोई न कोई मुख्य शिष्य रहा करता है, मुख्य भक्त रहा करता है। वह प्रश्न करता है और उत्तर प्राप्त करता है, उसी प्रकार यहां पर गुरु शिष्यने पंचपरमेष्ठीको नमस्कार किया, तदुपरान्त शिष्य अपने गुरुसे पूछता है कि हे स्वामी ! इस जीवको संसारमें भ्रमण करते अनन्तकाल बीत गया, किन्तु दुःखके सिवाय सुख प्राप्त न हो सका। प्रथम तो इसी भवमें उत्पन्न हुआ तो अकथनीय दुःख मिला, बच्चेकी अवस्थामें मुंहसे न बोल पानेके कारण अपनी इच्छा व्यक्त न कर सका, अतः दुःख उठाया। फिर कुछ बड़ा हुआ तो इच्छा न होते हुए स्कूल भेजा गया, इच्छानुसार कार्य न कर सका उसमें भी दुःख ही उठाया। फिर जवान हुआ तो जवानीके दुःख उठाये, बुढ़ापेका तो कहना ही कुछ नहीं दुःख ही दुःख है। पूर्वजन्मोंमें भी दुःख ही उठाये। कीड़े मकोड़े बने तो बुरी तरहसे कुचले गये। यहां तक कि अनेक लोग जान बूझकर भी मारते हैं। चूहेको पकड़ते हैं, उसकी पूंछ बांध लेते हैं और आगके ऊपर लटका देते हैं। वह तड़फ-तड़फकर मर जाता है। ये सब दुःख हमींने ही पाये हमने ही इन इन पर्यायोंमें जन्म लेकर दुःख उठाये। यदि नारकी हुए तो वहां वे दुःख उठाये। यदि देवता हुए वहांके दुःख सहे। इस प्रकार अब तक सुख न पाकर दुःख ही सहा। यह संसार खारे समुद्रकी तरह है। जिस प्रकार समुद्रमें खाराजल भरा रहता है उसी प्रकार नरक आदि दुःखोंसे भरा हुआ यह संसार है। पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, वनस्पती ये सभी तो जीव हैं क्या इनके दुःखका कुछ ठिकाना है। क्या इनको कोई पूछने वाला है ? नहीं। चलते फिरते भी लोग इनको जानसे कुचलते हैं, उनपर कोई दया नहीं करता। मनुष्यके यदि पुत्र न हुआ तो दुःख, हुआ, कुपूत हुआ तो दुःख और यदि सुपुत्र हुआ तो भी दुःख क्योंकि उसमें उपयोग लगेगा। धन है तब दुःख, नहीं है तब दुःख, तात्पर्य यह कि इस जीवको बाह्यपदार्थोंसे दुःख ही दुःख है सुख नहीं। क्योंकि अज्ञानमें दुःख ही आता है सुख नहीं और जहां यह जाना कि मेरी आत्माका स्वरूप चैतन्यस्वरूप है, चेतना है वहां इन सब दुःखोंकी इतिश्री।

भैया ! मेरा देव गुरु मेरे अन्दर है इस ज्ञानके होने पर सब संकट स्वयं ही नष्ट हो जावेंगे। किन्तु यह जो चेतन अचेतनका परिग्रह लगा रखा है यह सब विपदाका कारण है। कहां आत्माकी दृष्टिसे प्राप्त होने वाला

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अलौकिक सुख और कहां ये जगत्के नाना प्रकारके दुःख कितना अन्तर है ? यह अंर्तदृष्टिसे ही हुआ। बाहरसे दृष्टि ओझल करो, सबसे उपेक्षादृष्टि देखो ज्ञाता दृष्टा रहो इन्हें छोड़कर फिर कहां आनन्द ? इतना ही तो मर्म है ! अन्तंदृष्टि करो तो आनन्द और बाह्यदृष्टि करो तो दुःख मिलेगा। जहां राग, द्वेष, मोह नहीं, जहां जाननहार ही रहता है वहां समता परिणाम रहना है। समताके विपरीत तामस होता है, ये सब संसार इसीके उदाहरण हैं और समताके उदाहरण भगवान् हैं। जिसके कारण इस समताके ही कारण कर्म भी झड़ गये और शरीररहित भी हो गये। परमउत्कृष्ट अलौकिक सुखको प्राप्त हो गये यह सत्व समताका ही तो फल है। अपना अपने सिवाय क्या है, किसीको अपना मानना किसीको पराया मानना ये ही तो तामसके भेद हैं। उपाधिके कारण ये नाना प्रकारके नाटक हो रहे हैं ! किसी भी जीवके प्रति खराब भावना मत बनाओ। भिखारीको भी देखकर यही सोचो कि कहां तो इसका परमात्म तत्व और कहां ये दशा हो रही है। इस प्रकार सोचे और सामर्थ्यानुसार उनका उपकार करे। उसका अपमान करना अन्याय है उसका अपमान करना अपने आपमें बसे हुए परमात्मतत्त्वका अपमान है। जो दुःख होगा वह अलग। हम परपदार्थोंमें रागद्वेषका आनन्द मान रहे हैं और आनन्दनिधान निजपरमात्मतत्त्वका दर्शन नहीं हो पा रहा है उसके प्रति कुछ नहीं करते। मैं रागद्वेषरहित चैतन्यस्वभावमात्र हूं ऐसी भावना करे तो परम-आनन्द प्राप्त हो।

भैया, भ्रमकी जड़को ज्ञानकी फूंकसे उड़ादो तो दुःखोंका पहाड़ सब नष्ट हो जावे। सब कोई रोजगार का, धन कमानेका यशका उपाय करते हैं किन्तु ज्ञानका उपाय बिरले ही करते हैं। समुद्रमें जलचर जीव होते और यहां इस संसारमें जन्म, मरणके चक्कर हैं। जैसे एक बांसकी दोनों और नलीमें आग लगी हुई और बीचमें कीड़ा बैठा हुआ हो तो उसकी जो दशा होती है वही दशा इस प्राणीकी हो रही है विकल्प जालोंमें फंसे रहनेके कारण, जन्म-मरणके कारण। कहां तो यह प्राणी चैतन्यस्वभाव वाला और कहां भ्रमके कारण जन्ममरणकी व्याधिमें फंसा हुआ है। इन सबमें ही हे स्वामी ! मेरा अनन्तकाल बीत गया किन्तु सुख नहीं पाया। समुद्रमें बड़वानल उठती है और संसारमें नाना प्रकारके दुःखोंकी आग जलती है। इन दुखोंका मूल है भ्रम कि मैं अमुक जातिका अमुक शहर का अमुक कुटुम्बका हूं आदि आदि। भ्रमसे यह जीव इन दुःखोंमें ही सुख मान रहा है। आत्मा पर स्वभाव या नजर डाले तो सब शान्त हो जावेगा। एतदर्थ प्रभुकी भक्ति भी एक साधन है। यदि अन्य किसी भी अभिप्रायसे भगवान्की स्तुति करोगे तो दोनों ओरसे ही अनिष्ट होगा। न तो आत्मकल्याण होगा और न वैभव होगा। यदि कुछ न चाह कर भक्ति करे, मुक्तिकी कामना करे तो वैभव भी पाता है और मुक्ति भी। अन्तंदृष्टि कर जो हम निर्णय करेंगे वही सत्य है। हे प्रभु ! कहां तो मेरा ऐसा स्वरूप और कहां ये दुनियाके चक्कर ? समुद्रमें तरंगें उठती हैं और यहां संकल्प और विकल्प होते हैं। यही जन्मसे मरण तक हो रहा है।

हे प्रभो ! इस संसार सागरमें मेरा अनन्तकाल बीत गया किन्तु अब तक सुख नहीं मिला क्योंकि मैंने अपने आपको नहीं पहिचाना। पांचों इन्द्रियां भी मिलीं, उत्तम कुल, उत्तमदेश, उत्तम आयु, उत्तम बुद्धि ग्रहण करने की शक्ति, श्रद्धान, संयम ये सब पाकर भी आत्माका ज्ञान नहीं किया। यदि अब भी न चेता तो फिर कल्याण नहीं। विवेक आचार, विचार यदि ये तीनों सम्यक् हैं तो शरण है, अन्यथा इस संसारमें कोई शरण नहीं। सबसे दुर्लभ तो यह है कि इस जीवने मानवजीवन पाया। बहुत कठिनतासे प्राप्त हुआ है यह मानव जीवन, फिर उससे दुर्लभ है उत्कृष्ट बुद्धिका प्राप्त करना, फिर इससे भी दुर्लभ है सच्चे धर्मका श्रवण करना, उससे दुर्लभ है ग्रहण करनेकी, समझनेकी शक्ति पाना, उससे कठिन स्मरण बनाये रखना उससे दुर्लभ है श्रद्धान् करना, फ़िर उससे दुर्लभ संयमका पाना, इससे दुर्लभ विषयचिन्ताओंसे अलग रहना, इससे भी दुर्लभ है कषाय न करना, फिर इससे भी दुर्लभ है बोधिलाभ। क्या सार है कषाय करने व क्षोभ रखनेमें किसीने यदि कुछ प्रतिकूल कह दिया तो मेरी आत्मामें क्या हो जावेगा ? क्या बिगड़ जावेगा मेरा ? भैया क्रोध करनेसे बनने वाला काम भी बिगड़ जाता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बनता नहीं। अतः क्रोधसे काम बन जाता है ये भ्रम निर्मूल है। तपस्या करनेके लिए भावना बनाना यह भी अति कठिन कार्य है। यथार्थ तत्त्वकी भावना, शुद्धआत्मतत्त्वकी भावना करना यह उससे भी कठिन है। इतना यदि हो जावे तो भी वह मुक्त नहीं हो सकेगा, जब तक वह शुद्धआत्माकी प्रतीति न करने लगे तब तक कल्याण नहीं और यदि इन सबमें कठिन साध्य वस्तु है तो वह है रागद्वेषरहित परिणामोंकी साधना क्योंकि मिथ्यात्व, कषाय विषय के भाव प्रबल हैं, इन तीनोंके अर्थात् मिथ्यात्व (भ्रम), विषय (चाह), कषाय (क्रोध) रहते हुए आत्मोद्धार न हो सकेगा। जब तक मिथ्यात्व है तब तक वास्तविक स्वरूपका ज्ञान होना अति कठिन है, जब तक भ्रम है तब तक सम्यक्ज्ञान सम्भव नहीं। जब तक क्रोधादि है तब तक भी कल्याण नहीं। और जब तक चाह है, परपदार्थोंकी इच्छा तृष्णा है तब तक भी कल्याण नहीं परपदार्थकी दृष्टि दुःखकी ही देने वाली है सुखकी देने वाली नहीं। कषायके तीव्र होने पर पार नहीं पाया जा सकता। मन्दकषाय भी होना एक बड़प्पन की बात है यदि यह भी न रहे तब तो वह अलौकिक दुनियांमें पहुंच जावेगा, हमारे बीचमें नहीं रह सकता फिर और इन्हीं कषायादिकी प्रबलतासे ही समतापरिणामका होना अति कठिन है।

बोधि और समाधि ये दो बातें दुनियांमें अतिदुलभ हैं। सम्यदर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति कर लेना सो बोधि है। जो प्राप्त नहीं थे सो प्राप्त कर लेना उसे बोधि कहते हैं। और इस रत्नत्रयको परभव तक साथ ले जाना सो समाधि हैं। इसीलिए समाधिसे ही नाम समाधिमरण पड़ गया। इन तीनोंको सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्रको साथ लेजानेका नाम ही समाधि है, और इस रूप जो मरण होता है उसका नाम समाधि-मरण है। यदि कोई इस रत्नत्रयको प्राप्त कर भी प्रमाद करता है तो इस ससारूपी भयानक बनमें चिरकाल तक भ्रमण करेगा। अतः क्षणभर भी प्रमाद करना चाहिये। प्रमादमें पतन ही है उत्थान नहीं। मोक्षका प्रमाद करना कषाय है। जहां कषाय है वहां मुक्ति कहां? जो आत्माको कसे सो कषाय, जो आत्माको दुःख पहुंचावे, ऐसे कषाय ही दुःखके कारण हैं सुखके नहीं, आनन्दके नहीं, मुक्तिके नहीं। जिन्हें हम अपना मान रहे हैं और बड़े हितैषी समझते हैं वास्तवमें तो मेरे वे ही शत्रु हैं, वे ही मुझे पतनकी ओर ले जावेंगे। और जो हैं उनकी ओरसे बल्कि कुछ विवाद नहीं। सबसे बड़ा यदि दुश्मन इस आत्माका कोई है तो वह है जिसे हम अपना मान रहे हैं। उनके लिए आजीविका करते हैं, कमाते हैं, पाप करते हैं, आजीविकामें झूठ, माया, अन्याय, अनीतिकी शरण लेते हैं। किसके लिए, उन्हींके लिए जिनके साथ बहुत मोह कर रहा है। भैया तेरा इस संसारमें कोई शरण नहीं, क्या मरने पर ये सब तेरे भाई, बहिन, माता, पिता, पुत्र पिता, स्त्री आदि जिन्हें तू अपना समझता है, साथ जावेंगे? क्या ये तेरी शरण हैं? तेरी आत्माको कुछ सुख पहुंचा सकते हैं? नहीं।

तेरी शरण यदि कोई है तो वह है चैतन्यदर्शन। यदि तेरे साथ कुछ जावेगा तो वह ज्ञान ही साथ जा सकता है, ये बाह्यपदार्थ नहीं। जो भी आज तेरी इज्जत कर रहे हैं, तेरा बड़प्पन कर रहे हैं वह सब स्वार्थवश ही कर रहे हैं। तेरी आत्माका आनन्द इन सबमें नहीं है। अतः हे हितैषियों सब जीवों पर समता भाव धारणकर यही भावना भाओ कि दुनियांके सभी जीव सुखी होंवें, सब पर क्षमाभाव रखो, किसीसे मोह, रागद्वेष न करो। यदि कोई प्रतिकूल भी तुझे कुछ बोल जावेगा तो तेरा क्या बिगाड़ हो जावेगा, तू तो चैतन्यस्वरूप है, ज्योतिपुञ्ज है। बाह्यतत्त्वोंसे तेरा क्या सम्बन्ध? अतः इस प्रकार विचार करके अपनी आत्माके कल्याणमें लगो। तन, मन, धन, वचनमें सामर्थ्य होते हुए भी कंजूसी करना ये सांसारिक प्रमाद है। ये तो मन वचन आदि नष्ट होने वाली चीजें हैं। इनमें नित्यता नहीं। जितनी क्षण तक बल है उस समय तक उपकार कर। यदि उपकार न किया सामर्थ्य रहते, यदि इन चारोंका सदुपयोग न किया तो बुढ़ापेमें क्या करेगा? जब तक हिम्मत है कमसे कम तब तक तो सेवा करे। फ़िर ये तो रहेगा कि मैंने सामर्थ्य रहते मन, वचन काय, धनका सदुपयोग किया। और फ़िर एक बात और भी है कि हमारे द्वारा किये गये उपकारसे कृतार्थ होकर लोग बुढ़ापेमें हमारी भी सेवा करेंगे। मनका बल पाकर भावना शुद्ध रखो। यदि किसीसे कुछ तकलीफ भी पहुंचे तो सह सको ऐसा सामर्थ्य बनाओ। धन बलके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहते धनका सदुपयोग करो, उदारता करो, दान दो। अन्यथा मिट जाने पर पश्चाताप होगा कि मैंने धन बल रहते सदुपयोग न किया। यदि दानादि सत्कार्योंमें खच किया होता तो आज क्लेश तो न होता। बचन बल रहते हुए किसीको कठोर बात मत कहो, सबसे नम्रतासे पेश आओ। सबके प्रति मिष्ट वाक्य बोलो, किसीका अपमान न करो, अवहेलना न करो, सबको अपने समान चैतन्यस्वरूप भगवानके स्वरूप वाला समझो। इन चारों मन, वचन, काय, धनसे शुद्ध रूपसे किया गया उपकार कभी नहीं जाता बल्कि पुण्य होता ही चला जावेगा। ये चारों हैं तो क्षणिक ही, यदि सदुपयोग कर लिया तो भला है, नहीं तो नष्ट तो ये होवेंगे ही। सदुपयोग न किया तो पीछे पछतावा होगा, क्लेश होगा। सो भैया सावधान रहो अन्यथा रत्नत्रयको प्राप्त कर भी संसाररूपी भयानक बनमें चिरकाल तक भ्रमण करना पड़ेगा प्रमाद करनेसे।

हे नाथ ! मुझे बोधि, समाधि प्राप्त न हुई अतः अब तक मैं भ्रमण करते रहनेके कारण परमानन्दके रसका पान न कर सका। वह रस प्राप्त होता है—शुद्धात्माकी भावनासे। अपने आपको अनुभव करनेसे, वह रस उदित होता है। वह मैं आज तक संसारके दुःखोंको सुख माननेके कारण न प्राप्त कर सका, अतः सम्यक् अनुभव न प्राप्त कर मैंने अब तक चारों गतियोंमें उत्पन्न दुःख ही प्राप्त किये। श्री प्रभाकर भट्टजी अपने गुरुसे (श्री योगेन्द्र जी से) कह रहे हैं कि मैंने अब तक दुःख ही पाया सुख नहीं। जिस आनन्दके प्राप्त न होने पर यह प्राणी भटकता रहता है चारों गतियोंमें वही उपादेय है अन्य नहीं। यही इस श्लोकमें बताया गया है। आत्माके ध्यानसे उत्पन्न जो आनन्द है वही उपादेय है और आत्माका ध्यान रागद्वेष रूप परिणाम रहनेसे हो नहीं सकता। जब तक मोह है, जब तक परपदार्थोंमें रागद्वेषकी बुद्धि है तभी तक अपने आपका दर्शन नहीं हो सकता और रागद्वेषकी बुद्धि हटी समताभाव प्राप्त हुआ कि फिर कुछ विपदा नहीं। यदि कोई संसारमें विपदा है, यदि भ्रमण करनेका, चारों गतियों में रुलनेका कोई कारण है तो वह है परपदार्थमें मोह, संसारके जीवोंमें छंटनी और उसका उपाय है अपने ज्ञान व आचरणको शुद्ध रखना। अपना ज्ञान निर्मल रख पदार्थोंको जाने तो, किन्तु उनमें लीन न होवे, मोह न करे। अपितु उपेक्षा रखे, आत्माका ध्यान करे, अपने स्वरूपको पहिचाने तो कल्याण है।

चउगइदुक्खह लत्ताइं जो परमप्पउ कोइ।
चउगइदुक्खविणासयरु कहहु पसाएं सो वि ॥१०॥

इसमें श्री प्रभाकर भट्टजीने यह प्रश्न किया कि चारों गतियोंके दुःखोंसे यदि छुटकारा दिलाने वाला कोई भगवान है तो बताओ ? कितना सरल प्रश्न किया जो कि लोकमें घटित होता है और तत्वमें भी। सुखी वही होते हैं जिन्होंने परमात्माके दर्शनके आनन्दका अनुभव किया, ज्ञान रसका पान किया। उन्हींको चारों गतियोंके दुःखोंका नाश होता है। वह आनन्द तो रागद्वेषरहित समाधिसे प्राप्त होता है। अहार, भय, मैथुन, परिग्रह संज्ञा जिनमें नहीं है उन्हें सुख प्राप्त होता है। संज्ञादिके दुःखोंसे पीड़ित प्रभाकर भट्ट जिज्ञासा कर रहे हैं कि हे गुरु ! हमें वह सुख बताओ जो दुःख दूर करे। उसी भगवानका वर्णन इस ग्रन्थमें है। खुदका आनन्द खुदमें ही खुदके द्वारा मिलना है। अतः खुदमें कुछ ऐसी कला होनी चाहिये ताकि आनन्द प्राप्त हो और यदि कला नहीं तो प्रयास व्यर्थ है।

भगवान् तो सूर्यकी तरहसे है। रास्ता दिखा दिया कोई देखना चाहे तो देख लेवे। कोई यदि आंखों पर पट्टी बांधे पड़ा रहे तो इसमें किसीका क्या दोष ? ये तो उपेक्षक निमित्त मात्र है। कोई उनके बताये मार्ग पर चल जावे तो ठीक है, कल्याण हो जावेगा। आत्मीय रसका पान कर लेगा अन्यथा ठोकरें खाता रहेगा इसी संसारमें चारों गतियोंमें। किसीका अन्य कोई रक्षक नहीं, शरण नहीं। स्वयं भी तो यह प्राणी किसीका रक्षक नहीं, शरण नहीं। उत्कृष्ट समता परिणामोंमें लीन हुए पुरुषोंको परमात्माका आभास होता है। स्थापित भगवान्की मूर्तिके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दर्शन भी तो इसी प्रयोजनसे किये जाते हैं। अब कोई यदि भगवानसे धनादिकी कामना हेतु उनकी पूजा करे, आराधना करे तो जब श्रद्धान ही सम्यक् नहीं तो पुण्यकी अपेक्षा पापका ही बन्ध होगा। उनके दर्शनका भी तो यही प्रयोजन है कि वे जिन गुणोंको प्राप्त कर परमात्मा हो गये हैं वे ही गुण मैं भी प्राप्त करुं, वैसा ही आचरण, वैसा ही श्रद्धान करुं तब उस आनन्दको उस पदको प्राप्त कर सकता हूं। अब कोई यदि यह सोचे कि भगवान् दु:खोंके हरने वाले व सुखके देने वाले हैं, सो वह बात भी ठीक नहीं है, भगवान् तो सूर्यकी तरह उपेक्षक निमित्तमात्र है, रास्ता आलोकित कर दिया कोई चले तो चल जावे, न चले तो भटकता रहे। जैसे कोई अन्धा पुरुष सूर्यके प्रकाश का भान नहीं कर सकता, उस प्रेरणा पर नहीं चल सकता। उसी प्रकार विषयोंके दुःखोंमें पांचों इन्द्रियोंके व मन के दु:खोंमें उनकी इच्छाओंमें बन्धा प्राणी कैसे भगवान्का अपने स्वरूपका दर्शन पा सकता है। प्रभुकी मुद्रा देखकर यही भावना भावे कि हे नाथ ! तुम भी तो ऐसे ही थे जैसा मैं हूं किन्तु आज आप उत्कृष्ट आत्मा हो गये। संसार के सकल पदार्थोंको आप जानते हैं फिर भी निज आनन्दमय हैं उन बाह्यपदार्थोंमें आपकी प्रवृत्ति नहीं। सबको जानते हुए भी उनके प्रति उपेक्षाभाव रखते हैं।

सिद्ध भगवान्की परिणतिको जानकर, जिनेन्द्र भगवान्की मुद्राको देखकर कल्याणमय भाव जगे तो उसे भव्यदर्शन कहते हैं। भगवान्की मुद्राको देखकर ऐसी भावना करनेसे कर्म टिक नहीं सकता, कर्मोंका क्षय उसी समय हो जाता है। उनके अनन्तगुणोंको देखनेसे, विचार करनेसे, आचरण करनेसे कर्म स्वयं टूटते चले जाते हैं। जहां उपयोग आत्मतत्वकी ओर है वहां कर्म नहीं जकड़े रह सकते। और जहां रागद्वेषरूप परिणाम हो रहे हैं वहां कर्मों का तांता लगा हुआ ही है, कर्मोंका बन्ध होता जा रहा है। हे प्राणी ! विचार तो कर कहां तो तेरा आत्माका स्वरूप ही जिसका ध्यान करनेसे उस रूप आचरण करनेसे कर्म स्वयमव तड़ातड़ टूटते चले जाते हैं और कहां ये परपदार्थ जिनमें रागद्वेषकी बुद्धि कर कर्मोंके जालमें फंसता जा रहा है ? सारी तारीफ उपयोगकी है। सोच हे भव्य जीव ! कहां उपयोग लगानेसे तेरा उद्धार है और कहां उपयोग लगानेसे तेरा पतन है। और फिर यह सोच-कर भी क्यों पतनकी ओर जानेको अग्रसर है ? क्यों परपदार्थकी बुद्धि कर रहा है ? ये सब तेरी शरण नहीं, कोई तुझे सुख नहीं पहुंचा सकता। ये सब जिन्हें तू मां, बाप, भाई, बहिन, औरत आदि समझ रहा है तेरे पतनके कारण हैं उत्थानके नहीं। यह समझ बूझ कर भी क्यों चारों गतियोंके दु:ख भुगतना चाहता है। क्या सुख है उनमें क्या आज तक तू सच्चा सुख पासका ?

भैया ! जरा अन्तर्दृष्टि तो करके देख ! तेरे अन्दर स्वयं लबालब आनन्द भरा हुआ है उसका पान कर। दु:खको सुख समझ कर इनके चक्करमें मत पड़, इनसे निकलनेका प्रयास कर। यह सब उपयोगका ही बोल बाला है। आत्माकी ओर पहुंचा कि ये सब संकट समाप्त हो जाते हैं। बाह्यमें यदि उपयोग है तो क्लेश ही नजर आयगा। धनसे जिन्हें तू बड़ा आदमी समझ रहा है, कहां हैं वे सुखी ? भिखारीको उस जैसा दुख है और धनाढ्य को उस जैसा दु:ख है। वे सुखी हैं पैसेके बलपर ये सोचना निर्मूल है। वे और भी दुखी हैं। पैसेके कारण चोरका डर, हिस्सा छांटनेका डर। तात्पर्य यह कि न सन्तोष है न सुख, है सदा उसीमें संकल्प विकल्प करता हुआ दुख भोगता रहता है। सुख पावे भी कैसे क्योंकि उसे वास्तविक सुखका ज्ञान ही नहीं।

क्या धन आदि प्राप्त कर आज तक कोई आनन्द मना सका ? नहीं। अपितु और दुखी ही हुआ। नाना प्रकारके कष्ट झेले। जिन्हें तू बड़ा मान रहा है, उनको देख विकल्प कर रहा है, कषाय कर रहा है, उनके प्रति तू यही सोच कि ये सब मायामय है, क्षणभंगुर है। जब ये ही न रहेंगे तो नाम ही क्या रहेगा। जब ये ही नष्ट होने वाले हैं तब उनके प्रति रागद्वेषकी बुद्धि करनेसे क्या लाभ होगा, क्या यश प्राप्त हो सकेगा इन सब ढकोसलोंमें।

जो परमसमाधि है, समता परिणाम है वही पार लगाने वाला है अन्य कुछ नहीं। परभवमें सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्रको साथ ले जाना सो समाधि है। अत: समाधिके दो अर्थ हुए—एक तो समतापरिणामका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नाम समाधि है, दूसरा अपने रत्नत्रयको परभवमें भी साथ ले जाना सो समाधि है और उसी अवस्थामें प्राणत्याग करनेसे समाधिमरण है। यदि समाधि नहीं है, आधि व्याधि उपाधिका लगाव है तो उसका कटु फल होगा। एक व्यक्ति एकको मार देता है तो उसे फांसीकी सजा होती है और यदि वह कई आदमियोंको मारे तो भी यहां फांसी ही होगी। तब इतने बड़े पापकी सजा कौन देगा? वह कर्मके अनुसार स्वयं ही विकट दुःख पावेंगे। कोई किसी को दुःख सुख देने वाला नहीं है। अपने परिणामोंके कारण ही सब दुःखी होते हैं। नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन चारों गतियोंके दुःखोंको यह जीव सहता रहता है।

यदि कोई सोचे कि देवगतिमें आनन्द है तो उसका भ्रम है, उनमें जो वाहनका काम करते हैं उन्हें वह कार्य करना ही होगा। मनुष्यगतिमें तो अपनी तनख्वाह पाकर काम छोड़ भी सकता है किन्तु वहां पर उन्हें अपनी ड्यूटी पूरी करनी ही होगी। तिर्यञ्चोंमें देखो घोड़ा है तांगेमें जोत दिया भूख लगी, प्यास लगी, लेकिन कोई पूछता है ऊपरसे मार ही पड़ती है। ये चले जा रहे हैं कोई पूछने वाला नहीं है। वह भी तो परमात्मा ही है किन्तु कर्मोंके जो जाल साथ बांध रखे हैं उनके कारण दुख भोगता है। देवता अपनेसे बड़े ऋद्धिधारीको देख झुरते हैं दुखी होते हैं। क्या कम दुःख है इस संसारमें। संसारके दुःखोंकी कोई गणना नहीं, उन्हें यह विश्वास नहीं देवलोकमें कि कभी मुझसे यह दासता छूट जावेगी। मनुष्योंमें मानकी बहुत मुख्यता है। देवोंमें लोभकी मुख्यता है। तिर्यञ्चोंमें मायाकषायकी मुख्यता है, और नरकोंमें क्रोधकी मुख्यता है। वे सब अपनी-अपनी कषायकी वेदनामें दुःखी हैं। यहां प्रश्न किया गया मैं यदि कोई इन चारों गतियोंके दुःखोंसे बचाने वाला परमात्मा है तो उसे बताओ। अब उसीका न्याय बताया जा रहा है। गुरु श्री योगेन्दु जी ने आत्मा तीन प्रकारकी बताई। (१) अन्तरात्मा (२) बहिरात्मा और (३) परमात्मा। इन तीन प्रकारोंमें हेय उपादेयका वर्णन करके भगवन्तत्त्वको बतायेंगे।

पुण पुण पणिविवि पंच गुरु भावें चित्त धरेवि।
भट्टपहायर विसुणि तुहुं अप्पा तिविहु कहेवि ॥११॥

श्री प्रभाकरभट्टने अपने गुरुसे प्रश्न किया था कि यदि दुनियाके दुःखोंसे चारों गतियोंके दुःखोंसे कोई छुटकारा दिलाने वाला भगवान् है तो उसे बताओ। तो श्री गुरु योगेन्दुजी पंचपरमेष्ठीको बारम्बार नमस्कार करके तथा पंचगुरुओंको चित्तमें धारण करके कहते हैं कि हे प्रभाकरभट्ट! सुनो तुमने जो प्रश्न किया है यह बहुत ही उत्तम है। मैं अब तीन प्रकारकी आत्माका वर्णन करता हूं। जिस प्रकार आज तुमने पूछा है कि चारों गतियोंके दुःखोंका दूर करने वाला यदि कोई परमात्मा है तो बताओ। इसी प्रकारका पूर्वमें भी भव्योंने यही प्रश्न किया था। यदि प्रश्न पूछनेवालेको अपने प्रश्नका यह पता लग जावे कि मैंने प्रश्न ठीक किया या नहीं तो उसे यह भी श्रद्धान् हो जाता है कि उत्तर भी अकाट्य सच्चा प्राप्त होगा। अतः पहिले श्री योगेन्दु जी यही कहते हैं कि हे प्रभाकर जी! जो तुमने यह प्रश्न किया, इससे पूर्व श्रेणिक भरत आदिने समवशरणमें जाकर प्रश्न किया था। तुम्हारा प्रश्न बहुत ही उचित है। अतः सुनो—

आत्मा तीन प्रकारकी है (१) अन्तरात्मा, (२) बहिरात्मा (३) परमात्मा। यह बहिरात्मा ज्ञानबल द्वारा बहिरात्मपनेको छोड़कर अन्तरात्मा बनकर परमात्मा बन सकता है, उसका उपाय है कि जो तेरा सहजस्वरूप है उसका ध्यान कर। गुणस्थानातीत जो आत्मा है उसे भगवान् कहते हैं। भगवान् होनेका जो स्वभाव, परमात्मा बननेका जो स्वभाव वह भी भगवान् कहलाता है। अपने अन्दर भी भगवान् है और बाहर भी भगवान् हैं। अपने अन्दरके भगवान्को पहिचाननेसे पर्यायमें भगवान् बना जा सकता है। परमात्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मामें वही स्वभाव है। स्वभाव कहीं नहीं जाता। यह कारण परमात्मत्व एकस्वरूप ही है।

यदि कोई मास्टर किसी बच्चेसे पूछे कि ४ में से ६ गये तो बाकी क्या रहेगा? जब प्रश्न ही गलत है तो उत्तर क्या सही दे पावेगा, उसी प्रकार जब यह पता लग जावे कि मैंने जो प्रश्न किया वह उचित है तब यह भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विश्वास हो जाता है कि उत्तर भी सही ही मिलेगा। हे प्रभाकरभट्ट! जो तुमने प्रश्न किया वह उचित है। ऐसा प्रश्न पहिले भी भगवान्‌के समवशरणमें जाकर, भेदरत्नत्रय व अभेदरत्नत्रय जिन्हें प्रिय हैं ऐसे भरत श्रेणिक आदि ने पूछा था: कि यदि कोई संसारके दुःखोंसे बचाने वाला भगवान् है तो उसे बताओ। यह प्रश्न जानने योग्य है। जिन्होंने ऐसा प्रश्न किया था वे परमानन्द सुधारसके प्यासे थे। जो जिस चीजका प्यासा होता है उसे उसीको लगन लग जाती है। जिसको जिस बातकी रुचि होती है वह उसके पीछे लग जाता है जब तक प्राप्त नहीं कर लेता। वे भव्यगण परमात्म सुधारसके प्यासे थे और वह सुधारस परमात्माकी भक्तिसे ही प्राप्त हो सकता है। भगवान्‌की भावनासे अलौकिक आनन्द आता है। वीतराग अमृत रसके प्यासे उन भव्योंने भी यही बात पूछी थी। जब आकुलता होती है तभी ऐसी बातें पूछी जाती हैं। वे भी संसारके दुःखोंसे दुखी थे अतः आत्माकी खोजमें लगे। बताओ कहां तो आत्माका आनन्द और कहां ये संसारके दुःख? वह आनन्द मुझमें है, मैं आनन्दका सागर हूं किन्तु जब वह वीतरागको समाधि होवे तभी यह आनन्द मिल सकता है। जब मैं ज्ञाता दृष्टा रहूं तभी वह सुख मिल सकता है। उन सबकी भरत श्रेणिक आदिकी भीतरी भावना यही थी कि संसारका दुःख न रहे अतः वे भी इस बातको पूछनेके लिए परिवार सहित सर्वज्ञ तीर्थंकरोंके समवशरणमें पहुंचे, नमस्कार कर बादमे यही प्रश्न किया था कि दुनियांके दुःखोंसे छुटकारा दिलाने वाला यदि कोई भगवान् है तो बताओ। आगममें तीन लोक तीन काल आदि का वर्णन तथा किन परिणामोसे कर्मबंध कट जावें? यह सब पूछ लेने पर यही प्रश्न किया था, जो आज तुमने पूछा है इसका उत्तर ले लेना बहुत आवश्यक है।

श्री प्रभाकरभट्ट भी संसारके दुःखोंसे दुखी थे। आत्माके स्वभावको पहिचाननेके लिए लगन लगी हुई थी। अतः जो यह प्रश्न पूछा कि वह परमात्मा बताओ जो हमें छुटकारा दिलाये, कितना सारगर्भित प्रश्न है। सबका सब निचोड़ भरा है और बातोंकी पूछनासे क्या लाभ है? साराका सारा सार तो इसी प्रश्नमें भरा हुआ है। इस प्रकार ढाढस दे श्री योगेन्दु जी आत्माको तीन प्रकारका बता रहे हैं—(१) अन्तरात्मा (२) बहिरात्मा। (३) परमात्मा। परपदार्थोंमें दृष्टि जावे कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरा बन्धु है, यह मेरी पौत्री है, मकान है, धन है, माता है, पिता है आदि आदि यह हुआ बाहिरात्मा तत्त्व। भीतरके मर्मको जानना सो अन्तरात्मा तत्त्व, अपने को पहिचानना कि मेरा स्वरूप ज्योतिपुञ्ज है, चेतना है चैतन्यस्वरूप है आदि सो अन्तरात्मा है। जो चैतन्यस्भाव को ही आत्मा मानता है वह अन्तरात्मा कहलाता है। भैया, संसारमें रुलना न रुलना यह सब अपने आप पर है। कहीं भी रहे किसी भी परिस्थितिमें क्यों न रहे किन्तु यही विचार करता रहे कि मैं तो चिद्स्वभाव हूं, मेरा लक्षण चेतना है। इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। मैं रूप रस गंध रहित अरूपी हूं। आत्माका लक्ष्य करने वालेको अन्तरात्मा कहते हैं। भैया किसीसे कुछ मिलना जुलना तो है नहीं इसे, किन्तु व्यर्थ ही बाह्य पदार्थोंमें पड़कर अपने स्वभावसे, अपनी आत्मासे दूर होता जा रहा है और जिसकी श्रद्धा सही है अटल है, समझो कि उसका कदम मोक्षके मार्गमें जमकर है, स्थिर है।

भैया, तीन प्राणी थे, एक बूढ़ा, एक जवान, एक बच्चा। तीनोंने विचार किया कि हमें अब आत्महित करना चाहिये। अच्छा ऐसा किया जावे कि जिसे वैराग्य हो जावे पहिले वह सबको चेतावेगा। सबको उपदेश देगा। यह विचारकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद बूढ़ेने सोचा कि अब तो मैं बहुत बूढ़ा हो गया अतः आत्मकल्याण करना चाहिये। अतः उसने अपने घरकी सम्पूर्ण व्यवस्था सुव्यवस्थित करके सब काम लड़कोंको समझा दिया और स्वयं तपस्याहेतु चल दिया। रास्तेमें पड़ती थी जवानकी दुकान। उससे जाकर बूढ़ा बोला कि भैया हमने घर छोड़ दिया अब आत्मचिन्तन हेतु जा रहा हूं। घरकी सब व्यवस्था ठीक कर दी है। जवान ये बातें सुन खुली दुकान छोड़ उसके साथ हो लिया और बोला कि चलो मैं भी चलता हूं। वह बूढ़ा बोला कि तुम तो सब कुछ ऐसे ही अव्यवस्थित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़ चल दिये, कमसे कम जहां-जहां सब सामान रखा है, रुपया पैसादि जो भी जिस पर है यह सब अपने लड़कों को सम्भाल दो अच्छी तरह, कोई अधिक समय न लगेगा। जवान बोला कि जिस चिजको छोड़ना है उसमें दूसरों का क्या लगाना ? फिर मेरे लिए तो सब समान हैं क्या घरके क्या बाहरके, अतः किसको सम्भाल दूं मैं ये सब इस प्रकार सब कुछ उसी प्रकार छोड़ चल दिया। कुछ दूर पर उन्हें वह बच्चा मिला खेलता हुआ। उन्होंने उसको अपना समाचार कहा कि हम अब जा रहे हैं आत्महित करने। वह लड़का यह सुन खेल छोड़ साथ हो लिया। तब वे बोले कि हमारा जाना तो ठीक है किन्तु तुम अभी क्यों जाते हो ? अभी तो तुम्हारी सगाई ही हुई है शादी हो जाने दो, कुछ दिन गृहस्थीमें रह लो तब चलना। वह लड़का बोला जो बात हितकी न हो उसमें फंसकर फिर छोड़े यह बात, क्या पता फिर छोड़ भी सकें या नहीं ? इस प्रकार समाधान कर वह भी चल दिया। अतः भुक्षुजनों ! इन सब बातोंमें मत फंसो। यह क्या कि पहिले तो कीचड़में पैर देवे जान बूझकर फिर धोवे, इससे तो अच्छा है जब यह जानता है कि इसमें पैर देनेसे धोना होगा अतः उसमें पैर ही न देवे। देकर धोना यह कहांकी बात हुई ?

श्री प्रभाकर भट्टजी उसी प्रकार विनती कर रहे हैं जैसे कि कोई बच्चा रोकर कहता है कि मुझे तो मां के पास जाना है, इस प्रकार जिद करता है। वह जानता है कि मांके पास जानेसे उसे शान्ति मिलेगी। तीनों अवस्थाओंमें ही तुम्हारे अन्दर भगवान् बस रहा है। जब नहीं पहिचाना तब भी है और जब पहिचाना तो दर्शन कर लिए और जब भगवान् बन गये तो कहना ही क्या है और जहां मोह माया है वहां भगवान्का दर्शन कैसे हो सकता है ? अतः गुरु श्री योगेन्दुजी बता रहे हैं कि सब प्रकारसे उपादेय जिसमें असारताका नाम नहीं ऐसा जो परतात्मतत्त्व उसे कहूंगा। तीन प्रकारका जो आत्मा है उसमें जो आत्माका शुद्धस्वरूप बताया है, चैतन्यस्वरूप है, वह सदाकाल रहता है चाहे आत्मा उल्टा ही क्यों न परिणम रहा हो। यह ग्रहण करने योग्य ऐसा मैं हूं। इस प्रकार विचार करना चाहिये।

अप्पा तिविहु मुणेवि लहु मूढहु मेल्लहि भाउ।
मुणि सण्णाणे णाणमउ जो परमप्पसहाउ ॥१२॥

जब यह प्रश्न किया श्री प्रभाकरभट्टजीने कि यदि चारों गतियोंके दुःखसे छुड़ाने वाला कोई परमात्मा है तो बताओ ? तो श्री योगेन्दुजी बता रहे हैं कि आत्मा तीन प्रकारकी हैं—(१) मूढ़ (२) ज्ञानी (३) भगवान्। मूढ़ तो मोही है। जो मूढ़पनेको छोड़ अपने ज्ञानके द्वारा ज्ञानमयभगवान्को भजे यह हुआ अन्तरात्मा और जो निर्दोष सर्वज्ञ है वह है भगवान्। इन तीनों अवस्थाओंमें रहने वाला परमात्मस्वभाव वही सहज भगवान् हुआ। वही अपना दुःख हर सकता है। योगेन्दु जी बता रहे हैं कि जैसा तुमने प्रश्न किया है वैसा सभी भव्योंने पूछा था क्योंकि वे भी इन दुःखोंसे दुखित थे। सगर चक्रवर्तीने श्री अजितनाथ भगवान्से पूछा था कि यदि इन चारों गतियोंसे छुटकारा दिलाने वाला कोई भगवान् है तो बताओ ? इसीको पाण्डवोंने श्री नेमिनाथ भगवान्से पूछा था कि यदि इन चारों गतियोंमें न रुलाने वाला कोई परमात्मा है, भगवान् है तो बताओ और इसी प्रकार श्री श्रेणिक जी ने महावीर भगवान्से पूछा था। अतः तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है उसका समाधान सुनो।

हे भट्ट ! जो तुम्हारी आत्मामें चेतनास्वभाव पड़ा है वही भगवान् है। उसीके दर्शन कर लो तो इसीमें स्थिर होनेका यत्न करोगे और भगवान् हो जाओगे। इनके दर्शन करनेसे दुःख ही दूर नहीं होंगे बल्कि हमें अपने स्वरूपका पता चल जावेगा। इस प्राणीका स्वभाव तो देखो उपाधिमें रत होकर तो नाना प्रकारकी लीलाएं कर रहा है, चारोंगतियोंमें नाटक कर रहा है और जब ज्ञान हो जाता है तो ज्ञानमय लीला करने लगता है। भेद-रत्नत्रयको पालता है और अभेदरत्नत्रयकी लीला करता है। आत्माका दृढ़ श्रद्धान् सो सम्यक्दर्शन, आत्माका सच्चा ज्ञान सो सम्यक्ज्ञान, जीवोंकी रक्षा करना, समिति गुप्तिका पालन करना सो हुआ भेद सम्यक्चारित्र। इन तीनों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का नाम भेदरत्नत्रय है। भेदरत्नत्रय अभेदरत्नत्रयमें पहुंचनेका उपाय है। अपने आपमें बसा हुआ जो असाधारण चिद्स्वभाव है उसरूप श्रद्धा करना ऐसी दृढ़ प्रतीति करना अभेद सम्यग्दर्शन है। ऐसा ही शुद्धआत्माका चैतन्यमात्र ज्ञान सो अभेद सम्यग्ज्ञान हुआ और उसमें ही रम जाना सो अभेद सम्यक्चारित्र हुआ। अभेदरत्नत्रय तो साक्षात् मुक्तिका कारण है और भेदरत्नत्रयमय, अभेदरत्नत्रयमयमें पहुंचानेका कारण है।

यह जीव ज्ञान होनेपर ज्ञानकी ही लीला करता है। अपने ज्ञानके द्वारा संसारके समस्त पदार्थोंका साक्षात् ज्ञान रखता है किन्तु उनमें उपेक्षा भाव रखता है। लब्धि उनकी ज्ञान लीला है ऐसे वे अरहन्त भगवान् हैं। शंकर भी वही हैं, क्योंकि सुखको जो करे उसे शंकर कहते हैं। अतः शंकर कहलाये। दुनियांको जो मोक्षमार्गका विधान बताते हैं उन्हें ब्रह्म कहते हैं अतः ब्रह्म भी अरहन्त भगवान् ही हुए। उनको ज्ञानमार्गमें रचा देना यह भी तो ज्ञान-सृष्टी है तो उसके वे कारण हैं। मोक्षमार्गकी सृष्टीके ये कारणभूत है। अरहंतदेव विष्णु हैं। जो व्यापक हो, सब जगह फैला हुआ हो उसे विष्णु कहते हैं, सो जिस प्रकार आकाशका अन्त नहीं उसी प्रकार ज्ञानका भी अन्त नहीं ऐसे ये अरहन्त भगवान् हैं। हरि भी ये ही क्योंकि जो पापोंको हरे सो हरि कहलाता है। इनके गुणस्मरणसे पाप दूर होते हैं अतः अरहन्त भगवान् हरि भी हुए। जो स्वयं लौकिक कार्योंमें लगे हुए हैं वे क्या पापोंको हरेंगे, निष्पाप आत्मा ही पापोंका हरण कर सकता है ऐसे ये जिनेन्द्र भगवान् हैं, ये ही पुरुषोत्तम हैं क्योंकि पुरुषोंमें उत्तम हैं अरहन्त भगवान् मनुष्यगतिके जीव कहलाते हैं वे उनमें सबसे उत्तम हैं अतः पुरुषोत्तम कहलाये। ऐसा जो परमात्मा है उसकी भावना यह ज्ञानी करता है।

तीन प्रकारकी आत्माका ज्ञान करानेका प्रयोजन है कि बहिरात्माको परपदार्थोंमें रागबुद्धि है कि ये मेरे हैं आदि, इसे तो छोड़े और परमात्माका ध्यान करे। इन दोनोंका उपाय एक ही है कि अन्तरात्मा बन जावे। यहां वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान होता यही उत्तम है। जीव विषयोंके स्वादमें लग रहे हैं, उनको उससे हटानेका एक यही उपाय है कि उन्हें उससे अधिक आनन्दका स्वाद चखा दो तो विषयोंकी ओर दृष्टिपात न करेंगे। उनसे विषयोंसे दिल हट जावे इसका उपाय है अन्तरात्मा बनना। उसका जो निर्विकल्पक वीतराग निर्विकल्पक स्वसंवेदन ज्ञान है इसके द्वारा तुम परमात्म स्वभावको जानो। अपनेको जानोगे तो परमात्माको जानोगे। क्योंकि परमात्मा केवल ज्ञानसे भरा हुआ है, वह केवल ज्ञानका ही तो पुञ्ज है। क्योंकि ज्ञान बिगड़ गया तो दुःख, नहीं तो आनन्द। इसके असंख्यप्रदेशोंमें सर्वत्र ज्ञानरस भरा हुआ है यही स्वभाव अपना है। तीन प्रकारकी जो श्री योगेन्दुजीने आत्मा बताई है—(१) बहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा, इनमेंसे बहिरात्मा अर्थात् परपदार्थमें रागद्वेष कि मैं अमुक जातिका हूं, अमुक मेरा धर्म, अमुक मेरा शहर आदि, ये मेरा भाई, ये मेरी बहिन, ये मेरा पुत्र, ये पत्नी आदि, ऐसी मेरी पोजिशन है इतना मैं धनशाली हूं, मेरे इतनी खेतीबाड़ी है आदि आदि परपदार्थोंको ये मेरे हैं, मैं इनका हूं—ऐसा मानना बहिरात्मापन है। क्या तू आज तक किसीका हो सका, क्या कोई आज तक तेरा शरण हुआ या तू आज तक किसीका शरण हो सका? जब ये शरीर ही अपना नहीं तब परपदार्थ मेरा कैसे हो सकता है? अतः ये बहिरात्मा तो छोड़ने लायक है और परमात्मा ध्यान करने लायक है। और इन दोनोंका उपाय अर्थात् बहिरात्मा के त्याग करनेका और परमात्माके ध्यान करनेका उपाय, इन दोनोंका उपाय है।

भैया! अपने सहजस्वभावका अपने चैतन्यस्वभावका ध्यान करो, क्योंकि पहिले कह आये हैं कि स्वयंको जानोगे तो परमात्माको भी जान सकते हो दूसरा उपाय नहीं है। अपने ज्ञायकस्वभावको जाननेसे जो प्राप्त हुआ वह दुखोंको दूर कर देगा। किन्तु वही निर्विकल्पकज्ञान स्वसंवेदन वीतरागज्ञान होना चाहिये। अब यहां पर शंका की जा सकती है कि ज्ञानके साथ स्वसंवेदन वीतराग ज्ञान क्यों लगाया? इसका उत्तर है कि विषयोंका जो अनुभव होता है वह भी तो स्वसंवेदन है किन्तु वह सराग स्वसंवेदन ज्ञान है। अतः वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान कहा। इसके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

द्वारा परमात्माको जान सकते हो। जो इस वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा प्राप्त हुआ परमात्मा वही उपादेय है। इसमें यही बताया है जो कि प्रभाकर भट्टने अपने गुरुसे प्रश्न किया है कि चारों गतियोंके दुःखोंको दूर करने वाला कोई परमात्मात्मा हो तो बताइये। उसका उत्तर इसमें बताया है आत्माके तीन भेद बताकर।

नोटः—इसके बाद लिपीकी अनुपस्थितिके कारण १३वें दोहेका प्रवचन नोट नहीं हो सका।

देहविभिण्णउ णाणमउ जो परमप्प णिएइ।
परमसमाहिपरिट्ठियउ पंडिउ सो जि हवेइ ॥१४॥

लोकमें जितने आत्मा हैं वे तीन प्रकारके हैं। उनमें कोई तो बहिरात्मा, कोई अन्तरात्मा और कोई परमात्मा है। आत्मा शब्द सबमें लगा है। जिसकी दृष्टि बाह्य पदार्थोंमें है कि यह मैं हूं, यह मेरा है, वह जीव तो बहिरात्मा है। जिसकी दृष्टि अन्तरमें लगी हो, सहज ज्ञानस्वरूपमें लगी हो कि यह मैं आत्मा हूं, वह अन्तरात्मा है और जो परम हो गया है वह परमात्मा हैं। परमका अर्थ है पर माने उत्कृष्ट म माने ज्ञान लक्ष्मी, अर्थात् ज्ञान जिसके पूर्ण प्रकट हो गया है उसे कहते हैं परमात्मा। जो पुरुष परम समाधिमें स्थित हो, देहसे भिन्न ज्ञानमय परमात्माको जानता हो उसे अन्तरात्मा कहते हैं।

परमात्मदेव दो जगह देखा जाता है। एक तो अरहंत और सिद्ध देवोंमें और दूसरे अपने आत्मामें। अरहंत और सिद्धदेव तो प्रकट सर्वज्ञ वीतराग हो गये हैं। और आत्मामें परमात्मत्व स्वभावरूप ध्रुव है तो अन्तरात्मा कहते हैं। जो अपने सहज ज्ञानस्वरूपको निरखे। मेरा स्वरूप जैसी परमात्माकी छटा है वैसा यह अव्यक्त-स्वरूप है। है वही स्वरूप अन्य नहीं है। जैसे जलका स्वभाव और निर्मल जल इन दोनोंका वर्णन एक ही प्रकारका है। कोई पूछे कि निर्मल जल कैसा होता है? तो कहते हैं अत्यन्त स्वच्छ और जलका स्वभाव कैसा होता है? अत्यन्त स्वच्छ। इसी प्रकार आत्माका स्वभाव कैसा है? जैसा परमात्माका स्वभाव है तो स्वभाव दृष्टिसे अपने आत्मामें परमात्मतत्त्व देखा जाता है। यह अन्तरात्माका स्वरूप कह रहे हैं कि जो पुरुष परम समता परिणाममें ठहरकर अपने आत्मामें इस देहसे भिन्न परमात्मस्वरूपको जानता है उसको अन्तरात्मा कहते हैं। बहिरात्मा देय है अन्तरात्मा कथाचित् उपादेय और परमात्मा सर्वथा उपादेय है। बहिरात्मापन छूट जाय, परमात्मापनकी प्राप्ति हो जाये इसका उपाय है अन्तरात्मा होना। अर्थात् सर्वकल्याणोंका उपाय एकमात्र यह ही है कि देहसे निरोल अपने आपमें नित्य विराजमान शुद्ध ज्ञानस्वरूपको देखो लोकमें बाहर दृष्टि करने पर सर्वविवाद विसम्वाद ही नजर आते हैं। एकमात्र अपने स्वभावके निरखनेमें किसी प्रकारकी अशांति नहीं है। यह जीव अपने स्वरूपको भूलकर लोकमें अनेक आशाएं और इच्छाएं बनाता है। बस आशा इच्छा प्रतीक्षा यही तो दुःख है। वैसे इस जीवको किसी प्रकार का क्लेश नहीं है।

भैया! यदि यह यथार्थपदार्थका ज्ञाता रहे किसी भी चीजको जाननेके लिए दो बातें समझनी पड़ती हैं। (१) इसको अन्य वस्तुवोंसे भिन्न जानना, और इसके अपने आपके स्वरूपमें पूर्ण तन्मय जानना है। जैसे यह अंगूठा और यह अंगूली है। यह अंगुली अंगुठेसे अत्यन्त जुदी है और यह अंगुली अपने स्वरूपमें तन्मय है। इसी प्रकार अपने आपको भी देखो कि यह मैं आत्मा समस्त परपदार्थोंसे न्यारा हूं और अपने आपके स्वरूपमें तन्मय हूं तब मेरी सत्ता है। मैं किसी परपदार्थमें घुल मिल जाऊं तो मेरी सत्ता नहीं है या मैं अपने स्वरूपको छोड़ दूं तो मेरी सत्ता नहीं रह सकती। अपने आपको इस प्रकार देखो कि मैं सबसे न्यारा हूं और अपने स्वरूपमें तन्मय हूं। यही शुद्ध आत्माकी दृष्टि कहलाती है। इसको ही एकत्व विभक्त कहते हैं।

भैया! एकत्व और अन्यत्व इन दो भावनाओंका जो स्वरूप है वही शुद्धतत्वके देखनेमें होता है। इस शुद्धताके प्राप्त करनेका उपाय है समता। किसी प्रकारका रागद्वेष सता रहा हो तो अपने आपका परमात्मस्वरूप नहीं देखा जा सकता है। यह समाधि तो शुद्ध आत्माके अनुभव रूप है। अपनेको सबसे न्यारा किसीके यहां कोई

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तुम्हारा पुत्र नहीं, परिवार नहीं तुम्हारा तो शरीर तक भी नहीं है। यह तो केवल ज्ञानस्वरूप है—ऐसी अपने आत्मा की सुध लो। अपने अन्तरात्माकी सुधी लेनेका नाम है विवेक। पंडिताई, और आत्माकी सुधि भूलकर बाहरी पदार्थोंमें हित ढूंढ़ना, बाहरी पदार्थोंसे अपना बड़प्पन मानना यह सब कहलाती है मूढता, बहिरात्मापन। यह मैं आत्मा स्वभावसे वीतरागी हूं। रागद्वेष आदि विकारसे रहित हूं। यह मैं आत्मस्वभावसे संकल्प विकल्पसे परे हूं। यह मैं आत्मा सहज आनन्द स्वरूप हूं। इस शुद्ध आत्माका अनुभव होना यही परम समाधि है। जो परम समाधिमें स्थित होता है यह पंडित विवेकी अंतरात्मा होता है। पंडित कौन कहलाता है? जो विवेकी है। पंडाम् इति पंडितः। भेद विज्ञान जिसको प्राप्त होता है उसको पंडित कहते हैं। वही अन्तरात्मा है और वही परमात्मा होता है।

भैया! संसारके इन जीवोंपर दृष्टि दो तो मालूम होगा कि हमने कितनी उच्च स्थिति पाई है? प्रथम तो निगोदिया जीव, जिनकी चर्चा ही करना कठिन है वे दिखनेमें नहीं आते हैं, सर्वत्र भरे हुए हैं। एक आलूके जरासे खण्डमें अनन्ते निगोदिया जीव पाये जाते हैं। और जो मूली प्याज इत्यादि हैं उनमें भी अनन्ते निगोदिया जीव पाये जाते हैं। जो साग सब्जी खरीदते हैं वे यह भी सोचते हैं कि २ पैसेकी सब्जीमें रोंगन भी खरीद लें। और उस दो पैसेके रोंगनमें और भी अनन्ते निगोदिया जीव आ गये। अनन्ते निगोदिया जीव इस रोंगमें ही बिका करते हैं। उन साधारण बनस्पतियोंसे निकले तब पृथ्वी जल अग्नि वायु व प्रत्येक बनस्पति हुए, वहां घोर दुःख उठाये। यह हमारी आपकी चर्चा चल रही है कि कितनी-कितनी योनियोंको भुगतकर आज मनुष्य पदमें आये हैं।

उन एकेन्द्रियोंसे निकले तो दो इन्द्रिय हुए। दो इन्द्रिय जीव होना भी बड़ा कठिन है। जिह्वा मिल जाये तो पदार्थोंका रस चखनेका आनन्द ले सकें। ऐसा क्षयोपसम होना यह एकेन्द्रियोंसे तो कठिन चीज है। दो इन्द्रिय तो बनें। इसके बाद तीन इन्द्रिय हुए, फिर चार इन्द्रिय हुए, फिर पंचेन्द्रिय हुए। ५ इन्द्रियां मिल गयीं तिस पर भी असंज्ञी हुए तो अपने कल्याणका मार्ग नहीं मिल पाता है। संज्ञी जीव हुए तो पशु बन बैठे। भला बतलावो इसमें कौनसी स्थिति होगी? यह मनुष्यभव कितना दुर्लभ मिला है। सो जगतके जीवोंपर दृष्टिपात करके अन्दाज करलो। मनुष्योंमें भी तो निम्न जातियां हैं। निम्न कुलमें हुए, गरीबीकी दशा, दीनताकी दशा रही। यदि मनुष्य होकर भी दीनताकी हालत मिली तो उसका ही दुःख मानते रहे, फिर मनुष्य बनकर क्या लाभ पाया?

आज हम आप मनुष्य हैं, उसमें भी उत्तम कुल मिला, उत्तम धर्म मिला, उत्तम बुद्धि मिली, सर्व प्रकार की साधन सम्पन्नता है। ऐसी स्थिति है तिस पर भी केवल विषयोंकी ओर ही दौड़ लगा रहे हैं, केवल परिग्रहोंकी ही, बड़प्पन माननेकी ही श्रद्धा बनी तो मनुष्य होकर भी हमने क्या किया? हमारा कर्त्तव्य है कि हम विवेकी बनें, अंतरात्मा बनें इस देहसे भी भिन्न अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको तको, सब इन्द्रियोंको सयत करो, मनको नियन्त्रित करो, कुछ न सोचो, कुछ न देखो, कुछ न सूंघो, कुछ न चखो। कुछ भी न सोचो क्योंकि उन बातोंसे लाभ कुछ भी नहीं होता।

सब इन्द्रियोंके धामोंको बंद करके विश्रामपूर्वक अपने आपमें बैठो और इस प्रकार अपने आपको निरखो कि यह मैं जाननस्वरूप हूं। केवल ज्ञान प्रकाश रूप अपने आपको निरखो तो वहां अपने स्वरूपका परिचय होता है, किन्तु इसके विरुद्ध यदि अपने आपको देख रहे हैं कि मैं गरीब हूं, मैं सुखी हूं, दुःखी हूं, धनी हूं, अमुक हूं परिवार वाला हूं, स्त्री हूं, पुरुष हूं, गृहस्थ हूं, साधु हूं, त्यागी हूं, मुनि हूं, कितने ही रूपोंसे अपनेको देखते हैं तो क्या हालत होगी? सो यही देख लेना ये जगतमें रुलने वाले जीव हैं, ऐसी ही हालत होगी। इन-इन रूप में नहीं हूं मैं तो शुद्ध एक ज्ञानस्वभाव मात्र हूं। ऐसा अपने आपमें आप निरखें तो उसे कहते हैं अन्तरात्मत्व।

"बहिरात्मता हेय जानि तजि अन्तर आतम हूजै परमातमको ध्याय निरंतर जो नित आनन्द पूजै॥"
बहिर्बुद्धिको तो छोड़ो, अन्तरात्माको ग्रहण करो और परमात्मस्वरूपका निरंतर ध्यान करो। कल्याणके लिए यह एक करणीय बात रहेगी और चाहे बहुतसे यत्न कर डालो पर लाभ कुछ न मिलेगा। यह धन वैभवका समागम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूर्वकृत कर्मोंका फल है। यह वर्तमान आत्माके भावोंका, इच्छाके परिणामोंका फल नहीं है। धनकी प्राप्ति अपने आप होती है पुण्यका उदय पाकर। अपना कर्त्तव्य तो यह कि यथार्थ धर्मपूर्वक रहे, इसमें ही लौकिक सिद्धि है और पारलौकिक सिद्धि भी। शुद्ध ज्ञान अर्जन करो, अपने आपको सबसे निराला अछूता ज्ञानस्वभाव मात्र देखो।

देखिए स्थिति कुछ भी हो, किन्तु अपनेको शुद्ध दीखेगा तो यथा सम्भव शुद्ध दर्शनका स्वाद आयगा। और घर छोड़कर एकांत जंगलमें भी बस जाय किन्तु अपनेको अशुद्ध तके तो वहां अशुद्धका ही स्वाद आयगा। एक बार बादशाहकी सभामें सब लोग बैठे थे। बीरबरको नीचा दिखानेके लिए बादशाहने एक बात छेड़ दी। बोला— बीरबल आज मुझे ऐसा स्वप्न आया कि हम तुम घूमने जा रहे थे। रास्तेमें दो गड्ढे मिले। एकमें भरा था गोबर और दूसरेमें भरी थी शक्कर। तो पहिले गड्ढेमें आप गिर गये और दूसरेमें मैं गिर गया तो जिस गड्ढेमें मैं गिर गया वह तो शक्करका गड्ढा था और जिसमें आप गिर गये वह गोबरका गड्ढा था। बीरबलने कहा महाराज मालूम होता है कि हमारा और आपका एक ही चित्त है। हमने भी ऐसा ही देखा पर इसके आगे और भी कुछ देखा कि आप हमें चाट रहे थे और मैं आपको चाट रहा था। अच्छा यह बतलावो, बादशाह क्या चाट रहा था ? गोबर, और बीरबल क्या चाट रहे थे ? शक्कर। देखो बीरबल पड़े हैं गोबरके गड्ढेमें पर स्वाद किसका ले रहे हैं ? शक्करका। और बादशाह किसका स्वाद ले रहे हैं ? गोबर का। इसी प्रकार हम आपकी भी स्थिति हो रही है। कोई गृहस्थीके समागममें पड़ा हुआ है पर गृहस्थीसे उसे सम्वेग है, वैराग्य है, आत्मस्वभावकी प्राप्तिके लिए बड़ी उत्सुकता है तो घरमें रहकर भी धन वैभव कमाईमें ही अधिक ध्यान न कर अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें लीन हो रहे हैं। और कोई पुरुष घर त्याग करके बड़ी तपस्या सहित अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं किन्तु उनके भीतर विषयोंकी वाञ्छा नहीं गयी तो वे स्वमें लग रहे हैं कि विषयोंमें, संसारमें ?

भैया ! जिसकी जैसी दृष्टि होगी वैसा ही उसका निर्माण होगा। इस कारण हम अपनी दृष्टिको स्वच्छ ज्ञानपूर्ण बनाएं जिससे हम सुखी हो सकें। इस वैभवको महत्व न दो। जिस किसी भी प्रकार धन बढ़ानेकी चाह न करो। अपना श्रद्धान आचरणरूप ज्ञानरूप रहा तो उस वृत्तिसे अपना कल्याण होगा। इसके लिए अनेक यत्न करके भी, अपना तन, मन, धन, वचन न्यौछावर करके भी ज्ञानकी प्राप्ति करना चाहिए और अपनी दृष्टिमें यह श्रद्धा रखना चाहिए कि इस लोकमें सर्वोत्कृष्ट वैभव है तो आत्मतत्त्वका शुद्ध ज्ञान है। इससे बढ़कर और कोई वैभव नहीं है। मान लो धनमें हजारपतिसे लखपति हो गये। आखिर है तो आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप है। उसमें क्या पहुंच गया, वहां भी कुछ आदर होता है तो उस धनीके उदार भावों रूपकार भावोंसे ही तो कर रहे हैं। उत्थान क्या किया ?

जब तक विवेक नहीं जागता है तब तक प्रत्येक स्थितिमें अपने विकारोंका ही स्वाद लिया जाता है। अधिकारी ज्ञानस्वरूपका स्वाद आना यह सबसे दुर्लभ वैभव है। "धन, कन, कंचन, राज सुख सबहिं सुलभ कर जान। दुर्लभ हैं संसारमें एक यथारथ ज्ञान" सब चीजें मिल जायें किन्तु एक यथार्थज्ञानका पाना अत्यन्त दुर्लभ चीज है। हम सब जीवोंको देखते हैं। सबको हम इस शरीर रूपमें देखते हैं। तो जैसे अपने आपको अपने शरीर रूप देखना बहिरात्मापन है, इसी प्रकार दूसरोंको इस शरीररूप देखना यह भी मूढ़ता है, बहिरात्मापन है। जैसे हम आपको शरीरसे भिन्न ज्ञानमात्र तकते हैं इसी प्रकार इन सबको भी इस शरीरसे भिन्न अपने स्वरूपको ज्ञानमात्र देखो। यही प्रभु है, हम सब जीवोंको प्रभुके स्वरूपमें देखें और उनसे व्यवहार करते समय यथासम्भव यह दृष्टि बनाओ कि यह प्रभु है जिसकी बात कर रहे हैं। भले ही इसकी प्रभुता रागद्वेशके कारण तिरोहित हो गई है यह प्रभु है।

यदि हम इन सब जीवोंको प्रभुके स्वरूपमें देखते हैं तो उससे हमारा कल्याण है और इन्हें इसी अशुद्ध-पर्यायके रूपमें देखते हैं तो इसमें शुद्धदृष्टि पहिले बन गयी। जब तक हम इसको अशुद्ध देखेंगे तब तक हमारे बंधन

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के ही परिणाम बने रहेंगे। हम जीवोंके गुणोंकी ओर दृष्टि दें। यद्यपि ये संसारी जीव स्वभावसे तो गुणमय हैं किन्तु उपाधिवशसे परिणति कुछ दोषरूप हो गई है। पर वहां यदि हम दोषरूप देखते हैं तो हमें पहिले अपनी दृष्टि मलिन बनाना पड़ेगा और यदि हम ज्ञानरूप देखते हैं तो हमें अपनी दृष्टि पहिले निर्मल बनानी पड़ेगी। इसलिए सर्वत्र हम गुणरूप दृष्टि बनाएं, दोषरूप दृष्टि न बनाएं।

पूजा पढ़नेके बाद अंतमें शांति पाठके समय पढ़ते हैं ना "शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुति: संगति: सर्वदार्यै: सद्वृत्तानां गुणगणकथा दाषवादे च मौनम्. सर्वस्यापिप्रियहितवचो भावना चात्मतत्वे। संपद्यन्तां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्ग:॥ हे प्रभु! जब तक मुझे अपवर्ग न मिले, मोक्ष न मिले तब तक ये सात बातें मुझमें बनी रहें। प्रथम तो शास्त्राभ्यास, शास्त्रका पढ़ना यह जिनवाणी मेरे पालन पोषणके लिए माताकी तरह है इसलिए जिनवाणी को माता कहते हैं। जैसे माता पुत्रके दोषोंकी परवाह नहीं करती, केवल हितकी परवाह किया करती है इसी प्रकार यह जिनवाणी इन दोषी जीवोंके दोषोंकी परवाह नहीं करती। एकदम हितकी बातें बताने करनेमें लगी रहती है। इस तरह हित ही प्राप्त होता है। शास्त्रोंका अभ्यास करना यह मूल कर्तव्य है। दूसरा काम है भगवान् जिनेन्द्रदेव के चरणोंका ध्यान बना रहे, उनमें मेरा परिणाम बना रहे, यह दूसरी बात मानी है। किसने? पूज्य करने वाले ने। तीसरी बात कहते हैं कि सदा श्रेष्ठ पुरुषोंकी संगति मिले। चौथी बात कहते हैं कि सद्वृत्तोके गुणगानकी कथा बराबर बनी रहे। किसी जीवोंके बारेमें बोलो तो दूसरोंके गुणोंको बोलो। दूसरे मनुष्योंकी प्रशंसा आप करेंगे तो उसमें सक्लेश आपको अन्तरमें न करना पड़ेगा और बड़े आनन्दका आप भोग करेंगे और सुनने वालोंका कुछ डर न रहेगा।

पांचवीं बात है किसीकी निन्दा न करना। किसीकी निन्दा करें तो आपको संक्लेश उत्पन्न करना पड़ेगा। जब आप अपनेको सताकर बुरे परिणाम बनायें तब दूसरोंकी निन्दा करनेमें आपका साहस होगा और जिसकी आप निन्दा करेंगे वह आपको क्या पुरस्कार देगा? पुरस्कार क्या देगा? निन्दा करनेका परिणाम तो अच्छा न मिलेगा। परिणाम ही यही मिलेगा कि आप अपनेमें संक्लेश उत्पन्न करेंगे। दूसरे पुरुषोंको नीचा दिखाना, अपने आपको ऊंचा निरखना इसके फलमें विपत्ति ही आती है। जिसकी निन्दा की उससे कुछ न कुछ भयका परिणाम बना और निन्दा करनेके बाद जो कुछ उत्तर मिलेगा वह आपको ही भोगना पड़ेगा। कर्मबंधन होगा। कर्मबंधनसे संसारमें रुलनेकी बात बनाली। कितना अवगुण है और सिद्धि कुछ भी नहीं है। जीवोंकी बुराई करना, भाईकी, पड़ौसीकी, मित्रकी बुराई करना क्या यह व्यर्थका श्रम नहीं है? किसी धनीकी, किसी पं० की जिसकी आप बुराई चाहते हैं यदि कोई बुराईका प्रसंग छिड़ जाय तो चाहे रात्रिके ११ बज जायें तो भी नींदका कोई काम नहीं है खुद बुरे हैं सो बुराई चाहते हैं तो इससे बढ़कर अनर्थ और कहो क्या हो सकता है? व्यर्थके विवादमें तो समय ही खोते हैं, लाभ कुछ नहीं मिलता है। जब उठ कर घर जाते हैं तो अपनेको रीता और शून्य अनुभव करते हुए जाते हैं। अगर कोई गुण की बात छिड़ जांय गुणगानमें ही समय व्यतीत हो तो उस चर्चाको सुनकर जब घर जाते हैं तो ऐसा लगता है कि कुछ कुछ लेकर जा रहे हैं, कुछ-कुछ भरपूर होकर जा रहे हैं। इतनी दृष्टि करनेमें कितने गुण हैं। ऐसी ही दृष्टि करनेमें सम्पत्ति मिलती है। इसके विपरीत दृष्टि करनेमें विपत्ति मिलती है। पर मोही जीव विपत्ति मिलनेकी ही दृष्टि बनाना सुगम समझता है और पारमार्थिक सम्पत्ति मिलनेकी दृष्टिको कठिन मान रहा है।

भैया, खूब सोचलो इस जगत्में हमें क्या करना है? आपको क्या करना है? यह जगत् बिखर जायगा, ये समागम बिखर जायेंगे, इस तरहसे कुछ भी हाथ न रहेगा। केवल अकेले यह यहांसे जायगा। क्या होगा इसका? जैसा जीवनभर परिणाम किया उसके अनुसार ही इसकी सृष्टि होगी। यहां तो अपना गौरव और पोजीशन बनानेमें माया छल करके अपना काम बना रहे हैं पर मरनेके बाद अपना पोजीशन बनानेमें छल माया काम नहीं कर सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिस पर्यायमें उत्पन्न होनेका काम बन गया है तो मरनेके बाद चाहे कैसा ही बड़ा पुरुष हो उसका छल नहीं चल सकेगा, वैसी ही गति वैसी ही चेष्टा हो जायगी जैसा उसने परिणाम किया था तो हमें परिणामोंका बड़ा ध्यान करना चाहिए। इस थोड़ेसे वैभवको कमानेके लिए कुछ बेइमानी बर्ती जाती है, छल किया जाता है किन्तु इसका परिणाम अंतमें बड़ा भयंकर बनता है। कुबुद्धिके कारण धोखा अन्याय भी करते हैं, कुछ दिन वैभवका समागम रहा फिर समाप्त हो गया। इन वैभवोंमें कषाय बुद्धि रहनेके कारण पापबंध किया। परिणाम मलीन किया था सो पाप-बंध बहुतसा बना। लिया था अब पापोंका उदयकाल आ गया तो वैसी ही परिस्थिति बन गई। अगर सच्चाई, दूसरे की भलाईका भाव रखते हो तो उसका फल अच्छा होगा। चाहे आज कुछ वैभवमें घाटा हो जाय किन्तु इस शुद्ध परिणाममें जो पुण्य बंध किया है उसका उदयकाल आने पर नियमसे सुख साता होगा। अपने परिणाम ही तो सब कुछ कमाई किया करते हैं। तो सर्वप्रकारका उद्योग करके अपने आत्माका सही दर्शन, ज्ञान और आत्माका आदर बना रहे यह सर्वोत्कृष्ट अपना कर्तव्य है।

भैया! यहां सुखके लिए मंदिर आते हैं, दर्शन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं। ऐसा करते तो हैं पर विधि-पूर्वक ज्ञानरूप बर्तें तो कल्याण है। ज्ञानार्जनकी विधि यह है कि आप पहिले तो वर्षभरमें एक माह कमसे कम और डेढ़ दो माह बन सके तो अच्छा, घर छोड़कर कहीं चले जावो जहां पर कि कुछ ज्ञानकी शिक्षा मिले और साथ ही वैराग्य और चारित्रकी वृद्धि हो सके। फिर घर आ जावो। हम घर छोड़नेकी बात नहीं कह रहे हैं। दूसरी बात यह है कि जो ११ महीने बाकी रहे उनमें विधिवत् शास्त्र स्वाध्याय कमसे कम एक घंटा करें। तीसरा काम यह है कि कोई एक पुस्तक ले लें जिसको विद्यार्थीकी तरह पढ़ें और उसकी लकीरें भी याद रख सकें और बोल सकें। ये तीन बातें चलती रहीं तो ज्ञानवृद्धि क्यों न होगी? आप सोचते होंगे कि वर्षों गुजर गये बड़ा स्वाध्याय किया और ज्ञान बढ़ा तो पहिले आपको इन तीन बातोंका प्रयोग करना चाहिए। इन तीन बातोंका प्रयोग करके देखो कि ज्ञानवृद्धि कैसे नहीं होती? ज्ञायकस्वरूप ही एक सार है, वही साथ जाने वाला है, इसलिए ज्ञानकी उपासनामें लगना चाहिए।

परमात्मा कौन होता है? जो समस्त परद्रव्योंको छोड़कर केवल ज्ञानमय, कर्मरहित, शुद्धात्माको उपयोग द्वारा प्राप्त करता है वही परमात्मा होता है। शुद्धात्माका अर्थ है निराला, अधिकारी। शुद्ध पर्यायोंवाला नहीं, किन्तु आत्माके अस्तित्व वाला, भिन्न तत्त्वों वाला परद्रव्योंसे रहित अपने स्वरूपास्तित्व मात्र निजतत्त्वको शुद्धात्मा कहते हैं। केवल अपनेको सबसे निराला भर देखना है तो स्वरूप भी अवगत हो जायगा। सबसे निरालेका नाम शुद्ध है। जिसे इंगलिशमें कहते हैं प्योर। पीरका अर्थ है खालिस, केवल। इसे ही शुद्ध कहते हैं और शुद्ध होनेके लिए उपाय भी यही किया जाता है। जैसे चाकीपर चिड़िया वगैरहकी बीट लग गयी है तो वहां कहते हैं कि चौकीको शुद्ध करो। वह मनुष्य क्या करता हैं? चौकीके अतिरिक्त जितने परपदार्थ हैं, जितने परद्रव्य इस चौकीसे चिपके हैं उन सबको अलग करता है। यही चौकीको शुद्ध करनेका उपाय है। केवल खालिस रह जानेको ही शुद्ध कहते हैं। जो परद्रव्योंको छोड़कर अर्थात् समस्त परद्रव्योंको अपनेमें न मानकर केवल ज्ञानमय शुद्धआत्मतत्त्व देखता है, वह परमात्मा होता है। इस बातका इस गाथामें वर्णन करते हैं।

अप्पा लद्धउ णाणमउ कम्मविमुक्के जेण।
मेल्लिवि सयलु वि दव्वु परु सो परु मुणहि मणेंण ॥१५॥

जिसने कर्मविभुक्त ज्ञानमय आत्माको प्राप्त किया है जो, केवलज्ञानसे रचा हो अर्थात् मात्र अपने स्वरूप से रचा हो और ज्ञानावरणादिक द्रव्य कर्मोंसे और रागद्वेषादिक विकार भावोंसे रहित हो ऐसे निजज्ञायकस्वभावको जिसने प्राप्त किया है वह परमात्मा होता है। अपने आपको केवल बनानेका नाम कल्याण है, मोक्ष है, केवल बनने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

के लिए केवल देखना सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। अपने आपको केवल देखे बिना केवल बन नहीं सकता। यह परिवारमें लिप्त धन वैभवसे मुक्त, शरीरमय अपने आपको देखे और ऐसा आशय रखता हुआ धर्मपालन भी करे अर्थात् व्यावहारिक रुढ़िवाला धर्म भी करे तो मोक्षमार्ग नहीं मिल सकेगा। मोक्षका अर्थ है केवल रह जाना और केवल रह जाना तब बन सकता है जब अपनेको केवल देखे। केवल देखनेमें दो बातें आईं। समस्त परपदार्थोंसे रहित देखना और अपनेको स्वरूपास्तित्वमात्र देखना। इस विधिसे समस्त परद्रव्योंका विकल्प छूट जाता है। जो अपनेको सहज चैतन्यस्वरूपमात्र चित्प्रकाशमात्र निरखता है वह केवल बनता है, अर्थात् परमात्मा होता है।

त्याग केवल अपने आपके स्वरूपके ग्रहण करनेका नाम है। बाह्य वस्तुयें कितनी हैं? किन किनका विकल्प बनाकर त्याग किया जा सकेगा? केवल एक चैतन्यमात्र निजस्वरूपके ग्रहण करनेमें समस्त पदार्थोंका त्याग हो जाता है। व्यवहारमें जिन चीजोंमें पड़कर जिसका आश्रय लेकर हम विकल्प बनाया करते हैं, बुद्धिपूर्वक उन पदार्थोंसे अपनेको अपने उपयोग द्वारा बाहर हटा लेना है क्योंकि कर्मोंके उदयका फल भोगनेके लिये बाह्यपदार्थ आश्रयभूत बन जाया करते हैं। हम सर्वपदार्थोंको कहां तक हटाएं? एक अपने आपके स्वरूपके ग्रहण करनेमें सबका त्याग हो जाता है।

जैसे बनस्पतियां असंख्यात हैं। कोई यह चाहता है कि मैं काम लायक ५—७ बनस्पतिके सिवाय सब बनस्पतियोंको त्याग दूं तो वह बनस्पतिका नाम लेकर कहां तक त्याग करेगा? उन दो चार बनस्पतियोंका नाम लेकर कि इनके अतिरिक्त मेरा सब बनस्पतियोंका त्याग है—ऐसा कहे लो त्याग हो गया। इसी प्रकार मैं केवल अपने ज्ञानस्वरूपका ग्रहण करता हूं अन्य किसी भी तत्त्वको मैं ग्रहण नहीं करता, न आत्मारूप मानता। ऐसे संकल्पमें सर्वपदार्थोंका त्याग हो जाता है। समस्त पदार्थोंका त्याग करके और रागादिक परभावोंका त्याग करके अर्थात् आत्मारूपको न ग्रहण करके जो शुद्धस्वरूपको ही अनुभवता है वह परमात्मा होता है, ऐसा जानो। ऐसा किस प्रकारथ बन सकेगा? इसके लिए प्रथम शल्योंका त्याग करना होगा।

शल्यें ३ होती हैं माया, मिथ्यात्व और निदान। इन तीनों शल्योंरूप जो समस्तविभाव परिणमन हैं उनसे रहित बना लेना यही आत्माकी शुद्धि है। जगत्के जीव इन तीन संकटोंमें फंसे हुए हैं माया, मिथ्या और निदान। इन शल्योंका मूल गुरु तो मिथ्यात्व है। पदार्थोंका यथार्थस्वरूप न समझकर किसीका किसीमें हित समझना अपने आपमें असमानजातीय इन भावोंको आत्मरूपसे मानना यही मिथ्यात्व है। मैं एकमात्र ज्ञानप्रकाश हूं, जानन ही मेरा काम है, जानन ही मेरा भोग है, जानन ही मेरा सर्वस्व है और जाननका आधारभूत ज्ञानस्वभाव ही मेरे लिए ज्ञानस्वभाव है। ऐसा न जानकर अपने आपको नानारूप मानना सो मिथ्यात्व है। जब मिथ्यात्व परिणाम है तो निदान हुआ करता है, परवस्तुवोंका बंधन हुआ करता है। जब निदान होता है तो उस निदानमें शांतिके लिए मायाचार बर्तना पड़ता है। माया, मिथ्या और निदान इन तीन प्रकारके परिणामोंमें यह सर्व जगत् लिप्त हो रहा है। इन विभावोंसे रहित मनके द्वारा अपने आपको परसे रहित ज्ञानमात्र निरखो। इस प्रकारके उपायसे उक्त लक्षण वाला परमात्मपद प्रकट होता है और यह परमात्मपद उपादेय है। इसके अतिरिक्त समस्त वैभवरूप परद्रव्य हेय हैं। इतना शुद्ध चित्त बने कि जिससे यह निर्णय बना रहे कि परमात्म दशा ही मेरे लिए हितकर है। जहां राग है, वहां फ़ंसाव है, जहां फ़ंसाव है वह न सुहावे, उससे रहित केवल मानमात्र निजस्वरूपकी बात सुहाए, इतना जिसके निर्णय है उसको ही शुद्धमन वाला कहते हैं। लौकिक बातोंमें यदि चतुराई अधिक प्राप्त कर ली तो उसे चतुराई नहीं कहते किन्तु अपने आपके स्वरूपके दर्शनमें यदि कुशलता प्राप्त करली तो क्षणमें ही जब चाहो तब एकदम इस ज्ञानसुधाके समुद्रमें अपने उपयोगको बसा सकोगे। ऐसी योग्यता यदि बनाली तो इसको ही अपनी चतुराई कहते हैं।

एक सेठजी थे सो अपने मकानके आगे चबूतरे पर बैठकर रोज दातून किया करते थे। और सामनेसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भैंसे निकला करती थीं। उनमेंसे एक भैंस म..ो पंजाबकी हो बड़ी सुन्दर सींग वाली थी भेड़ बकरी जैसी, एकदम गोलाईको लिए हुए सींगें थीं। सेठजी सोचते हैं उसे देखकर कि ये सींग यदि मेरे सिर पर लगी होती तो मैं कितना सुन्दर जंचता ? रोज दातून करने बैठते और रोज भैंस सामनेसे निकलती तो उसको देखकर यही विचार करते। लगातार विचार करते-करते ६ महीने हो गये। ६ महीनेके बादके दिन वही भैंस सामनेसे निकली। सेठजी ने सोचा देखो विचार करते-करते ६ महीने हो गये, अब तो इन सींगोंको अपने सिर पर लगालें। सो सोचा कि अपने सिर को सींगोंमें मारने लगें तो सींगें लग जायेंगी। वह सींगमें सिर लगाने लगा तब भैंस बिचकी तो और उसे कुछ न सूझा सो भैंसके गलेमें चिपट गया। वह भैंस एक फर्लांग तक दौड़ी। सेठजी उसके गलेसे चिपके रहे। गांवके लोग सेठजी को बचाने दौड़े। सेठजी से बोले अरे सेठजी ! बिना विचारे यह क्या कर रहे हो ! सेठजी बोले कि मैंने बिना विचारे तो कुछ नहीं किया, बिचारते-बिचारते तो ६ महीने बीत गए थे, तब फ़िर मैंने यह काम शुरु किया। अरे ६ महीना क्या, वर्ष दो वर्ष भी विचार करते बीत जायें तो क्या यह कोई चतुराईका विचार था ?

भैया, परमार्थके मार्गसे चलकर देखो परद्रव्योंके सम्बन्धमें कुछ भी विचार करो, कितनी ही अपनी चतुराई खेलो, इस बुद्धिसे धन आयगा, इस पद्धतिसे अमुकका धन छीन लिया जायगा, उसमें सफलता भी हो, धन भी बढ़ जाय किन्तु वह सब चतुराई नहीं कही जा सकती। उसका फल तो एकदम अभी न सही तो मरनेके बाद पशु-पक्षी बनकर भोगना पड़ेगा। वहां कोई मना नहीं कर सकता कि मैं कीड़े-मकोड़े न बनूंगा। यहां कुछ पुण्यका उदय है तो कुछ हठ भी चल जाती है. मगर मृत्युके बाद कुछ हठ न चलेगी। यहां पुण्यके उदयमें थोड़ा बहुत मायाचार का बहकावा भी किया जा सकता है पर परिणामोंका फल अवश्य मिलता है। मरण बाद चाल न चलेगी। पर द्रव्योंके सम्बन्धमें हम कितना भी विचार करें, कितने ही यत्न किया करें तो उसे चतुराई नहीं कही जा सकती। गुरुजी कहते थे कि ठगा जाना बुरा नहीं है पर दूसरोंको ठगना बुरा है। दूसरोंके ठगनेका भाव किया तो उसमें नुकसान पड़ता है और खुद ठग गया तो उसमें नुकसान नहीं है। यदि ठग गये तो कुछ पैसा या बाह्य वस्तु कम हो गया, इतना ही तो हुआ, मगर परिणाम तो मलिन नहीं हुआ। ठगना बुरा परिणाम है, ठगा जाना कोई हानि वाली स्थिति नहीं है।

जब चित्तमें यह बात समा जाय कि यह मेरी स्थिति कर्मबंध करने वाली है, विश्वासके योग्य नहीं है तब यह बात समा जाती है कि परमात्मपद ही सारभूत है, शरण है। भैया अपन उसे प्राप्त कर सकते हैं, थोड़ा चित्तमें साहस ही बनाना है. विषय कषायोंसे ही निवृत्त होना है फिर तो अन्य सब साधन सुगम होते चले जाते हैं। परमात्मा कौन होता है ? जो अपनेको शुद्ध निरखता है, शुद्धके माने रागद्वेषरहित नहीं किन्तु सब परपदार्थोंसे न्यारा केवल अपने अस्तित्व मात्र। जैसी दृष्टि होती है वैसी सृष्टि होती है। हम शुद्ध बनना चाहते हैं तो हमें शुद्ध का ध्यान करना होगा। शुद्धका ध्यान किए बिना हम शुद्ध नहीं हो सकते हैं। शुद्ध तत्त्वका ध्यान करनेके लिये यत्न यह आना है कि किसी भी परचीजका ध्यान न करें। हम तो स्वतः अशुद्ध हैं नहीं। रागादिविकारोंसे रहित है। सो अपनी ही सहज स्थितिका ध्यान करके ही तो मोक्ष पा सकेंगे।

अरहंत और सिद्ध परमात्मा शुद्ध हैं। वे रागादि दोषोंसे रहित हैं। सो हैं तो शुद्ध किन्तु परद्रव्य हैं, मेरे अस्तित्वसे अत्यन्त पृथक हैं। सो किसी परद्रव्यका आश्रय करनेसे उपयोगमें निर्विकल्पता नहीं आती। वे पर-पर ही तो हैं। परकी ओर निज उपयोग एकनेक स्थिरतासे रह सके यह नहीं हो सकता। किन्तु जिन जीवोंकी विषयों में ही प्रवृत्ति उपयोग है, उन्हें शुद्ध परमात्मा अरहंत सिद्ध प्रभुके ध्यानमें होना ही चाहिये। उसका आश्रय करनेसे भी अशुद्धता नहीं होती। यदि खुद शुद्ध दृष्टिमें दृढ़ है तो बिना किसीके आश्रय किए हम मोक्षमार्गमें बढ़ते चले जायेंगे। इसका हल द्रव्यानुयोगसे किया है। हमें रागरहित पर्यायशुद्ध परद्रव्यका आश्रय करनेकी आवश्यकता नहीं है किन्तु समस्त परपदार्थोंसे भिन्न केवल खुदके स्वरूपास्तित्वमात्र निजका आश्रय करनेकी आवश्यकता है। इस ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को शुद्ध कहते हैं।

द्रव्यानुयोगसे शुद्धका क्या अर्थ है, परसे न्यारा अपने स्वरूपास्तित्त्वमात्र होना इसीका नाम शुद्ध है। वह चाहे वर्तमान परिस्थितिमें विकार पर्यायमें परिणति है और चाहे किसी भी प्रकारकी परिणति हो उस पर दृष्टि देना है। इसे एकत्वविभक्त कहते हैं। विभक्त माने अन्यसे न्यारा, एकत्व माने एकत्वमय, अपने स्वरूपमात्र। ऐसे एकत्व विभक्तनिज स्वरूपका आश्रय करनेसे परमात्मत्व प्रकट होता है। यहां तीन प्रकारकी आत्माओंका वर्णन चल रहा है। बहिरात्मा तो वह है जो बाहरमें अपना आत्मा समझता है, अर्थात् ये बाह्यपदार्थ मेरे हैं, उनसे ही मेरा जीवन है इनसे ही मुझे सुख है, इनसे ही मेरा हित हो सकता है। जैसे माता कह देती है ना कि मेरा तो सब कुछ मेरा बच्चा है, यहि मेरा सर्वस्व है, इस प्रकार सभी चेतन अचेतन पदार्थोंमें जो ऐसा विश्वास रखते हैं कि यही तो मेरा पुत्र है, यही तो मेरा जीवन है यों जो अपना नास्तित्व समझते हैं वे जीव बहिर्मुख कहलाते हैं। सीधे शब्दोंमें जो देहको ही आत्मा मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं।

शरीर ही मैं हूं, और इन लौकिक पदार्थोंसे ही मेरी इज्जत है, दो चार आदमियोंने मुझे बड़ा कह दिया तो मेरा जीवन सफल है, मेरी इज्जत हो गयी पोजीशन बन गयी। क्या हुआ कुछ विवेक तो करो। ये रागी, द्वेषी, मोही, प्राणी स्वयं जगतमें रुलने वाले, अपवित्र, मलीमस प्राणी हैं। उन्होंने अच्छा कह दिया, बड़ा कह दिया उसमें ही अपना पोजिसन समझते, यह सब बहिर्मुखता है। ये सब विडम्बनायें शरीरको आत्मसर्वस्व माननेके कारण हो जाया करती हैं। पहिले देहको माना कि यह मैं हूं, ये मेरे हैं, तब बाहरी पदार्थोंसे निमित्तनैमित्तिक चलता है ना? इस कारण बाह्य अन्य पदार्थोंमें ममता उत्पन्न होती है। ससारके दुःखोंका मूल शरीरमें आत्मबुद्धि करना है।

भैया, एक यह निणय करना अपने भावनिर्माणके लिए बड़े महत्वकी है कि हम अपने आपको कैसा अनुभव करें कि हम शांति, सुखी, महान, निराकुल, पवित्र, शुद्ध बन सकें? और हम अपने आपको कैसा मानते चले आये कि जिसके कारण हम ससारमें व्याकुल मोही बने हुए रहे? निर्णय उपयोग तो यही एक है, ज्ञानकी वृत्ति तो यही एक है किन्तु यह ज्ञानवृत्ति बाह्यपदार्थोंमें लगती है तो संसारमें रुलना बना है। और ज्ञानवृत्ति यदि अपने अन्तरमें त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यस्वभावमें प्रवृत्त है तो हम मोक्षमार्गी है। जो कुछ करना है वह अन्तरमें गुप्त ही गुप्त अपने आपमें करना है। धर्म कहीं दिखाकर नहीं करना है। दिखावट, बनावट, सजावटमें धर्म नहीं हुआ करता बल्कि वह तो पाप ही बसाता है। धर्म तो अन्तरमें गुप्त अपना स्वभावमात्र है। यह किया जा सका तो समझिये हम संसारसे तिर रहे हैं। अपने आपको सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र न तक सके तो हमारा धन पानेका बड़प्पन भी व्यर्थ है और नाना प्रकारकी बुद्धिकी कुशलता पाना भी व्यर्थ है।

भैया! जिन जिन बातोंसे लोकमें बडा माना जाता है वे सब बातें व्यर्थ हैं क्योंकि दूसरे लोग, जिनके लिए तुम श्रम कर रहे हो, वे भी तुम्हारी मदद न कर सकेंगे। यों विवेक करके बाह्यमें अपनी आत्मा न मानकर अन्तरमें अपने ज्ञायकस्वरूपको ही आत्मा मानना है, इसे ही अन्तरात्मत्व कहते हैं। यह कर्मधूल कैसे उड़े? यह शरीरका बंधन कैसे मिटे? ये नानाप्रकारके विषय कषाय कैसे दूर हों? काम बहुत पड़ा है करनेको। अरे काम नानाप्रकारके नहीं करनेको पड़े हैं। काम करनेको पड़ा है केवल एक। एक ही कामके फलमें नानाप्रकारके काम अपने आप हो जाते हैं। यह मैं एक ज्ञायक हूं, सबसे निराला केवल अपने ही स्वरूपमात्र हूं। जैसा कि यह अमूर्त है, रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित है, ऐसा अपने आपमें अनुभवना, देखना एक ही काम है। इस कामके प्रसादसे ये सर्वविलक्षण काम अपने आप हो जाया करते हैं।

इस प्रकार आत्माका प्रतिपादन करने वाले इस प्रथम महाधिकारमें संक्षेपमें तीन प्रकारकी आत्माकी सूचना देते हुए इन पांच गाथावोंमें तीन प्रकारकी आत्माओंका वर्णन हुआ है। केवल ज्ञानानन्द व्यक्तिरूप सिद्धि जिससे प्राप्त होती है ऐसे शुद्ध जीवकी व्याख्याकी मुख्यतामें १० गाथाएं कही जायेंगी। व्यवहारमें तो शरण प्रभु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की स्मृति है और निश्चयसे शरण अपने आत्मस्वभावकी दृष्टि है, आत्मस्वभाव और प्रभु विकाश दोनोंका समान स्वरूप है। इस कारण छठवें सातवें गुण स्थानमें प्रभु भक्ति आत्म उपासना करते हुए ज्ञानी संत कहा करते। सो भैया ! परमात्माके स्वरूप स्मरणमें विश्वास बनाएं, आचरण बनाएं और चेतन अचेतनका यथार्थ अवगम करें क्योंकि इनको छोड़कर जाना ही पड़ेगा। अत: अपने अन्तरात्माको प्राप्त कर, बस एक ही यह अपना कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त इस मुझ आत्माका कोई काम नहीं।

तिहुयण वंदिउ सिद्धिगउ हरिहर झायहिं जो जि।
लक्खु अलक्खे धरिवि थिरु मुणि परमप्पउ सो जि ॥१६॥

परमात्माका स्वरूप स्पष्ट रूपसे इस दोहेमें कहा जा रहा है जो त्रिभुवन बंदित है, तीनों लोक जिसकी बंदना करते हैं। तीन लोक हैं (१) ऊर्ध्व लोक (२) मध्यलोक (३) अधोलोक। ऊर्ध्वलोकके पति देवेन्द, मध्यलोक के पति राजा और सिंह, अधोलोकके पति भवनेन्द्र व्यन्तरेन्द्र। इन इन्द्रोंने जब परमात्म देवकी वदनाकी है तो इसका अर्थ है कि तीनों लोकोंने इसकी वंदनाकी है। वह परमात्मप्रभु शुद्धिप्राप्त है, अपने गुणोंकी सम्पूर्ण शुद्धिको प्राप्त है। केवलज्ञान, केवलदर्शन अनन्तानन्द शक्ति करके सम्पन्न है। ऐसे परमात्मदेवका हरिहर, हिरण्य, गधर्व आदि ध्यान करते हैं। क्या करके ध्यान करते हैं कि लक्ष्यको अलक्ष्यमें स्थिर करके, (अलक्ष्यको लक्ष्यमें स्थिर करके) लक्ष्योंको अलक्ष्योंके द्वारा धारण करके। लक्ष्य है अपना मन जो लक्ष्यमें आता है। उस लक्ष्यसे अलक्ष्य वीत-राग निर्लेप नित्यानन्द स्वभावी परमात्माको चित्तमें धारण करके हरिहरादिक ध्यान करते हैं। कैसा है वह परमात्म देव ? स्थिर है जिनके सर्ग विसर्ग और उपसर्ग आता नहीं है, ऐसे परमानन्दको हे प्रभाकर भट्ट ! परमात्मा समझो, परमात्मा जानो।

परमात्मा वीतराग और निर्लेप होता है। उनका ध्यान करनेसे कहीं वह भगवान् प्रसन्न होकर अपनी जगह छोड़कर भक्तको सुखी करनेके लिए परिश्रम करने नहीं आता। वह समस्त ज्ञेयका ज्ञायक है फिर भी अपने आनन्द रसमें लीन है। किन्तु यह भक्त अपने उपयोगसे जब परमात्मस्वरूपका विचार करता है, उनकी उपासना करता है उस कारण भक्तमें अपने ज्ञानका प्रभाव प्रकट करता है। अपने ज्ञानका विकाश होना यही आनन्दका हेतु है। इस कारण जैसे दर्पणके सामने मुख करनेसे मुख करने वालेका मुख स्वयमेव दिख जाता है इसी प्रकार पर-मात्माके स्वरूपमें अपना उपयोग लगाने वालोंको समस्त निजी वैभव स्वयमेव प्रकट हो जाते हैं। भगवान् केवल ज्ञानानन्दादिकी व्यक्ति रूप मुक्तिको प्राप्त है।

प्रभुदर्शनसे हम सीखें कि परमात्माके सदृश रागादि रहित आनन्दमय परमात्मा साक्षात् उपादेय हैं। जिस कार्यमें अपना यथार्थप्रयोजन सिद्ध न हो उस कार्यकी वाञ्छा विवेकीजन नहीं करते हैं। तो परमात्मास्वरूपकी उपासनामें यदि अपना यथार्थ प्रयोजन नहीं निकलता है तो वह प्रभु अन्य लोगोंकी तरह एक बड़ा है। इसलिए उनकी दासता करली है, इससे प्रयोजन कुछ नहीं निकलता। किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे हम अपने ज्ञानसे यदि विषय कषायोंके साधनभूत कुटुम्ब परिवार आदिका ध्यान करते हैं तो वहां मोह मलीनसता आदि विकार हस्तगत होते हैं, वैसे ही स्वयं वीतराग शुद्ध ज्ञानमय परमात्मदेवकी उपासना करते हैं तो इस ज्ञानमें स्वयमेव ही ज्ञानका विकास होता है।

जगतमें सुख और दुख ज्ञानकी कला पर निर्भर हैं। ज्ञान ही आपकी सर्वसम्पत्ति है, सर्वसाधन है किन्तु ज्ञानी अपनेमें कुछ हीनताका अनुभव करता है, अथवा किसी प्रकारका विकल्प बनकर अपनेको दुखी समझता है तो वह दुखी है और चाहे कितनी ही विपत्तिकी स्थितिको प्राप्त होना पड़ा हो किन्तु उस ज्ञानके द्वारा अपने आपको ऐसा निरखो कि यहां विपदाका क्या काम है ? यह तो मैं अकेला ज्ञानमय, नित्य विराजमान हूं। इसमें किसी पर-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पदार्थका प्रवेश ही नहीं है। विपदा क्या चीज है ? मोहियोंने केवल कल्पना करके विपदा बनाया है। कोई इष्ट गुजर गया, लड़का गुजर गया तो आत्मामें से क्या निकल गया कुछ धनकी कमी हो गयी तो आत्मामें क्या कमी हो गई ? जरा धैर्यपूर्वक अपने आपको सम्भालो तो ज्ञात होगा कि यह पूराका पूरा है. पूराका पूरा था और पूराका पूरा रहेगा।

भैया ! इस श्लोकमें कहते हैं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णात् पूर्णमादाय पूर्णमवावशिष्यते वह पूर्ण है, यह पूर्ण है, पूर्णसे पूर्ण निकलता है। पूर्णसे पूर्ण ग्रहण करके, हटा करके भी पूर्ण शेष रहता है। यह श्लोक वेदांत सम्मत है, इसमें आध्यात्मिकता तो देखो। यह आत्मापूर्ण है। यह स्वभाव पूर्ण है, वह परमात्मतत्व-पूर्ण है। जितने जीव बैठे हैं ये सब पूर्ण हैं। पूर्णका अर्थ पूरा है। यहां पूरेका अर्थ ऊधींमी नहीं समझना। जैसे किसी बच्चेको समझते हैं कि यह भगवान्का पूरा है। पूर्णका अर्थ है पूर्ण सत्। अधूरा नहीं। ऐसा कुछ भी पदार्थ नहीं है जो आधा बन पाया हो और कुछ न बन पाया हो। जितने भी सत् हैं वे सब पूर्ण सत् हैं। यह मैं पूर्ण हूं। यह मेरा स्वभाव पूर्ण है। इस पूर्ण आत्मपदार्थमें से जो भी परिणमन प्रकट होता है वह परिणमन भी पूर्ण है। पर्याय कोई अधूरी नहीं होती। पर्यायका समय एक है। एक क्षणमें वह पर्याय पूर्ण होती है पर्यायके बननेमें दूसरा समय नहीं लगता। इस पूर्णमेंसे पूर्ण ग्रहण कर लिया जाय तो भी यह पूर्ण ही बचा रहता है। अर्थात् पूर्ण द्रव्यसे पूर्ण पर्याय होकर विलीन हो जाती है, फिर भी वह पूर्ण ही रहता है। यह समस्त पदार्थोंका स्वरूप है।

इस प्रकार पूर्ण आत्मपदार्थमें से पूर्ण पूर्ण पर्यायें प्रकट हो जाती हैं और लीन हो जाती हैं किन्तु यह आत्मपदार्थ पूर्णका पूर्ण बना रहता है। यह मैं सत् हूं, समस्त परपदार्थोंसे, न्यारा और अपने स्वरूपमात्र हूं, ऐसा यह मैं शुद्धात्मा साक्षात् उपादेय हूं। किसको देखूं ? किसको जानूं ? किसको विचारू कि जो मेरे लिए सत्य शरण बने ? ऐसा जगतमें क्या है जिसका आश्रय करनेसे हमें सत्य शरण मिलती है ? ऐसा है यह मुझमें ही बसा हुआ। ज्ञायकस्वभावी आत्मतत्व। इसका जिसे परिचय नहीं वह चाहे कितना ही वैभव सम्पन्न हो, कितनी लोकिक प्रतिष्ठा सम्पन्न हो किन्तु उसने कुछ नहीं पाया। जिसने अपने आपके नित्य अन्तःप्रकाशमान ज्ञान सामान्य स्वभावरूप अपने को समझ लिया, कुछ परवाह नहीं, फिर चाहे पूर्वकृत पापोंके उदयमें गरीबी कितनी ही हो, चाहे किसीसे कुछ मांगकर उदर भरना पड़ रहा हो लेकिन वह आत्मा अमीर है। उसे संतोष और शरणका स्थान मिल चुका है।

भैया ! जिस स्वरूपके जाने बिना जीवन बेकार है, दुर्लभ समागम भी बेकार है उस स्वरूपको जाननेके लिए आचार्य देवकी एक प्रेरणा है। तुम अन्यमें चित्त न लगाओ, निज शुद्धात्मतत्वमें अपना चित्त दो। यह शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, जो संकल्प और विकल्प रहित है। बाह्य द्रव्योंमें पुत्र, मित्र, स्त्री आदि चेतन तथा अन्य अचेतन द्रव्योंमें यह मेरा है इस प्रकारका जो आशय है उसे संकल्प कहते हैं। और मैं सुखी हूं दुःखी हूं इत्यादि रूपों में चित्तमें हर्ष विषादादिक परिणाम हो सो विकल्प है, तो संकल्प और विकल्पका परित्याग करके अपने शुद्ध आत्मा की आराधना करो। वश करने योग्य काम यह ही तो है। बाकी तो सब गले पड़े काम हैं। जबरदस्तीके काम हैं। घरको महत्व न दो किन्तु अपने आपमें निराला परिणाम रहे और भगवान्स्वरूपकी भक्ति रहे ऐसे परिणामको महत्व दो। अन्यथा घरके महत्त्व देनेके भावमें इस जीवको कुछ हाथ न लगेगा। अंतमें पापफल ही अपने साथ ले जायगा यह। इसलिए रंच भी अन्य चीजको महत्त्व न दो। गृहस्थकी शोभा इसमें ही है कि वह कीचड़में कमलकी तरह निर्लेप रहे। अपने धन वैभव परिवारको महत्व न दो, अपने ज्ञानस्वभावको महत्व दो। अब वह परमात्मा किन-किन विशेषताओंके सहित हैं इसका प्रतिपादन करते हुए १७वें दोहेमें कहा जा रहा है।

णिच्चु णिरंजणु णाणमउ परमाणदसहाउ।
जो एहउ सो संतु सिउ तासु मुणिज्जहि भाउ ॥१७॥

वह परमात्मा नित्य है, अविनाशी है और यह मैं ज्ञानस्वभावी नित्य हूं, अविनाशी हूं। निर्मल जल और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जलका स्वभाव इन दोनोंके वर्णनमें अन्तर नहीं है। इसी प्रकार परमात्माका स्वरूप और अपना स्वभाव इन दोनोंके स्वरूपमें अन्तर नहीं है। प्रभु नित्य है, सदा प्रभु रहेगा। यह आत्मा भी नित्य है, सदा ज्ञानमात्र रहेगा। द्रव्यदृष्टि से भगवान् नित्य है और द्रव्यदृष्टिसे ही हम आप सब आत्माएं नित्य हैं, निरंजन हैं, रागादिक कर्म मलरूप मजन से रहित हैं। एक आत्मपदार्थको निरखा जा रहा है। वे स्वयं अपने किसी अस्तित्वमें विराजमान हैं। वे तो स्वयं केवल चैतन्य प्रकाश है। उनमें न राग हैं और न कर्म हैं। कर्म हैं सो प्रकट भिन्न पदार्थ है और राग हैं सो कर्म विपाकवश होने वाली तरंग हैं। इस आत्मामें अपना जो स्वरूप है, स्वभाव है उसमें न विकार पाया जाता है न उपाधि पायी जाती है, वह तो निरञ्जन है।

वह भगवान् केवल ज्ञान करके रचा हुआ है। केवल ज्ञानमें सम्मिलित दो शब्द हैं केवल और ज्ञान केवल-ज्ञान दो भावोंमें ध्वनित रहता है। भगवान् केवल ज्ञानसे रचा हुआ है, और सभी आत्माएं हम आप केवलज्ञानमे रचे हुए हैं। इस कारण परमात्मा ज्ञानमय हैं और हम आप भी ज्ञानमय हैं। परमात्मा परमानन्दस्वभावी है, उनके उत्कृष्ट आनन्द हैं। हम और आप भी आनन्दस्वभावी हैं। भगवान्का आनन्द एकदम पूर्ण प्रकट है क्योंकि शुद्ध-आत्माकी भावना उन्होंनेकी थी। इस कारण ये वीतराग आनन्दमय परिणत हुए हैं। शुद्ध आत्मतत्त्वस्वरूप स्वयमें है। कोई देख सके तो सम्यक्त्व प्रकट हो जाता है। उस शुद्धात्माको देखनेका सुगम एक ही उपाय है कि सर्व परसे अपनेको भिन्न जानो। इतना ही नहीं कोई कर सका तो धर्मके लिए कुछ नहीं कर सका।

भैया ! अपनेको जहां परमें मिला हुआ देखा कि मिथ्यात्व और मोहका परिणाम हुआ। इसमें धर्म प्रकट नहीं होता। इसलिए यह शिव शांत परमात्मा है। शांत क्यों है कि वह वीतरागी है अशांति रागोंके कारण होती है। जो भी पुरुष आपको अशांत मिलेंगे, दुःखी मिलेंगे उसका कारण केवल राग है। किसीके भी दुःखोंकी कहानी सुनने बैठो, सुनते जावो और परखते जावो, अंतमें तुम्हें यही मिलेगा कि उसके किसी चीजका राग है। उससे कहो कि यह राग छोड़ो और सुखी हो जावो तो कहेगा कि और कोई उपाय बतावो राग तो नहीं छोड़ सकते। ये राग और बढ़िया बन जायें ऐसा कोई उपाय बतलावो। परन्तु जैसे खूनका दाग खूनसे नहीं धुल सकता इसी प्रकार राग से रागका क्लेश नहीं मिट सकता। सर्वक्लेश मात्र रागसे है, नहीं तो सब अपने अपने घरमें भगवान् हैं। जैसे कहते हैं ना कि तुम सब अपने घरके बादशाह हो तो हम भी अपने घरके बादशाह हैं। सो सब जीव परमात्मा हैं। पर राग बीचमें ऐसा अड़ा हुआ है कि ये सब जीव परेशान हो गये हैं।

यदि कहा जाय भैया ! ५ मिनटको तो राग छोड़ दो तो उत्तर मिलता है कि राग कहांसे छोड़ दें ? कहांसे निकाल कर फेंक दें ? रागोंके छूटनेका उपाय ही एक है कि अपनेको केवलज्ञानमय देखा। मात्र ज्ञानमय, जाननस्वरूप यही जानता रहे, राग छूट जायेंगे। परपदार्थोंका स्मरण हट जायगा, पर और उपायोंसे चाहो कि राग छूट जायें तो नहीं छूट सकते। शांतिका उपाय वीतरागता है। सो यह परमात्मा शांत है। यदि अपने आपको ज्ञान-स्वभावी देख रहा हूं तो मैं शांत हूं। परमात्मा शिवस्वरूप हैं, परमानन्दमय हैं, परम कल्याणमय है तो यह आत्म-स्वभाव भी परमकल्याणमय हैं।

लोकमें सगुन परम ज्ञानस्वभावका दर्शन है। बाहरमें जिन पदार्थोंको देखकर कहते हो कि यह सगुन है वह पदार्थ तुम्हारे आत्माका ध्यान करानेमें कारण है इसलिए सगुन है। जैसे कोई जल भरा घड़ा ला रहा हो तो कहते हैं कि सगुन मिला। क्या सगुन मिला ? अरे वह पीतल तांबेका हंडा सगुन है क्या ? वह पानी सगुन है क्या ? उस पानी भरे हुए हंडेको देखकर यह ख्याल आया कि जैसे इस हंडेमें पानी लबालब भरा है, उसके बीचमें एक सूईकी नोकके बराबर जगह ऐसी नहीं है कि जहां पानी न हो। गेहूंका बोरा भरा हो तो उसमें बीचमें जगह खाली रह जाती है पर घड़ेमें पानी भरा हो तो जितनेमें पानी है उतनी जगहमें कोई स्थान खाली है क्या ? जैसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह हंडा पानीमे लबालब भरा है ऐसा यह मैं आत्मा भी ज्ञान व आनन्दसे लबालब भरा हूं ! ऐसा ध्यानमें माना है। ऐसा यह ध्यान सगुन है। इसी तरह सबका यही अभिप्राय है कि वह सगुन माना जाता है। जो पदार्थ हमारे धर्मका ख्याल करायें ये सब सगुन हैं। बछड़ा गायका अगर दूध चूसता हुआ देखा जाय तो उसे कहते हैं सगुन। उसने ख्याल कराया है कि गायका अपने बछड़े पर निष्कपट प्रेम है। वैसा हो प्रेम पुरुषको करना चाहिए। यह मुझे शिक्षा देनेका कारण है इसलिए सगुन है। जो पदार्थ हमें आत्मका ध्यान करायें वे सब सगुन हैं।

भगवान् शिव हैं क्योंकि वह परमानन्दमय हैं, कल्याणमय है, सो यह आत्मा भी शिवस्वरूप है, कल्याणमय है, इसलिए हे प्रभाकरभट्ट तुम अपने आत्मतत्त्वकी भावना करो। किसको भावो, किसको ध्यानमें लावो ? अपने आपमें बसे हुए शुद्ध बुद्ध एक ज्ञानस्वभावकी भावनाकी भावना करो। सीधा निर्णय रखो। धनको, परिवारको, मित्रजनोंको समागमोंमें महत्त्व न दो। ये बिनाशीक हैं, परद्रव्य हैं। इनसे मेरेमें कुछ नहीं आता है। अपने आपमें नित्य त्रैकालिक रहने वाले चैतन्यस्वभावको महत्त्व दो। झट-झट इस इस स्वभाव पर दृष्टि लगावो, इसको ही चित्त में बसाओ। इसकी ही शरण जावो इसका ही आश्रय लो। परपदार्थोंसे मोह तजो, ऐसी वृत्तिसे आत्माका कल्याण है जैसा परमात्मस्वरूप है, तैसा ही निज आत्मस्वरूप है। सो परमात्मस्वरूपकी उपासना करके निज आत्मस्वरूपको विकसित करो।

जो णियभाउ ण परिहरइ जो परभावण लेइ।
जाणइ सयलु वि णिञ्चु पर सो सिउ संतुहवे ॥१८॥

परमात्माका और आत्मस्वभावका वर्णन चल रहा है। जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही अपना स्वभाव है। परमात्माके स्वरूपमें और अपने स्वभावमें अन्तर नहीं है। इतनी बातको पहिचानता है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। परमात्मा कैसा है यह जब जब बताया जाय तब अपने आपमें यह अर्थ लगाना कि मेरा स्वभाव ऐसा है, जो अपने भावोंको नहीं छोड़ना है और परके भावोंमें नहीं लगता है वह शिव और शांत कहलाता है परमात्माका भाव है अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख और अनन्तशक्ति। इनको वह नहीं छोड़ता। काम, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकार इनको ग्रहण भी नहीं करता है वह शिव और शांत है। ऐसा ही परमात्मा है, जो ऐसा है वही मैं हूं।

भैया ! वस्तुका सही ज्ञान करनेके लिए तीन बातें जानना चाहिए (१) द्रव्य (२) गुण और (३) पर्याय। पर्याय तो विनाशीक होता है और द्रव्य व गुण अविनाशी होते हैं, जो चीजें मिट जायें वे सब पर्यायें हैं। ये काले पीले रग दीखते हैं ये मिटते हैं या यों ही रहते हैं ? मिटते हैं तो ये सब पर्यायें हैं। खट्टा मीठा रस गंध दुर्गन्ध आदि अनेक प्रकारके शब्द ये सब पर्याय हैं। और कोई मनुष्य है, कोई कीड़ा है, कोई पशु-पक्षी है ये भी मिटने वाले हैं ना ? हैं। तो ये सब पर्याय हैं। और ये जो हम आप मनुष्य हैं, जिनसे व्यवहार किया जा रहा है ये सब मिट जाने वाले हैं। ये भी पर्यायें हैं। पर्यायें बदलती रहती हैं। इन पर्यायोंकी आधारभूत जो शक्ति हैं वह गुण है और उन समस्त शक्तियोंका अभेदपुञ्ज है वह द्रव्य है ? जैसे आममें काला नीला वगैरह रंग बदलता रहता है वे सब काले नीले रंग रूप शक्तिकी पर्यायें हैं। आम हरेसे अगर पीला हो गया तो रूपशक्ति तो नहीं बदली। रूपशक्ति तो पहिले हरे रूपमें थी अब पीले रूपमें हो गयी, पर रूपशक्ति आधार है। जैसे अंगुली है, सीधी हो जाय, टेढ़ी हो जाय, गोल हो जाय तो उसकी शकलें तो बदलीं पर अंगुली तो मैटर है, वह तो वहीं है। इसी प्रकार पर्यायें तो बदलती हैं पर पर्यायकी जो शक्ति हैं, गुण है वह वहीका वही है तथा जो आनन्द गुण हैं उन गुणोंका जो समुदाय है वही द्रव्य कहलाता है।

हमारा द्रव्य चेतन द्रव्य है और प्रभुका द्रव्य चेतन द्रव्य है। इस द्रव्यदृष्टिसे प्रभुमें और मुझमें रंच भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सम्बंध नहीं है, किन्तु पर्यायोंका अन्तर है। हमारे गुणोंका विकाश पूर्ण नहीं है और भगवान्के गुणोंका विकाश पूर्ण है. पर जो गुण भगवान्में है वही हम आपमें हैं। पदार्थ एक हैं। भगवान अपने अनन्तज्ञानानन्द स्वभावको नहीं छोड़ता और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारोंको ग्रहण नहीं करता। यह प्रभु तीन काल, तीन लोकमें रहने वाले वस्तुओंको जानता रहता है। वह द्रव्यार्थिकनयसे नित्य है और सदा काल समस्त विश्वको निरंतर जानता रहता है। लोग वैभवको चाहते हैं। लाखों करोड़ोंका वैभव मिल जाय किन्तु जो अलौकिक वैभव स्वयमें अनादिसे बसा हुआ है, उसकी रुचि भी नहीं करते।

यदि वास्तविकता पर दृष्टि दो तो संतोष और आनन्द अलौकिक वैभवमें ही मिलते हैं। ये बाहरी वैभव तो मात्र आकुलताओंके कारण होते हैं। किन्तु अपना वैभव जो कि ज्ञानभावके द्वारा जाना जाता है ऐसा ज्ञान और आनन्दरूप वैभव निर्विकल्प समाधिमें प्रकट होता है। उसका यत्न नहीं, उसकी ओर दृष्टि नहीं, धर्म मा करेंगे तो धर्मके नाम पर बहुत बहुत श्रम कर डालेंगे, बड़ा व्यय कर डालेंगे, उत्सव मनावेंगे, पंगत करायेंगे, बड़े-बड़े ठाठ रचायेंगे। किन्तु इस ओर दृष्टि नहीं है कि यह सब प्रवृत्ति, ये सब समागम मुझसे न्यारे हैं। मैं तो स्वय ज्ञान और आनन्दका विधान आत्मद्रव्य हूं, सबसे निराला हूं। मुझको कोई नहीं जानता, कोई नहीं पहिचानता। ऐसी अपने आपकी ओर दृष्टि न जाय तो धर्मके नाम पर कितना ही तन, मन, धन, वचन खर्च कर दिया जाय पर कर्म वहां लिहाज नहीं करते कि आखिर देखो धर्मके नाम पर ये कितना कष्ट उठा रहे हैं तो थोड़ी सी कर्मोंकी निर्जरा हो जाय। कर्मोंके लिहाज नहीं है और आत्मामें सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र रूप परिणमन है। तो वहां कर्मोंमें इतना दम नहीं हैं कि क्षणभर भी ये ठहर सकें। जो काम जिस विधिसे होता है वह उस विधिसे ही सम्पन्न होता है।

भगवान् अलौकिक वैभवका स्वामी है अन्यथा भगवान्को यह सारा जगत न पूजता यह प्रभु दिखनेमें आता नहीं, दिखाई देता नहीं फिर भी लोग उसकी पूजामे अपने अपने संकल्पके अनुसार पूज रहे हैं। क्योंकि वह अलौकिक ज्ञानानन्द वैभवका स्वामी है। प्रभुका स्मरण करके अपनी शक्ति पर विश्वास न हो तो प्रभुकी भक्तिसे फायदा क्या उठाया ? जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही अपना स्वभाव है। जो शिव और शांत परमात्मा कहलाता है वह कुछ अन्य चीज नहीं है। कोई प्रभु ऐसा नहीं है जिसने शरीरसे ऐसा ठेका ले रखा हो कि मैं ही अनादिसे एक ऐसा हूं कि जिसको जो चाहे सो कर बैठूं। यह परमात्मपदार्थकी बातें स्वरूपसे भिन्न अन्यकी बात नहीं है। यह ही जीव मुक्त अवस्थामें व्यक्ति रूपसे शांत और शिव होता है।

भैया ! स्वरूपकी ओर दृष्टि जाये तो सब परमात्मत्वका मर्म अपनी समझमें आ सकता है, किन्तु अपने को तो इसने दीन, हीन, भिखारी माना। मेरेको अन्य सुख देने वाला और सुविधा देने वाला कोई व्यक्तिरूप हाथ पैर वाला प्रभु अलग है, ऐसी दृष्टि हो तो प्रभुताके मर्मका पता नहीं पड़ सकता। इन्द्रियोंको संयत करके अपने ज्ञान बलके द्वारा प्रभुके उस ज्ञान चमत्कार मात्रको निरखो। ज्ञान पुञ्ज कार्य परमात्मा भी सर्व जिस ज्ञान प्रकाशमें समा जाता है, ऐसा उसीमें ज्ञान पुञ्जप्रभु है, ऐसा विचारते-विचाते प्रभुका तो नाम छोड़ दो और ज्ञानका ही दर्शन करो। फिर उस ज्ञानसे ज्ञानमात्र जानते-जानते अन्यत्र कहीं यह जानन है यह बात छोड़ दो और केवल जानन ही उपयोगमें रहे तो प्रभुकी ओर एकता हो जाती है। भैया ! जैसा वह प्रभु शिव, शांत है ऐसा यह भी मैं आत्मा संसार अवस्थामें भी शक्तिरूपसे शिव और शांत हूं। कहा भी है, परमार्थनय स्वरूप जो सदा शिव हैं उसके लिए नमस्कार हो। सदाशिव आनन्दस्वरूप प्रभु कहां बस रहा है ? रागद्वेषोंकी तरंगोंको दूर करके विश्रामसे अपने आपमें ज्ञान और आनन्द स्वभावको अनुभव करके जानलो—ऐसा चैतन्य स्वभावमय वह यह मैं शिव, सदा मुक्त, परम कल्याण—रूप हूं, अनादिसे परिपूर्ण हूं। यहीं देख लो, परकी चिन्ता छोड़ो और अभी सुखका अनुभव करो।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भैय्या ! एक कथानक है कि दो चीटियां थीं एक चींटीं रहती थी नमक वालेके यहां, नमकके बोरों पर और एक चींटी रहती थी शक्करके बोरों पर। तो शक्कर वाली चींटी नमकके बोरोंमें रहने वाली चींटीसे बोली, बहिन तुम यहां कैसे गुजारा करती हो ? यहां खारा खारा खाती हो, हमारे यहां चलो मीठा ही मीठा खाओ। बहुत कहा तो विवश होकर नमककी चींटी शक्करकी चींटीके साथ चली पर मुंहमें एक नमककी डली दाबली, कहीं ऐसा न हो कि वहां कुछ भी खानेको न मिले सो एक दिनका खुराक साथ कर लिया। जब वहां पहुंची तो शक्करमें रहने वाली चींटीने पूछा जीजी स्वाद कैसा है कहा—स्वाद तो कुछ भी नहीं आया। दो बार पूछा शक्कर वाली चींटीने कहा यह कैसे हो सकता है ? शक्कर तो बड़ी मीठी होती है। बहिन, तूने अपने मुखमें कुछ रखा तो नहीं है। नमक वाली चींटीने कहा कि मेरे मुखमें तो एक बारका केवल कलेवा है और कुछ नहीं है। शक्कर वाली चींटी बोली—अरे नमकको चोंचसे निकाल और फिर चख। तेरी डली यहीं रखी रहेगी, कोई नहीं ले जायेगा। तुझे स्वाद अच्छा न लगे तो फिर अपना कलेवा ले लेना। सो उसने जब नमककी डलीको हटाया और स्वाद लिया तब नमककी चींटी कहती है बहिन तू तो बड़ी भाग्यशाली है। तुम रोज यही मीठा खाती हो। सो भैया यदि अपने आप पर दया हो तो विषय कषाय मोहकी वासनाको अलग कर देवो और अपनी प्रभुताका आनन्द लो।

क्यों भैया अपनी बात नहीं आती समझमें ? सुबहकी तो इससे भी कठिन चर्चा लगती होगी, अरे ध्यान में कैसे बैठे ? ध्यानमें न बैठनेके दो कारण हैं। एक तो कारण यह है कि अपने ज्ञानमें हम दसों जगह चित्त बसाए रहते हैं और रागवश रहते हैं। अभी आप मंदिरमें बैठे हैं कुछ भी घरमें हो जाय, या दुकानमें तुरन्त तो आप कुछ नहीं कर सकते। मुखसे भी न बोल सकेंगे। जरा मनसे और विकल्प हटा दो। कभी तो हृदयपटलका सब भार हट जाय। सो होना कठिन लग रहा है। और दूसरी बात यह है कि कुछ समय देकर, यत्न करके ज्ञानार्जन भी नहीं किया इन बातोंके कारण, इन्हें अपने प्रभुकी बात समझमें नहीं आती।

भैया ! अपने निजी घरकी बात समझमें नहीं आती। तुम्हारा घर कहां है ? सोचो तो सही। अपना घर कहां है ? कहां जावोगे ? कौनसा घर है ? वह घर बतलावो जो घर अपनेसे कभी नहीं छूटता ? कहीं जावो अपना घर ही पासमें रहता है। वह घर है अपना स्वरूप, अपना प्रदेश उसकी और दृष्टि न दो और बाहरमें बाहरी पदार्थोंसे नाना आशाएं रखें तो बताओ किसके लिए नच रहे हो ? किसके लिए बिकते जा रहे हो ? सब भिन्न हैं। उनका कर्म प्रबल है। उदय अच्छा है सो आपको उनका दास बनना पड़ रहा है। किसके लिए धन बढ़ाते हो ? किसके लिए श्रम कर रहे हो ? यह मोह और यह इतना विकल्प क्यों मचा रहे हो ? आपसे भी अधिक भाग्यवन् वे बच्चे हैं जिनके लिए रात दिन श्रम कर रहे हो, जिनके लिए दास बनकर अधिक श्रम करना पड़ रहा है। शिव-स्वरूप, कल्याणस्वरूप तो अपना आत्मस्वरूप है। सर्वकल्पनाजालोंको छोड़कर अपने आपमें अपने आपके स्वरूपको निहारो, तो ऐसे ज्ञानस्वभावी प्रभुका दर्शन होगा कि फिर उससे शांति और आनन्द निरन्तर झरता ही चला जायगा।

जो शिव स्वरूप, परम कल्याण रूप, शांत अविनाशी शिव तत्त्व है, वह सर्व आत्मावोंमें उपस्थित है। जिसने मुक्तिपद प्राप्त किया है वह व्यक्त शिव है और जिसने मुक्तिपद प्राप्त नहीं किया वह अव्यक्त शिव है। मेरी सृष्टि करने वाला मुझमें बसा हुआ यह शिव है। निरन्तर सृष्टि होती चली जाती है। मेरी सृष्टिका कर्तव्य मेरे स्वतंत्रपदार्थका स्वरूप है कि वह निरंतर परिणमन करता रहता है। अब जैसी उपाधि मिलती है और इस उपदान की स्थिति होती है तो वैसी अपनी यह सृष्टि करता चला जाता है। अन्य कोई मेरी सृष्टिका करने वाला नहीं है।

एक जगत्व्यापी ईश्वर सृष्टि करता है। यह बुद्धि नयोंकी मिश्रतासे प्रकट होती है। सभी आत्मा अपनी-अपनी सृष्टिके कर्ता हैं। उन सब आत्माओंका स्वरूप एक है। अतः सृष्टिका सम्बन्ध और स्वरूपकी खबर इन दोनों की सम्भावनामें यह बुद्धि बनती है कि कोई एक प्रभु सृष्टि करता है। निष्कर्ष यह है कि अपने लिए आप स्वयं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जुम्मेदार हो। जो कर्ता भी किसीको मानता हो और यह प्रश्न सामने ला दिया जाय कि मैं पाप तो कर रहा हूं परन्तु प्रभु तो स्वयं दयास्वरूप है उसको तो हमें सुख ही देना चाहिए। यदि वह मुझे सुख नहीं दे सकता तो उसकी अनन्त शक्ति क्या रही? सर्वशक्ति क्या रही और तुम्हारे ही पापोंको देखकर पापोंके अनुसार दुःख देता है तो जुम्मेदारी तो सब बातोंमें तुम्हारही ही रही ना? कोई अलगसे सुख दुःख देने वाला हो तो और न हो तो जुम्मेदारी तो तुम्हारी तुम्हारे ही ऊपर है ना? मैं पाप करूंगा तो दुःख पाऊंगा और पुण्य करूंगा तो सुख पाऊंगा। धर्म करूंगा तो निर्वाण पाऊंगा और पुण्य करूंगा तो सुख पाऊंगा। धर्म करूंगा तो निर्वाण पाऊंगा। वह सब जिम्मेदारी मुझ ही पर तो है जरा ध्यान तो दो।

यह ही आत्मा शांत और शिव है। हम उसे शुद्ध परमात्मतत्वकी दृष्टिसे देखें तो सुनिश्चित होता है कि यह शुद्धात्मा ही उपादेय है। जिसके दिखने मात्रसे ही सारे सकट कट जायें यह कला यदि आ गयी तो उसे आप कितना धनी समझेंगे? जिस जीवके ऐसी कला उत्पन्न हो जाय कि मैं कुछ ऐसा देख लूं कि देखते ही सारे संकट टल जाएं तो आप उसको कितना महान् और धनी समझेंगे? यह लौकिक वैभव तो संकट टालनेमें समर्थ नहीं होता। कैसे ही सकट आवें जिसे झट देख लें तो तुरन्त संकट मिटें, उसका परिचय हो तो वही सर्वोत्कृष्ट वैभव है।

जैसे लौकिक कथानकोंमें कह दिया करते हैं कि अमुकको ऐसी बटरिया मिल गई कि जिसको बजाकर जो कुछ चाहे सो मिल जाय। किसीको शख मिल गया, उससे जो चाहे सो बन जाय। बच्चे लोग बहुत बोला करते हैं। ऐसी चीज मिल जाय तो उसे आप धनी कहेंगे या जिसके पास करोड़ोंका वैभव हो जाय उसे आप धनी कहेंगे। जिसको ऐसा दर्शन हो गया कि उसके संकट रह ही न सकें वह सबसे बड़ा धनी है। वह सबसे बड़ा वैभव सम्पन्न है। आप लोग कुछ ऐसा सोच रहे होंगे कि ऐसी चीज क्या है? कैसी है? क्या कहीं महाराजने देखा है और जो कहीं देखा हो तो बतादें वह एक-एक चीज बांट दें। कौनसी चीजकी बात चल रही है कि जिसके दर्शन करें तो संकट सब मिट जाएं। ऐसी चीज क्या? वह बतायी नहीं जा सकती। है वह आपके आपमें ही।

जिसको ऐसा अनुभव हो कि मैं तो सबसे निराला एक चैतन्य प्रकाश मात्र हूं और ऐसी ही दृष्टि हो जाय देखिए ये चीजें आपके ही द्वारा साध्य है। कुछ धीर बनें, उदार बनें, सबसे दृष्टि फेरें, सत्यकी ओर मुड़े, विश्राम पायें, परवाह जगत्की न करें, शर्म और संकोच जगत्में न रखें, एक अपने आपमें धैर्य और उदारता रखें, मोहको हटाकर शुद्ध एक प्रतिभासका अनुभव करें तो उस समय आपके उपयोगमें आपको विकल्प नहीं है, कहीं भी ममता नहीं है, कहीं भी वासना नहीं है, तो फिर कोई संकट रहा क्या? नहीं। ऐसी स्थिति अगर बने तब तो अपनी समझमें आये। यदि हम यह सिद्धि नहीं कर पाते तो यह शंका रहती है कि महाराज बताते तो जरुर हैं मगर पेट तो रोटी से ही भरेगा। कहते तो जरुर हैं प्रभुके स्वरूपकी बात, आत्माकी बात, किन्तु काम तो रोटीसे ही चलेगा।

क्यों जी! कहीं ऐसा उद्यम बन जाय कि रोटी खानेकी जरुरत ही न पड़े और सदा संतुष्टि रह जाय तो इसमें कोई टोटा है क्या? ऐसा कर सकते हैं कि नहीं। आप कहें कि नहीं हो सकता तो फिर प्रभुके दर्शन क्यों करने आते हैं? प्रभु ही तो ऐसा बैठा है जिसके आदि नहीं व्याधि नहीं, रोटी खानेका काम नहीं। है ना कोई? अगर नहीं है तो कुछ नहीं है। यदि कुछ नहीं है ऐसा समझा तो नास्तिकता आ गई। धर्म रहे कैसे? उत्तर कुछ मिले ना। हम भी प्रभु जैसे हो सकते हैं पर भैया! नैया बहुत दिनोंसे फंसी है, बहुत दिनोंसे बिगाड़ मचा है। आज ही ध्यान करके बैठें, अपने ज्ञान रसका स्वाद लें तो विषयभोगोंकी स्थिति नीरस लगने लगे और जहां विषयभोगोंकी स्थिति नीरस लगने लगे तहां सब काम बन जायगा। अन्य कोई भी तत्त्व उपादेय नहीं है। ऐसा निज शुद्धात्मा ही उपादेय है।

जैसे बच्चेको कोई पीटे तो उसके दिमागमें इलाज एक ही है कि वह भागकर अपनी मांकी गोदमें बैठ जाय। है ना ऐसी ही बात किसीने सताया, धमकाया तो तुरन्त उसके पास इलाज है कि झट अपनी मांकी गोदमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बैठ जाय। इसी तरह जगत्के हम आप सभीको सताए, कर्मोंका तीव्र उदय आये, संकट और उपद्रव आयें तो उस कालका एक ही इलाज है वह क्या कि शरीरसे दृष्टि हटाकर अपने सहजशुद्ध एकज्ञानस्वरूपके अनुभवमें आ जावो। यदि कभी दुःख आ जायें तो यह सोचो कि कहीं बाहरमें शरण नहीं मिलेगी, सो आंखें मींचो और अपने ज्ञान रसमें डूबो। इतना ही कर लो फिर संकट कहां है? संकट तो जीवने भ्रम करके बना लिया। फ़ंसाव कैसा है? क्या है? तो भाई यदि कहीं लगो तो केवल एक आत्मकल्याणमें लगो तो सब फंसाव समाप्त है।

अजी यह काम पड़ा है, अभी भैया छोटा है, अभी बुवाकी शादी करनी है। (हंसी) अरे क्यों हंसते हो, हां हो सकता है। किसीकी बुवा छोटी हो। ये सब आत्मनिरादताके चिन्ह हैं। तो मेरा बाहरमें कहीं कुछ नहीं है। अगर संकटोंसे मुक्ति प्राप्त करना है तो उसका इलाज है शुद्ध ज्ञानका आदर करना, यही ब्रह्म विद्या है। बड़े बड़े राजा महाराजा लोग भी ऋषियोंके चरणोंमें रहकर ब्रह्मविद्या सीखते थे। पुराणोंमें पन्ने पलटकर देखिए वे राजपाट की परवाह नहीं करते थे। ऋषियोंसे ब्रह्मविद्या सीखते थे। बिना ज्ञान गुणके निर्वाण पा ही नहीं सकते हैं। मोक्ष-मार्गमें न लगे और बाहर ही रहे तो उसका परिणाम क्या है? इसका परिणाम यह है कि संसारमें रुलना ही बना रहेगा। यदि कहीं कीड़े-मकोड़े बनना पड़ा तो परमात्माका काम खतम है। इस कारण अपने परमात्माको सर्वविकल्प समाप्त करके प्राप्त करनेका यत्न करो।

जासु ण वण्णु ण गंधु रसु जासु ण सद्दु ण फासु।
जासु ण जम्मणु मरणु णवि णाउ णिरंजण तासु ॥१९॥
जासु ण कोहु ण मोहु मउ जासु ण माय णमाणु।
जासु ण ठाणुवि झाणु जिय सोजि णिरंजणु जाणु ॥२०॥
अत्थिण पुण्णु विण पाउ जसु अत्थिणहरिस विसाउ।
अत्थिण एक्कुबि दोसु जसु सो जिणि रंजण भउ ॥२१॥

परमात्मा जीव निरंजन है अर्थात् अंजनरहित है। वे अंजन कौन-कौनसे हैं जिससे वह परमात्मा रहित है उन अंजनोंका निषेधरूप इन तीन गाथाओंमें एक साथ वर्णन किया जा रहा है। जैसे मुक्तात्मामें सफेद, काला, लाल, पीला, नीला रूप ५ प्रकारका वर्ण नहीं है। वर्ण तो जितने भी जीव हैं उनके नहीं हैं। चाहें निगोद हो, चाहे अन्य हो पर वर्णोंका रंचमात्र भी संयोग और सम्बध भी मुक्त जीवके नहीं। यह बात मुक्तात्माकी बताई जा रही है। संसारी जीवके वर्णात्मक शरीरका संयोग है पर सिद्ध महाराजके तो शरीरका संयोग नहीं है। सुगन्ध और दुर्गन्ध रूप दो प्रकारकी गंध भी नहीं है। कड़ुवा, तीक्ष्ण, मधुर, खट्टा और कषायला ये ५ प्रकारके रस भी नहीं है। भाषा-त्मक और अभाषात्मक इत्यादि नाना प्रकारके शब्द भी इस आत्मामें नहीं हैं। ये सब चीजें भी अपनी नहीं है। किन्तु यहां इस प्रकारके पुद्गलोंका एक विशिष्टावगाहनरूप सम्बन्ध है। इस कारण इस जीवमें रूपादिकका व्यवहार होता भी है। पर मुक्तआत्मामें ये रूपादिक भेद नहीं हैं। ८ प्रकारके स्पर्श हुआ करते हैं। ठंडा, गर्म, रुखा, चिकना, गुरु और लघु, कोमल और कठोर ये ८ प्रकारके स्पर्श जिस मुक्तआत्मामें नहीं है उसको तुम निरंजन जानो।

इस मुक्त आत्माका जन्म मरण भी नहीं होता। वह चिदानन्द स्वभाव एक रूप सदा अविनाशी है। इसको ही निरंजन कहते हैं। अंजन रहित, अंजन माने परसंयोग। वहां अंजनका ही शब्द मिला। जैसे आंखमे अंजन मला, उसे एक जगह कहां रखें? फैल करके सबमें विस्तृत हो जाता है। ऐसे ही जीवमें अंजन भी विस्तृत हो जाता है। देखो यहां तैजस शरीर इस जीवके प्रदेशमें कैसा फैला है? कार्माण शरीर, अन्य अन्य रागद्वेषादि विकार कैसे आत्मामें फैले हुए हैं? ये सब अंजन उन मुक्तआत्माओंमें नहीं हुआ करते हैं। अलख निरंजन बोलते हैं ना? एक तो किसी इन्द्रिय द्वारा लखनेमें नहीं आ सकता है इस कारण ये अलख है और अंजनरहित है, रागद्वेष विकार आदि सभी प्रकारके अंजन नहीं हैं। मुक्तजीवमें किसी भी प्रकारका अंजन नहीं है? क्रोध नहीं, मोह नहीं और ८ प्रकार

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का मद भी नहीं, माया नहीं, कषाय नहीं, लोभ नहीं, देह नहीं, कर्म नहीं, ऐसा जो शुद्ध आत्मतत्व है उसको निरंजन जानो।

शुद्ध निश्चयसे तो जैसा आत्माका स्वभाव है वैसा ही मुक्तआत्माका व्यक्तस्वरूप है। ये क्रोधादिक कषाय जब होते हैं तब वे विकट विस्तृत हो जाते हैं। वे सब भी अंजन हैं। एक ज्ञानस्वभावी आत्मामें यह प्रतिबिम्ब पड़ता है, ये सब भिन्न तत्त्व हैं, आत्माका स्वभाव नहीं है और इसी कारण इस मुक्तआत्मामें विकार नहीं होता है। जिस मुक्तआत्माके ध्यान भी नहीं है। ध्यान कहते हैं चित्तके विरोध होनेको। चित्तके निरोध होनेके स्थान अनेक हैं। एक तो नाभि स्थान है, जिसे टूंडी बोलते हैं ना? उस नाभिकी जगह अष्टदल कमलका चिंतन करके चित्तको रोका जाता है। एक हृदयका स्थान है। इस हृदयमें भी कमलका चिंतन करके उस हृदयमें रोका जाता है। एक ललाटका स्थान है, यहां ललाटमें तो अक्सर लोग चित्तको रोका करते हैं। यहीं पर वैज्ञानिक दिमागकी कल्पनाएं करते है। ये सब ध्यानके स्थान हैं। इन सब स्थानोंमें चित्त रोकनेका काम संसारीजीवोंका है पर जिसके केवलज्ञान स्थित हो गया, जो आत्मा रागद्वेषोंसे रहित शुद्ध हो गया वह निरंतर सर्वविश्वके जाननेके उपयोग वाला रहता है। उनको ध्यान भी नहीं होता है। ऐसा रूप रस गंध स्पर्श रहित विषयकषायोंसे रहित ध्यानसे परे शुद्ध निरंजन परमात्मदेवको जानो।

भैया! इस जीवका कोई सहायक है तो निर्दोष आत्माकी भक्ति। संसारके दृश्यमान ये सब पदार्थ आकुलताओंके कारण हैं। इन सब पदार्थोंका आश्रय करके कोई सुखी नहीं होता, न सुखी हो सकेगा। विवेक शील पुरुष वह है जो इन पदार्थोंसे आत्महितका विश्वास न करे। और देखो सभीको अनुभव भी है कि इन बाहरी विभूतियोंसे, वैभवसे आत्माको चैन नहीं है। क्रोध उमड़ आता है, घमंड आ जाता है, छल, कपट भाव हो जाता है, लोभ आ जाता है, बात-बातमें अपमान महसूस कर लिया जाता है। ये सब ऐब और संकट क्यों हैं? इन बाह्यपदार्थोंका आश्रय तका है, उनसे ही हित समझा है इस कारण पद पद पर क्लेशोंकी ठोकर मिलती चली जाती है।

इस लोकमें, इस दुनियामें जो बड़े आदमी मालूम होते हैं, जिनके नाम जानते होगे। टाटा, बाटा, डालमिया, बिड़ला हैं, और कोई हैं, नाम गिननेसे कोई मतलब नहीं जो महान् धनिक पुरुष हैं उनको ऊपरसे देखो सकल रहन सहन अच्छा है, साफ कपड़े हैं, लोग सलाम कर रहे हैं। बड़े आरामके साधन मिल रहे हैं पर चित्त शांतिमें हो तो सुखी वास्तवमें वही कहलाता है। बाहरसे शांतमुद्रा दिखती है किन्तु चित्तमें क्या है? उसे हम क्या कहें। यदि कोई अंदाजा लगा सकते हो तो लगा लो। एक साधारण बात कही जा रही है। इस लोकमें बाह्यविभूतियोंमें क्या विश्वास करें। यह वैभव जिनके पास है वे भी शांत और सुखी नहीं रह सकते। तब वह साधन कौनसा है? वह तत्त्व कौनसा है जिसका आश्रय करनेसे शांति मिले। बस इतना ही निपटेरा तो धर्म है।

बड़े बूढ़े कहते हैं धर्मपालन करो। क्या पालन करें? ये सब व्यवहारिक बातें हैं। ये तुम्हारे धर्मके साधन बन गए हैं। ठीक है, पर भीतरमें धर्मके स्वरूपका निर्णय तो हो। धर्म क्यों करना चाहिए? आप यही बतलावो। धर्म इसलिए करना चाहिए कि हम जीवनमें यह देख रहे हैं कि किसी भी जगह किसी भी परपदार्थमें किन्हीं भी भोगसाधनोंमें प्रवृत्ति रहती है तो शांति नहीं मिलती है। कदाचित् पुण्यके अनुकूल सर्वसाधन भी हों तो भी उनका भरोसा तो नहीं कि कब तक रहें, कब मिट जाएं? जब ये सब क्लेश लगे हैं जगत्में तो हमें इन क्लेशों से दूर होना चाहिए। ये विषयभोग भोगनेमें आनन्ददायक प्रतीति होते हैं पर इनके संयोगको करें क्या, सब भिन्न हैं, सदा रहते नहीं हैं और जब तक हैं तब तक भी ये तृष्णा और बेचैनीके साधक हैं। इन दृश्यमान पदार्थोंका हम करें क्या? ऐसी स्थितिमें अन्तरमें आवाज होती है कि ये काम लौकिक हैं अलौकिक नहीं। जिस कार्यको करनेके पश्चात् इस जीवमें शांति न रहे उस कार्यका यह जीव क्या करे? यह कर ही क्या सकता है? उनमें इसके हाथ पैर नहीं, रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं, यह कोई गांठ नहीं, पिण्ड नहीं, पकड़ा नहीं जा सकता, यह करेगा क्या? यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तो केवलज्ञान करता है, भाव बनाता है।

भैया ! अन्तरमें परख तो, यह शरीरके अन्दर रहने वाला जीव मात्र भाव बनाया करता है। तब हमें कैसे भाव बनाना चाहिए कि शांति प्राप्त हो ? वह स्थान है अपने आपमें बसने वाले सहज स्वरूपका, में अपने सत्व के कारण स्वयं क्या हूं इसका निर्णय होता है तो उसे स्थान मिल जाता है, प्रभुपद मिल जाता है। कैसा हूं मैं ? सहज अर्थात् किसी भी परका सम्बन्ध न हो तो यह मैं आत्मा किस स्थितिमें रह सकता हूं ? वह है सहजभाव, इस का निर्णय हो जाना धर्मका पालन है। यह निर्णय अपने आपके पा लेनेमें होता है। आत्मनिर्णय किसी इन्द्रियके उपयोगसे नहीं होता है।

वे परपदार्थ कौन-कौन हैं जो इस जीवके साथ लगे हैं और जिसके सम्बन्धके कारण आत्माका सहज-स्वरूप तिरोहित हो गया है। वे पदार्थ हैं कर्म और शरीर। कर्म और शरीर इस जीवके एकक्षेत्रावगाह रूपमें है। उनके सम्बन्धसे हमारा चित्त विचित्र हो गया है। शरीर और कर्म ये मेरे नहीं हैं। ये तो मेरेसे स्वरूपसे अत्यन्त जुदे हैं। इस जीवने शरीरको मान रखा है कि यह मेरा है। उससे ही अपना लगाव कर रखा है। जिस उपयोगमें बाह्य तत्त्व बसे हुए हैं उस उपयोगसे प्रभुके दर्शन नहीं हुआ करते हैं। ऐसे समस्त विकारोंसे रहित परउपाधिके संयोगसे रहित निरंजन शुद्धआत्मतत्त्वको जानो। अर्थात् अपनी समाधिमें स्थित, होकर समता परिणाममें रमकर परमात्माके स्वरूपका अनुभव करो।

समाधि कब बनेगी ? जब विकल्प हटें। विकल्प जिसके हटते हैं उसे शुद्ध आत्माका अनुभव होता है अर्थात् मात्र ज्ञानस्वरूपका अनुभव होता है। केवल जाननका क्या स्वरूप है ? केवल जिसको जाना ही जा रहा है वह स्थिति क्या होती है ? उस स्थितिका जहां अनुभव होता है वहां ही निर्विकल्प दशा है। यह निर्विकल्प समाधि तब प्रकट होगी जब समस्त विभाव परिणामोंका त्याग करो। समाधिभाव, समता परिणाम, रागद्वेषसेरहित केवल-ज्ञानदृष्टि रहनेकी स्थिति होने पर शांति मिलती है। हे आत्मन् ! ऐसी समाधिकी स्थितिको प्राप्त करना यही धर्मका यत्न है। हमें क्या करना है ? निर्विकल्प समता परिणाममें रहना है। यदि यह भाव उठता है तो उसके धर्मका अभ्युदय हुआ समझिए। ऐसे स्वका अनुभव करनेके लिए सर्वविभाव परिणामको त्याग करना होगा।

विभाव परिणाम नाना प्रकारके हैं। उनको सक्षेपमें कहें तो ख्यातिकी इच्छा होना यह एक विभाव है ना ? मुझे सब लोग जान जायें। कौन लोग जान जायें। ये कर्मसहित, रागद्वेषसहित, मोह विकार पाप-परिणामोंमें लिप्त ये जीव जान जायें। बहुत बड़ी शाबासीकी बात सोच रहे हैं। ये मर मिटनेवाले जीव स्वयं असहाय मेरी ही तरह अशरण असार मलीन जीव मुझे जान जावें, यह यों समझो कि हुआ क्या ? एक मोहीने दूसरे मोही की प्रशंसा कर दी। उष्ट्राणाम् विवाहेषु गीतं गायंति गर्दभाः एक बार ऊंटका ब्याह हुआ। सो ब्याहमें गाने वाले चाहियें। गाने वालोंकी जरुरत थी। सो गानेके लिए मिले गधे, सो गधोंने क्या गीत गाया ? अहो धन्य हैं, तुम्हारा रूप बड़ा सुन्दर है। सारा शरीर टेढ़ा मेढ़ा होता है, गर्दन टेढ़ी होती है। पैर टेढ़े होते हैं। इसी प्रकारसे सारा शरीर टेढ़ा मेढ़ा है। फिर गधोंसे ऊंट बोलते हैं, अहो धन्य है तुम्हारा राग। तुम्हारा राग बड़ा सुरीला है। इस प्रकारसे ऊंटने गधोंकी प्रशंसा कर दी और गधोंने ऊंटकी प्रशंसा कर दी। इस जगत्में यही हाल हो रहा है। जब कभी दो आदमी बैठे होते हैं तो एकने दूसरेकी प्रशंसा कर दी, दूसरेने उसकी प्रशंसा कर दी।

कोई पहिले जमाना था, जबकि जमींदार लोग जाड़ेके दिनोंमें पौड़ा जलाकर बैठते थे। वहीं चपरासी वगैरह भी बैठते थे तो मालिक तो चपरासियोंकी प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न कर देता और चपरासी मालिककी प्रशंसा कर उन्हें प्रसन्न कर देता। देखो यहां भी जो दोस्ती होती है उसमें एकने दूसरेको भला कह दिया, दूसरेने उसे भला कह दिया। इस प्रकारसे यह मोही जगत् एक दूसरेकी प्रशसामें जुट रहा है। यह ख्याति चाही जा रही है। अरे १०-२० वर्ष जीना है मर कर यहांसे चले जाना है, फिर इस ख्यातिसे क्या लाभ मिलेगा ? जैसे भोगोंके बाह्य

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

साधनोंसे कुछ लाभ नहीं मिलता है इसी प्रकार इस ख्यातिकी चाहके परिणाममें भी कुछ लाभ नहीं मिलता है। ख्यातिकी चाह एक मलिनताका विभाव परिणाम है।

पूजाकी चाह, मेरी पूजा हो, प्रसिद्धि हो, यह भी विभाव परिणाम है। लाभकी चाह, धन वैभव हो जाय, इतने हजार रुपयोंका मुनाफा हो जाय, ऐसी स्थिति बन जाय कि बैठे-बैठे किरायेसे ही गुजारा हो तो किरायेसे भी गुजारा चल जायगा, मगर फिर भी बैठे-बैठे खा न सकेंगे। कुछ न कुछ चिंता करके उद्यम करनेका यत्न करेंगे। शांतिका कारण तो बाह्यपदार्थ है ही नहीं। शांतिका हेतु तो शुद्ध ज्ञान है। यथार्थ ज्ञान है। बाहरमें चाहे कुछ भी हो, मैं तो सबसे निराला एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप विराजमान हूं, यह मेरा मतलब किसी अन्यसे नहीं निकलता है।

सहज स्वरूपका जिसके बोध होता है, वह अपने उपयोगको वहीं ले जाता है। यदि ऐसा अपना उपयोग कर ले तो सारे काम बन जायें। बाह्य चीजोंमें न फंसकर उनको हितरूप न मानकर अपने आपका जैसा सहज-स्वरूप है उसको हितकर समझो। यदि ऐसी दृष्टि बनती है तो वही धर्मका पालन है। यदि ऐसी दृष्टि नहीं बनती है तो चाहे मंदिरमें साक्षात् प्रभुके सामने विराजमान हो जाओ तो भी आप धर्म नहीं कर रहे हैं। यदि अपने आपके स्वरूपका भान हो जाये तो ऐसी स्थिति होनेपर आपको रागके साधन न मिलेंगे, फिर रागादि विकारोंका आदर न करके आप अपने स्वभावका आदर करने लगेंगे। यदि मंदिरमें भी मोहकी वृत्ति हो रही है, स्त्री पुत्रोंको ही अपना सर्वस्व समझ रहे हो तो उस समय भी आप धर्म नहीं कर रहे हो।

भैया! धर्मका सम्बंध तो आत्मभावसे है। धर्म मन, वचन, कायकी चेष्टाओंसे नहीं है। धर्म करनेके लिए विभाव परिणामोंका त्याग करना होगा। वे विभाव परिणाम बताये जा रहे हैं। भोगकी इच्छा करना भी विभाव परिणाम है, भोग तीन प्रकारके हैं (१) दृष्ट (२) श्रुत और (३) अनुभूत। कुछ भोग तो ऐसे हैं कि सुख दुःख हैं। कुछ भोग ऐसे हैं कि जिन्हें सुना है और कुछ ऐसे हैं कि जिनका अनुभव किया है। अनुभूत भोग निकटके भोग हैं और दृष्ट उससे दूर हैं और श्रुत उससे अधिक दूर हैं।

भैया! इस जीव पर एक संकट यह लगा कि दूसरोंके भोगोंको देखकर यह वांछाएं बनाने लगता है। जैसे तुमको अगर वांछा है तो भोग भोग लो, कितना भोगोगे? थोड़ा भोगनेसे ही तृप्त हो जावोगे, मगर दूसरोंको भोगते जब यह जीव देखता है तो बेचैन हो जाता है। गांवोंके लोग कितना खाकर संतुष्ट रहते हैं सो समझते ही होंगे। सीधी वह दाल रोटी चाहिए। उनको कुछ मिठाई, रबड़ी, चटपटी खानेकी इच्छा नहीं। उन्हें सूखी दाल रोटीमें ही संतोष रहता है। इच्छा बढ़ गई है सो अब गुजारा नहीं चलता है। क्या हो गया? अरे अपने आपकी आवश्यकतासे भोग साधे जाते थे। वे भोग थे किन्तु दूसरोंके भोग देख करके तृष्णा बढ़ी है यह बड़ा कठिन रोग है।

दृष्ट, श्रुत और अनुभूत योगोंकी आकांक्षा होना यह सब विभाव परिणाम है, सुन लिया कि अमुक-अमुक प्रकारके रेडियो बने हैं। सिनेमा बने हैं तो दिल हो जाता है कि इनको देखना चाहिये। यह क्या है? भोगोंकी बात सुनकर उसके इच्छा बढ़ी और जब यह सब सही अनुभूत हो जाता है तब तो और भी अधिक रंग जाता है। ये सब बड़े संकट जीव पर छाये हैं। वह गृहस्थ पुरुष धन्य है कि जो बड़ी विभूतिके बीच रहते हुए भी सात्विक रहन सहनसे रहे। व्रत तपस्या परिणाम पूर्वक रहे, भोगोंके त्याग पूर्वक रहे, वह गृहस्थ धन्य है। भले ही लोग कहें कि इन्हें मिला तो सब कुछ है मगर रुखे सूखे व्रत तपोंमें रहा करते हैं, अमुक सेठकी यह बुद्धिमानी है क्या? परन्तु सेठ स्वयं बुद्धिमान है, जानता है कि ये भोग आज हैं कल न रहे तो अपनी वृत्ति तो ऐसी बनाओ कि ये भोग न रहें तो कोई आकुलता न रहे।

कठेरामें सुना करते हैं कि एक धनिक जैन था। वह रायसाहब कहलाता था, धार्मिक था। वहांका राजा भी उसका आदर करता था। यद्यपि उसके पास बड़ा धन था पर उसका काम था कि प्रतिदिन दो घन्टे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नमक तम्बाकूकी खास पीठ पर लादकर फेरी लगाया करे और खुद तौलकर बेचा करे। दो घन्टेके बाद फिर हजारों रुपये सैंकड़ों रुपयोंका काम करे। लोग पूछते थे कि तुम्हारा तो इतना ठाठ है कि राजा भी आदर करता है और तुम तम्बाकूकी फेरी करते हो। वह कहता था कि आज तो ठाठ है कल यह कुछ न रहे तो फेरी लगानेमें कोई संकोच तो न होगा। यह उसकी बात थी। इतनी बातके लिए तो भैया आपको नहीं कह रहे हैं पर सब प्रकारके साधनोंमें रहते हुए भी अपना रहन सहन सात्विक हो यह जरूर ध्यानमें रहे और आज कल तो सात्विक रहन-सहन का महत्व भी है।

श्रृंगार अपना बनाना है तो दीनोंकी दुखियोंकी सेवामें उपकारमें धन खर्च करो। अपने खर्चमें पान, बीड़ी, सुपाड़ी, तम्बाकू, सिनेमा आदि में जो खर्च किया जाता है उससे न अपनी उन्नति है, न लोगोंकी दृष्टिमें बड़प्पन है। रहन सहन सात्विक हो और परोपकारमें यत्न होना अपना श्रृंगार है। इसी श्रृंगारसे अपनी शोभा है। आश्रितोंका भरण पोषण करो यही श्रृंगार है। दीन दुखियोंके उपकारमें धन व्यय हो और अपना व्यय कम रखो तो इससे धर्मकी बातोंको अधिक स्मरण करनेका वातावरण रहेगा। सो किसी भी प्रकार विभाव परिणामोंको त्याग कर अपने समाविभावमें स्थित होओ।

भगवान् परमात्मा निरंजन है। अंजन अनेक हैं उन सब अंजनोंसे रहित हैं, जिनके पुण्य और पाप भी नहीं हैं। कर्म भी अंजन हैं और वे दो प्रकारके हैं, (१) पुण्यरूप और (२) पापरूप। जिसके हर्ष और विषाद भी नहीं है हर्षमें आये राग और विषादमें आये द्वेष, तथा जिनके क्षुधा तृष्णा आदि १८ दोषोंमें भी एक भी दोष नहीं है। हे प्रभाकर भट्ट! उसको तुम शुद्ध आत्मा निरंजन समझो। अर्थात् निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर अनुभव करो। जब तक उस शुद्ध आत्माका विशद यथार्थ जानन न हो तब तक उसको जानना ही नहीं बताया गया है। और शुद्ध आत्माका जानना शुद्ध आत्माके उपयोग रूपसे अनुभव किए बिना होता नहीं है। यहां जैसा कुछ बाह्य पदार्थोंका जानना तो है नहीं कि यथा तथा जान गया। शुद्ध आत्माका जानना चरित्रके उपयोग बिना नहीं हो सकता। अतः वीतराग निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर शुद्ध आत्माका अनुभव करो।

वह निर्विकल्प समाधि कैसी है? कि निज शुद्ध आत्माके सम्वेदनरूप निर्विकल्प है। चाहे यह कहो कि किसी प्रकारका विकल्प न हो और चाहे यह कहो कि मात्र अपने शुद्ध आत्मतत्वका सम्वेदन हो, दोनोंका भाव एक ही है। ज्ञान एक गुण है। वह गुण किसी न किसीको जाने बिना रह ही नहीं सकता। किसीको न जाने और ज्ञान गुण बना रहे यह कैसे हो सकता है? बाह्यपदार्थोंको न जाने तो ज्ञानका आधारभूत जो निज शुद्ध आत्मा है उसको तो जान ही लेगा तो केवल शुद्ध आत्मतत्त्वके सम्वेदनमें रहकर शुद्ध आत्माका अनुभव करो। इस प्रकार तीनोंमें बताये गये निरंजन परमात्माको जानना चाहिए और अन्य प्रकारका कोई निरंजन कल्पित आत्मा नहीं है। इस प्रकार परमात्माके स्वरूपको निरंजन शब्दके द्वारा बताया गया है, उसमें जिन-जिन अंजनोंका विरोध किया है उन सब अंजनोंका सद्भाव इन सब आत्माओंके स्वभावमें नहीं है। जो शुद्ध ज्ञान दर्शनस्वभाव वाले जो शुद्ध आत्मतत्व हैं वे उपादेय हैं ऐसा समझना चाहिए।

भैया! लोकमें मनुष्यजन सब कुछ कर डालते हैं, अपने आनन्दके लिए सब कुछ कलाएँ खेलते हैं किन्तु एक ज्ञानरसका स्वाद लेनेकी कला और देख लो। करनेका काम केवल एक ही है, अपनेको ज्ञान मात्र निरखना इस ज्ञानमात्र स्वरूपसे बाहर मेरा अस्तित्व नहीं है। इस ज्ञानमात्र स्वरूपसे बाहर मेरा कुछ कर्त्तव्य नहीं है। मेरा काम है अपने आपका जानन बना रहे। ज्ञान ही कार्य, ज्ञान ही भोग है। ज्ञानमात्र अपने आपको समझनेसे सहज आनंद प्राप्त होता है। उसका स्वाद लेना एक ही कर्त्तव्य शेष रह गया है और तो सब कुछ किया यह ही निरंजन स्वरूप हम आपके लिए उपादेय हैं। अब उस निर्दोष आत्माकी आराधनाके ग्रहण करनेमें व्यवहार ध्यानका विषयभूत धारणा ध्येय तंत्र मंत्र मुद्रा आदिका निषेध करते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिस परमात्माके वायु धारणादिक ध्येय नहीं हैं वे वायु धारणा तीन प्रकारकी होती है—(१) कुम्भक (२) रेचक और (३) पूरक। ये ध्यानके प्रकार हैं, उपाय हैं। स्वासको धीरे-धीरे अन्दर लेना और फ़िर पेटमें श्व स-वायुको थाम लेना, फिर उस वायुको धीरे-धीरे स्वासनासिकासे निकालना इसको कहते हैं कुम्भक पूरक और रेचक। ये ध्यानमें कुछ सहायक होते हैं।

यद्यपि मोक्षमार्गका प्रयोजकभूत ध्यान ज्ञानसे ही सम्बन्ध करता है, भेदविज्ञानके बिना ये कुम्भक, पूरक, रेचक इत्यादि क्रियायें कुछ लाभ नहीं देतीं। हां मनकी उद्दण्डताको बचानेके लिए और मनको स्थिर बना सकें इस अभ्यासके लिए यह कारण बनता है वस्तुके मर्मके ज्ञानके बिना क्रियायें धर्मफ़ल नहीं दे सकती हैं। कर्मोंका क्षय जिस पद्धतिसे होता है उस पद्धतिसे ही होगा वह तन, मन, वचनकी चेष्टावोंसे नहीं होता। भेदविज्ञानका फल है अपने सहजस्वरुप शुद्ध आत्मतत्त्वका अवलोकन। जब तक इस केन्द्रभूत निजआत्मतत्त्वको न जान लिया जाय तब तक भेदविज्ञान कैसा ? अनात्मा कौन है ? यह बात आत्माके ज्ञानके बिना नहीं निर्णीत हो सकती है। इस शुद्ध आत्मा का तो मात्र एक प्रतिभास स्वरुप है सो प्रतिभासमात्र करनेकी परिणतिसे यह अनुभूत होता है।

इसका वायुधारणादिक स्वरुप नहीं है अथवा प्रतिमादिक ध्येय नहीं है। ये सब साधन हैं पर ये कुछ वस्तु आत्माके स्वरुप नहीं है। स्वरुपके बोधके बिना क्रियाओंसे कहीं कर्म क्षयका अथवा शांति लाभका काम नहीं

गुरुजी एक दृष्टांत बताया करते थे कि एक बार शीत ऋतुमें देहातोंसे बजाज लोग घोड़ोंपर बैठकर ललितपुरको चले क्योंकि ललितपुरमें उधार माल मिलनेकी बड़ी ख्याति थी और लोग कह भी बैठते हैं कि झांसी गलेकी फ़ांसी, ततिया गलेका हार। ललितपुर तब तक नहीं छोड़िये, जब तक मिले उधार।।' तो ललितपुरको तीन चार लोग चले, जाड़ेके दिन थे। रातमें ठहर गये जगलमें एक पेड़के नीचे। उनको बड़ा जाड़ा लगा। तो उन लोगों ने यहां वहांसे खेतोंकी बाड़ीसे जरेंटोंको बटोरा, उनको इकट्ठा किया। बादमें माचिस या चमकसे आग निकालकर उसे बढ़ाकर कुछ जड़ोंमें डाल दिया और सब लोग तापने बैठ गये। रात्रिभर ऐसा ही किया और सुबह सबके सब लोग वहांसे चल दिये।

अब दूसरा दिन हुआ तो उस पेड़ पर रहने वाले बंदरोने सोचा कि देखो जैसे हाथ पैर उन मनुष्योंके थे वैसे ही हमारे हैं। वे लोग किस प्रकारका यत्न करके अपनेको ठंडसे बचाकर चले गये। वही अपने कामके लिए अपन लोग करें तो अपनी भी ठंड मिट जाय। तब बंदर लोग भी वैसा ही काम करने लगे। शामके समय सब बंदरोंने सलाह करके वही काम किया। सब दौड़ गये और जल्दी-जल्दीसे जरेंटोंकी जड़ें बीन कर इकट्ठा कर लिया। अब इकट्ठा करनेके बाद सब बंदर बैठ गये। आपसमें चर्चा करने लगे कि ठंड तो नहीं मिटी इतना तो काम कर डाला तो उनमेंसे कोई समझदार बंदर बोला कि अभी ठंड कैसे मिटे ? अभी इसमें वह लाल चीज तो डाली ही नहीं जो उन मनुष्योंने डाली थी। तो लाल चीज क्या थी ? आग। तो बंदर लोग उस लाल चीजकी तलासमें चले तो जुगनू कुछ मिल गयीं। उनको पकड़ा और जरेंटोंमें डाला। जुगनू डाली तब भी ठंड न मिटी। सोचने लगे क्या बात है ? सब कुछ कर लिया पर ठंड न मिटी तो उनमेंसे एक चतुर बंदर था। वह बोला कि वे हाथ पर हाथ रखकर बैठ गये थे हम तुम भी बैठ जाएं। वे हाथ पर हाथ पसारकर बैठ भी गये। अब भी ठंड न मिटी सोचो तो भैया ! बंदरोंने सब कुछ कर लिया पर ठंड न मिट सकी। ठंड कैसे मिटे ? ठंड मिटनेका साधन तो आग थी। आगका उनको ज्ञान नहीं था। बहुत बहुत चेष्टाएं करीं पर आगका ज्ञान न होनेसे ठंड न मिटी।

इसी प्रकार कर्मोंका क्षय शांतिकी प्राप्ति किसी मुद्रासे, श्रमसे, वायु धारणासे मिलती है या अन्य किन्हीं बातोंसे नहीं मिलती है। एक शुद्ध निज आत्मतत्त्वके ज्ञानसे ही शांति मिलेगी। बाह्यमें सब जगह तलाश लो। यत्न कर लो पर शांति न मिलेगी। भैया ! इन परपदार्थोंमें शरण माननेसे शरण न मिली, शांति न मिली बल्कि वेदना

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही मिली। मोहका प्रताप देखो। कुछ थोड़ा सा समझ भी रहे हैं कि बाह्यपदार्थोंसे आखिर आत्माका हित क्या होगा ? फिर भी लगते हैं बाह्य पदार्थोंमें ही। ठोकरें भी खाते, बाह्य पदार्थोंमें लगते भी जाते।

जैसे लाल मिर्च खाने वाले तेज लाल मिर्च खाते हैं तो उनके पसीना भी बहता जाता है, आंखोंसे आंसू भी गिरते जाते हैं पर वे मिर्च खाना नहीं छोड़ते। वे खूब चरचरा खाते हैं। आंसू गिरते जाते हैं फिर भी मागते जाते हैं कि मुझे और मिर्च चाहियें। इसी प्रकार मोहियोंको भी देखा जा रहा है। इस शुद्ध आत्माको, जिसके कि अवलोकनसे सारे संकट टल जाते हैं। कोई यंत्र मंत्रस्वरूप नहीं है। मंत्र क्या कहलाता है जिसमें अक्षर रचनाएं की गयी है और सम्मान, मोहीकरण वशीकरण आदि विषय लेकर वह यंत्र मंत्र माना जाता है। वह सब इस मुझ शुद्ध ात्मामें नहीं है और मंत्र नाना प्रकारके उच्चारण रूप होते हैं यह भी शुद्ध आत्माके नहीं हैं। ये तो एक अशुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं।

अच्छा, सब कुछ तो जाना पर यह तो बतलावो कि जानन क्या कहलाता है ? ऐसा सोचते सोचते उस समयमें जानते जानते जो प्रतीत होता है, प्रतिभासमात्र केवल एक ज्ञानप्रकाश, ऐसा ज्ञानप्रकाश मात्र, चित् प्रकाश ही जो वर्तना है वह सब जानन है और जो यह जानना है वह ही मैं हूं। इससे आगे जो कुछ है वह सब दोष है, औपाधिक भाव है। मैं नहीं हूं, ऐसा मात्र जाननस्वरूप मैं हूं।

इस शुद्ध आत्माके मण्डल भी नहीं है। ध्यानके काममें इनका प्रयोग किया जाता है। पृथ्वीमण्डल जल-मण्डल, अग्निमण्डल, वायुमण्डलमें जैसे पृथ्वीमण्डलमें विचार किया जाता है कि यह मैं आत्मा जिनेन्द्रदेवकी ही तरह निर्मलमुद्रामें इस जम्बूद्वीपके बीच मेरुपर्वतके ऊपर बहुत विस्तृत एक कमलमें कर्णिकाके ऊपर एक श्रेष्ठ आसनपर मौजूद हूं बहुत ऊंचा हूं पृथ्वीसे बहुत ऊंचे कमलके आसनपर मैं मौजूद हूं, ऐसा कल्पनामे विचार रहा है पृथ्वी-मण्डलको ज्ञानीपुरुष। देखा जब अपनेको कल्पनासे ऐसा विचारते हैं कि मैं इस जमीनसे बहुत ऊंचे कहां स्थित हूं ऐसा विचारते हुए मैं अपनेको भाररहित हलका अनुभवता हूं।

जैसे जब बच्चे लोग कोई बंटा वगैरह खेलते हैं तो कोई जगह खडे होकर और गल्लाके पास बंटा फेंकते हैं उनमें प्रथम ही प्रथम फेंकनेकी कोशिशमें रहते हैं। जैसे कहते हैं कि हम पानीसे पतरे तो कोई लड़का कहता है कि हम हवासे पतरे। जो अपने आपको जितना पतला बता सके वह सबसे पहिले अपने खेलका अधिकारी है। जरा देखो तो सही इस आत्माको यह आत्मा कितना पतला है। है ना पतला ? यह आत्मा हवासे भी अधिक पतला है तो क्या यह आकाशसे भी पतला है ? आकाशकी तरह मान लो पर आकाश तो एक स्थिर व्यापक है। यह आत्मा अपने ज्ञानविकासमें असीमित है। समस्त आकाश ज्ञानके एक बिन्दुमें रह सकने वाला है इसलिए यह बहुत अधिक पतला है और अपने आपको केवलज्ञानमात्र जाननमात्र ही निरखनेमें आ जाय तो उस समय न इसको शरीरका भान है और न स्थानका भान है। केवल जाननस्वरूप भान वाला आत्मा कितना भार रहित कहा जाय ? अपनी इस बर्तनेकी स्थितिमें सहज सत्य आनन्दका अनुभव करना है।

यह पृथ्वीमण्डलका जो चिंतन है कि मैं समुद्रके बीचमें जम्बूद्वीप रूपी कमल बनमें मेरुपर्वतरूपी कमल-नाल पर एक सिंहासनपर विराजमान हूं। यह पृथ्वीमण्डल ध्यानाभ्यास करने वालेके एक ध्यानका विषयभूत विषय है। परन्तु कैसा तो यह शुद्ध आत्मा और कहां ये कल्पनाओंकी चीजें ? इनमें बड़ा अन्तर है। इस शुद्ध आत्मामें ये पृथ्वीमण्डल इत्यादि कुछ नहीं हैं।

वह ज्ञानी फिर यह विचार करता है कि लो इस नाभिकमलके उन ८ दलोंसे ज्ञानके प्रतीक अरहंत सिद्ध-स्वरूपके ध्यानसे या मात्र ज्ञानस्वरूपके स्वच्छ विस्तारके अनुभवनसे एक ज्वाला निकली और उस ज्वालासे हृदय कमलके ऊपर स्थानपर उल्टी पंखुड़ियोंको लिए हुए दलके ८ कर्मोंकी ओर वह ज्वाला बढ़ी और उसने इन कर्मोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दग्ध किया। आप लोग सोच रहे होंगे कि क्या बात कही जा रही है? यह तो सब ध्यानकी और कल्पनाकी बात है। लेकिन भैया! सुनो अभी कोई लड़का बड़ा ऊधमी हो और कहे कि तू तो राजा है, राजा कहीं उधम करता है। वह जल्दी ही सोच लेता है कि मैं राजा हूं, उसका ऊधम छूट जाता है। ध्यानमें अपने आपको इस प्रकार सिद्ध स्वरूपमें विचारा जा रहा है तो आखिर यह उपयोग विशुद्ध बने तो शुद्धका अनुभव करोगे ना? वह शुद्धात्मतत्त्व की ध्यानाग्निकी ज्वाला ऐसी बढ़ी कि सर्व कर्म भस्म हो गए, जलकर राख हो गए। ऐसे चिन्तनमें निर्भार ज्ञानमात्र अनुभव हुआ।

अब इतनेमें बड़े वेगसे एक आंतरिक हवा उठी और हवाने इस सब कर्मधूलिको उड़ा दिया। लो अब सुधारसकी वृष्टि हुई। उसकी छटा उड़नी भी शेष न रही। तब यह शुद्ध आवश्यकता निर्लेप ज्ञानमात्र रहा! इतना तो ध्यान किया और थोड़ी देर बादमें वही अपना मनुवा दिखाई दिया, तो कुछ यहां फर्क नहीं आया। यह एक ध्यानका प्रकरण है। यह ध्यान ध्येय भी इस शुद्ध आत्माका कुछ नहीं है। इसका तो मात्र एक ज्ञायकस्वरूप है। इस एक निजको ग्रहण करे तो सर्वस्व वैभव पा ले। एक इस निजको छोड़ दे तो धर्मके कितने भी यत्न करें कुछ नहीं पाया।

एक राजाने किसी राजाको जीता और उसी देशमें रहने लगा। सब रानियोंको राजाने पत्र लिखा कि जिस रानीको जो चाहिए वह पत्र लिखे। किसी रानीने साड़ी लिखी, किसीने अंगूठी, किसीने हार, किसीने कुछ, पर छोटी रानीने पत्रमें केवल एकका अंक लिखा और दस्तखत कर दिया। जब राजाने पत्रोंको खोला तो ठीक, पर छोटी रानीका जब पत्र देखा तो राजा उस एकके अंकको देखकर कुछ समझ न सका। मंत्रियोंसे राजाने पूछा कि रानीने क्या मांगा है? तो मंत्रीने कहा कि छोटी रानीने केवल आप अकेलेको चाहा है, उसे साड़ी, अंगूठी कुछ चीजें न चाहियें। अब राजा जब अपने देशको चला तो सारी चीजें रानियोंके लिए ले लीं। जब अपने नगरमें पहुंचा तो कहा यह उस रानीको भिजवाओ, यह उस रानीको भिजवाओ। सो जिसने जो मंगाया था सो वह चीज भिजवा दी। पर राजा छोटी रानीके यहां स्वयं चला गया। भला बतलाओ कि सबसे ज्यादा वैभव किसने पाया? छोटी रानीने। राजा व राजवैभव सब छोटी रानीके यहां है।

इसी प्रकार एक जो शुद्ध आत्माको ही चाहता है उसे सब कुछ मिल जाता है। अपने आपमें बसे हुए अपने सहजस्वरूपके दर्शनके बिना आत्माका उद्धार हो नहीं सकता। धन वैभव सम्पदामें उपयोग देनेसे लगाव करने से कोई सारतत्त्व न बनेगा। अन्तमें रीताका रीता ही मिलेगा, पछताना ही हाथ रह जायगा। यदि इस जीवनमें समय-समय पर अपने आपको शुद्ध ज्ञानमात्र अनुभव करके ज्ञान रसका सिंचन किया, स्वाद लिया तो यहां भी तृप्ति निर्दोष मिलेगी और परभवमें भी इस ही निर्दोष आनन्दको भोगेगा। इस कारण सर्व प्रकारके प्रयत्न करके शुद्ध ज्ञानतत्त्वका करना परम आवश्यक है। चाहे सब कुछ न्यौछावर करना पड़े और यथार्थज्ञान मिले तब सब कुछ प्राप्त हुआ समझिये।

यह परमात्मप्रकाश ग्रन्थ है। इसमें परमात्माके प्रति प्रकाश डाला है कि परमात्मा क्या है? परमात्मा दो प्रकारसे देखा जाता है एक तो व्यक्तपरमात्मा और एक अव्यक्तपरमात्मा। जिसके दूसरे नाम हैं—एक कार्य परमात्मा और दूसरा कारणपरमात्मा। कार्यपरमात्मा तो वह कहलाता है जो साधु व्रत अंगीकार करके अपनी निर्विकल्प समाधि बनाकर कर्मोंसे रहित हो गया है, अनन्तज्ञान अनन्तसुख जिसके प्रकट हो गया है, संसारके संकटोंसे मुक्त हो गया है, उनका तो नाम है कार्य परमात्मा। वे हुए अरहंत और सिद्ध, और कारणपरमात्मा घट-घटमें विराजमान कारणपरमात्मा कहलाता है। जिस परमात्मातत्वके दर्शनसे कर्म कटते हैं, वह कारणपरमात्मा है? ऐसे इस कारण परमात्माका वर्णन इस ग्रन्थमें है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारणपरमात्माके स्वरूपको जल्दी समझनेके लिए अपने आपमें ऐसा ध्यान बनाओ कि यह मैं केवल हूं। शरीर भी साथी नहीं हो तो, कर्म भी साथ नहीं रहते और इस आत्माके स्वभावसे रागादि विकार भी नहीं रहते। तो मैं किस रूपमें हूं ऐसा ध्यान बनाओ। यदि यह शरीर भी न होता तो मैं किस प्रकार होता? ऐसा ख्याल करो। शरीर तो भिन्न है और जीव जुदा है। जीव तो समझने वाला एक पदार्थ है और शरीर रूप, रस, गंध, स्पर्शका पिण्ड है, पुद्गल है। यह शरीर अलग है, आत्मा अलग है।

कोई कहे कि केवल बातें ही ये हैं। जो शरीर है सोई मैं हूं। शरीरसे न्यारा मैं कुछ नहीं हूं। तो भाई आंखे खोलकर अपनी इन्द्रियोंको इस ओर लगाकर देखते हैं तो वहां अपना पता नहीं रहता। इन्द्रियोंको बन्द कर शरीरकी भी चेष्टा छोड़कर अन्तरमें जाननरूपसे विचार किया जाय तो मालूम होता है कि इसके अन्दर जानने वाला पदार्थ और है, शरीर और है। यदि न होता जीव कोई और तो फिर मरण क्या कहलाता है। शरीरको छोड़कर जीव चला जाय इसीके मायने हैं मरण हो गया। शरीर जुदा है, तब शरीरका जीवसे निकलना मरण है। शरीर ही जीव होता तो फिर निकलता कुछ नहीं।

जैसे तिलके दानेमें तैल रहता है और फुलकी भी रहती है। वह तैल उसमें शुरुसे है। अगर कोल्हूसे पेलने पर फुलकी रह जाती है तेल अलग हो जाता है। तो अब स्पष्ट विदित हुआ कि उस तिलके दानेमें तेल भरा हुआ है। इसी प्रकार इस शरीरके भीतर जीव है। जीव निकल गया, शरीर रह गया। अब उस जीवकी बात देखो कि जो इस शरीरसे निकलकर जायगा वह कुछ चीज है क्या? उस जीवका यह लोक समागम कुछ हित कर देगा क्या? उस अपने जीवकी बात विचारो। कुछ भी सम्बन्ध नहीं है किसी भी जीवसे।

भैया! बड़ा ही ऊंचा होनहार हो तब यह बात समझमें आती है कि मैं सत् अलग हूं, यह देह सत् अलग है। इससे मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह यथार्थता मेरी समजमें आती है तो कुछ होनहार अच्छा है। निकट भव्यता है, मोह छूटने वाला है। तो इस तरह से अपनेको ध्यानमें लावो। इस शरीरका मेरे साथ सम्बन्ध न लगा होता, ये पुण्य पाप भेदरूपकर्म मेरे साथ न होते तो मैं केवल क्या कहलाता? मैं कहलाता केवल ज्ञान और आनन्दस्वरूप। ज्ञान और आनन्दस्वरूप यह मैं इन शब्दोंसे न्यारा हूं। इस मेरेका ज्ञान और आनन्द मेरेसे सतत झरता रहता है क्योंकि ज्ञान और आनन्द मेरा स्वरूप है।

ज्ञान और आनन्द प्रकट होनेके लिए किसी दूसरी वस्तुकी पराधीनता नहीं है। ऐसा ज्ञानानन्दस्वरूप मैं आत्मा स्वभावरूप कारणपरमात्मा कहलाता हूं। सबको पार करके और अपने ही अन्तरमें सद से विराजमान जो चैतन्यस्वभावको अनुभवे वह कारणपरमात्मा है उसे स्वभावकी परखसे कर्म कटते हैं। उस स्वभावके आश्रयसे भगवान बनते हैं, सो यही कारण कहलाया जिजकी दृष्टि रखनेसे परमात्मा स्वयं प्रकट होता है वह कारण परमात्मा है। जीवने धर्मके नाम पर बहु. कुछ परिश्रम किया, स्वाध्याय किया, पूजा किया, दर्शन किया, यात्रा किया, बड़े-बड़े श्रम किये, उत्सव किया, विधान किया, तपस्यायें कीं, किन्तु अपने आपमें बसा हुआ यह कारणपरमात्मा शरण है ऐसा कभी निगाह नहीं किया और इतनी बात न समझनेके कारण कितना भी तप किया, व्रत किया, यत्न किया उससे कर्म नहीं कटे।

परोपकार करनेसे लोगोंको दान करनेसे पुण्य तो बढ़ जायगा परन्तु कर्म नहीं कटते। कर्म कटेंगे तो इस कारणस्वरूप परमात्माके दर्शनसे कटेंगे। उस कारण परमात्माको इस ग्रन्थमें बताया है। कैसा है यह परमात्मा? इसका वर्णन बहुत पहिलेसे चल रहा है और निकट समीपमें यह बताया गया है कि यह कारणपरमात्मा नित्य है। रहता है ना? यह मेरा चैतन्य स्वभाव किसी दिन आया हो और किसी दिन खत्म हो जाय ऐसा नहीं है। कारण-परमात्मा नित्य है। हम किसका ध्यान करें कि हमको कोई संदेह न रहे कि हम नियमसे मोक्षमें पहुंचनेका काम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करलें। ऐसा कुछ तत्त्व है? ऐसा तत्व अपने आपकी आत्मामें बहुत भीतर छुपा हुआ स्वभाव है। इस स्वभावकी दृष्टि हो तो सम्यग्दर्शन होता है।

जैसे हड्डीकी फोटो लेने वाला एक्सरा यंत्र होता है। उसमें आदमीको लिटा दो और हड्डीका फोटो लो तो खून चाम, मांस और मज्जा सबको एक दम छोड़कर हड्डीका फोटो ले लेता है। इसी तरह इस ज्ञानमें ऐसी शक्ति है प्रज्ञामें, भेद विज्ञानमें कि यह शरीर भी नहीं छुवेगा, शरीरके अन्दर जो कुछ भी सत् है, धातु है उसको भी नहीं ग्रहण करता है और जो ८ कर्म हैं उनका भी नहीं ज्ञान करता। विकारोंको छोड़ देता, विचारोंको छोड़ देता, सीधा नित्य चैतन्यस्वभावको ग्रहण करता है। यह अध्यात्मविद्याका मर्म है। इसकी विद्या यद्यपि कठिन नहीं है पर जिसने नहीं सुना अथवा ख्याल नहीं किया उसके लिए कठिन हो सकती है।

अन्य पदार्थविषयक ज्ञानोंकी अपेक्षा अध्यात्मज्ञान बहुत सरल है। और यह कारणपरमात्मा कैसा है कि इसमें परद्रव्योंका कोई लेप नहीं है। यह अपने स्वरूपसे है, ज्ञानमय है, आनन्द स्वभावी है, स्वयं कल्याणरूप है, इसमें क्लेशोंका नाम नहीं है। क्लेश तो जीवको परपदार्थोंकी दृष्टिसे आते हैं, परपदार्थोंकी दृष्टि न हो तो इसको कोई क्लेश नहीं है। जैसे यहां कोई मनुष्य कष्टमें नहीं है पर किसी दूसरेकी निधिको देख ले, दूसरेके रहन-सहनको देख ले तो उसके क्लेश आ जाते हैं। मेरे पास इतना क्यों न हुआ? इस बातसे क्लेश हो जाता है।

देहातमें रहने वालोंका आप विचार कर लो। जब तक देहातमें रहे तब तक थोड़ेसे साधारण भोजनसे खुश रहते थे पर वे शहरमें आकर दूसरोंका रहन-सहन मकान महल ज्यों ज्यों देखते जाते हैं त्यों त्यों उनके क्लेश बढ़ते जाते हैं। नहीं तो स्वयं अपने आपमें क्या क्लेश हैं? कुछ भी तो क्लेश नहीं है। दूसरे पदार्थोंको यह जीव न तके तो इसे कोई क्लेश नहीं है। यह कारण परमात्मा कैसा है? जो इसका स्वरूप है उसको तो कभी छोड़ता नहीं और जो इसका स्वरूप नहीं हैं उसे कभी ग्रहण नहीं कर सकता है। जलमें कमल जैसे अछूता रहता है, जलमें रहता फिर भी कमल जलसे न्यारा है। इसी प्रकार शरीरके कर्मोंके अनेक अंगोंके बीच यह आत्मा फंसा है फिर भी सबसे अछूता है। जैसे पानीमें पड़ा हुआ कमलका पत्ता हो उसे पानीमें चाहे जितनी गहराईमें ले जावो, वह पत्ता पानीके बीचमें रहकर भी पानीसे अछूता है। पत्तेके रग और स्वरूपमें पानीका प्रवेश नहीं, पानीसे उस पत्तेको निकालो ज्योंका त्यों सूखा पत्ता देख लो। कमलका पत्ता ऐसा ही होता है। पानीमें डूबा देने पर भी वह पानीसे अछूता है और पानीसे निकालो तो देख लो कि बिल्कुल अछूता है। इसी प्रकार यह आत्मा सबसे निराला स्वरूप मात्र है।

भैया! कारणपरमात्माकी चर्चा हो रही है, इसका स्वभाव जाननेका है। यह परमात्मा सबको जानता है, इस विश्वमें जो हैं उसको जानता है। जानना ही परमात्माका स्वभाव है। यह जानन जिसके पूर्ण प्रकट हो गया उसको तो कहते हैं कार्यपरमात्मा, पर हमारे जाननेकी जो शक्ति पड़ी हुई है उसको कहते हैं कारणपरमात्मा। कार्य और कारण ये दो बातें सब सिद्धान्तोंने करीब-करीब मानी है। जैसे ये जो दृश्यमान भौतिक पदार्थ हैं ये सब कहलाते हैं कार्यपरमाणु और इसमें एक-एक परमाणु है, और उन परमाणुओंमें कभी मिलकर एक दृश्य भौतिक बननेकी शक्ति है उन परमाणुवोंको कारणपरमाणु कहते हैं। और भी देख लो जहां यह माना गया है कि रामजी श्रीकृष्ण जी आदि अनेक ईश्वरके अवतार होते हैं तो वे अवतार कार्यरूप कहलाए और ईश्वर कारण रूप कहलाया। हर जगह यह दो रूपता मिलती है।

भैया अपनेको अपने आत्मामें निरखो, इसका अचिन्त्यस्वरूप है। इस लोकमें भी देखते हैं कि बड़े-बड़े पुरुषोंके बड़े-बड़े चमत्कार समझमें आते हैं। बड़े बहुत ऊंचे पहुंचे हुए हैं, बहुत बड़ा ज्ञान है। सब आत्माकी शक्ति का चमत्कार है। उनमें अभी पूरी शक्ति नहीं प्रकट हुई। पूर्णशक्ति प्रकट हो गई उसका नाम है कार्यपरमात्मा। अपने अन्तरमें विराजमान कारणपरमात्माके दर्शन करो। उसका ही भरोसा रखो अपने स्वरूपकी दृष्टिमें अपनेको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सुरक्षित व शरण समझो। जगतमें कोई दूसरा जीव, कोई भी वैभव शरण अपनेको नहीं है। मोहमें दिन गुजर रहे हैं तो वह जीवनकी बर्बादी है।

भैया! जितने क्षण मोह न रहे, अपने आपके और परमात्माके ही दर्शन रहें तो समझो जीवनके उतने क्षण सफल रहे। जीवन तो भैया तभी सफल होगा जब मोह राग द्वेष छूटेंगे। भैया अपने लड़कोंको खूब पढ़ा लो, खूब बड़ा बना लो, यह लोककी व्यवस्था है, पर उसमें यदि यह भाव है कि यह मेरा है, मैं इसको खूब ऊंचा बनादूं, मैं इसको सुखी बनादूं तो यह मोहका परिणाम है। जीव तो अनेक हैं। उन सब जीवोंमें से इन दो तीन जीवोंको ही क्यों छांटा कि ये मेरे हैं, इनको खूब सुखी रखूंगा। अरे यह कितना मोह अधकार है? जैसे सब जीव हैं वैसे ही वे घरके दो चार जीव भी हैं। घरमें बसने वाले दो चार जीवोंके लिए तन, मन, धन, सब कुछ न्यौछावर और दूसरे लोगोंके लिए उसमेंसे एक पाई नहीं है। यह बुद्धिमानी मानी जाती है जगत्के अन्दर परमार्थके बिना यह जीवन बेकार गंवाना माना जाता है।

समयका सदुपयोग तो वह कहलायेगा कि मरनेके बाद भी कुछ साथ रह सके। मरनेके बाद एक पैसा भी तो साथ नहीं जाता। घरमें जो गुजर गये हैं उन पर दृष्टिपात तो करो क्या वे साथमें कुछ ले गये हैं? उनका कितना अनुराग था कितनी श्रद्धा थी उन्होंने कितना धन कमाया पर बिल्कुल सूने चले गये हैं। उन्होंने जो कुछ पुण्य परिणाम किया होगा, ज्ञान परिणाम किया होगा वही उनके साथ गया होगा। तो यह जो पुण्य परिणाम किया वही उनकी हुई कमाई, और जो कुछ यहां छोड़ गये सब मुफ्तकी ही चीजें थीं। तो हम मरनेके बाद भी वैभव सम्पन्न कहलाएं, महान् कहलाएं ऐसी चीज क्या हो सकती है? वह है सम्यग्ज्ञान।

भैया! अपने आपमें बसी हुई अनेक परदोंके भीतर छिपी हुई उस चैतन्यशक्तिका ज्ञान करो, उसका ही सहारा लो। यदि ऐसा दृढ़ ध्यान करो तो वह अपने आपमें बसी हुई चैतन्यशक्ति ही अपनी शरण है। ऐसी दृष्टि जगे और निर्विकल्प बनकर ऐसा आत्मामें अनुभव बने तो जीवन सफल है और कारणपरमात्माके दर्शन हुए समझो। इस कारणपरमात्मामें न तो रूप है, न गंध है न स्पर्श है, न शब्द है, न जन्म है, न मरण है। इस शरीरके अन्दर जो एक चेतने वाला ज्ञानानन्द स्वभावी निर्लेप आकाशवत् अमूर्त जो आत्मा है वह अन्य कुछ नहीं है। ज्ञानानन्दभव है इसमें न क्रोध है, न मान है, न माया है, न लोभ है, न ध्यान है, न विकाशकी डिग्रियां हैं, न पुण्य, न पाप है, न हर्ष है न विवाद है।

यह कारणपरमात्मा स्वभाव दृष्टिसे देखा जा रहा है। जब हम अपने स्वभावको छोड़ देते हैं और अन्य पदार्थोंको देखते हैं तो इसमें भेद उत्पन्न हो जाता है। यदि हम निर्लेप रहें तो इसमें कोई भेद नहीं आ सकता। यह अपने आपके कारणपरमात्माकी चर्चा है। कभी इसको कारणपरमात्मा दर्शन होते हैं और उसकी भक्तिमें परिग्रहका संग छोड़ कर ध्यानावस्थामें लगता है तो वह भी जो धारण करता है यंत्र मंत्र मण्डल मुद्रा प्राणायाम इत्यादि साधन करता है ये सब भी इस कारणपरमात्मामें नहीं है।

यह कारणपरमात्मा तो सदा अपरिणामी ध्रुव चैतन्यशक्तिमात्र है। जिसके ये सब परपदार्थ और परभाव नहीं है उस परमात्मदेवको आराध्यदेव समझो। अर्थात् द्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिसे अनन्त अविनाशी। अनन्त ज्ञान आदि गुणोंके स्वभाव वाला समझो। देखो दूसरी बात, वस्तुके जाननेके दो तरीके हैं। (१) द्रव्यार्थिकनय और (२) पर्यायार्थिकनय। जो ज्ञान पर्याय पर दृष्टि देनेसे दिखता है उस ज्ञानको कहते हैं पर्यायवाला ज्ञान और जो ज्ञानपर्यायों पर दृष्टि न देकर शक्तिपर दृष्टि देनेसे दिखता है उसे कहते हैं ज्ञानस्वभाव।

कार्यपरमात्मा पर्याय है और कारणपरमात्मा द्रव्य है। दो चीजें चलती हैं (१) द्रव्य और (२) पर्याय। सदा रहने वाली चीज और उसमेंसे प्रकट होनेवाली चीज। सदा रहने वालेको द्रव्य कहते हैं और प्रकट होने वाली बातको पर्याय कहते हैं। जैसे आपकी आत्मा चैतन्यद्रव्य है और आत्मामें जो बात प्रकट हो रही है, कार्य हो रहा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है वह मायामय हो रहा है या अनन्तानन्द हो रहा है ? वे सब पर्यायें हैं। जहां सारे विश्वका ज्ञान हो गया है, किसी प्रकारकी आकुलता नहीं रही है, सदाके लिए कर्मोंसे मुक्ति हो गई है ऐसी जो दशा है वह भी पर्याय हैं। वह चेतन कार्यपरमात्मा है और कारण परमात्मा बननेकी शक्ति आत्माका चैतन्यस्वभाव यह कारणपरमात्मा है।

भैया ! अनुकूल प्रयत्न करके कारणपरमात्माकी आराधना करो। परमात्मादेवकी भक्ति कर रहे हो तो वहां भी ऐसा विचार करो कि धन्य है परमात्मदेव, यह पूर्णज्ञान और आनन्दमें तन्मय है और जैसा इसका स्वरूप है तैसा उसका स्वभाव है। द्रव्यदृष्टिमें हम और भगवान् एक है और कहते भी हैं सब लोग कि जो हम हैं सो परमात्मा हैं। जो आत्मा सो परमात्मा। परमात्मा कोई भिन्न चीज नहीं है। भिन्नता कितनी है हम आत्मावोंमें विषयकषाय विकल्प हैं और परमात्मामें विषयकषाय रागद्वेष विकल्प नहीं हैं। किन्तु जिस स्वभावसे बना हुआ वह परमात्मा है उसी स्वभावसे बने हुए हम सब आत्मा हैं। द्रव्य पृथक नहीं है किन्तु करणीका अन्तर है। जिस मार्गसे संयम साधकर आत्मसमाधि बनाकर वह परमात्मा बना है उस मार्गको यदि हम अपनाएं तो हमारा भी वही कार्य हो सकता है।

भैया ! एक ही काम है इस जिन्दगीमें। जो करता सो पार होगा। किसी बाह्यवस्तुमें मूर्छा ममत्व न रखे। सबको विनाशीक जानें, अपनेसे भिन्न समझें और अपने आपको सबसे निराला जानकर इसमें बसा हुआ जो ध्रुव चैतन्यस्वरूप है वही मैं हूं—यों इस कारण परमात्माके स्वरूपकी प्रतीति करे, बस यही एक जीवनमें करनेका काम है। यह परमात्माका प्रकाश है। परमात्मा दो प्रकारसे देखा जाता है। एक तो कार्यपरमात्मा और एक कारण-परमात्मा तो वह कहलाता है कि जिसके अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति, ये अनन्तचतुष्टय प्रकट हों और कारणपरमात्मा वह कहलाता है जो सभी जीवोंमें परमात्मा बननेकी शक्ति है अथवा जो सहजज्ञान सहजदर्शन सहजआनन्द सहजशक्तिमय है वह है कारण परमात्मा।

कारणपरमात्माका ध्यान करनेसे कार्यपरमात्मा बनता है याने अपने आपके आत्मामें जो शुद्ध जाननेकी शक्ति है उस शक्तिका ध्यान करनेसे भगवान् होना है, अपने आपमें जो कषायके विषयके विकार लगे हैं वे दूर होते हैं अपने कारणपरमात्माका ध्यान करनेसे। छहढालामें लिखा है ना कि "जहां ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वच भेद न जहां" जहां ध्यान ध्याता ध्येय एक हो जाता है. ज्ञान, ज्ञाता, और ज्ञेय एक हो जाता है ऐसा जो अपना परिणमन है उससे कर्मोंका क्षय होता है याने अपने आत्माके स्वभावका ध्यान करनेसे कर्मोंका क्षय होता है। किसीका सहारा ढूढ़ना व्यर्थ है, सब जीव अपने स्वार्थमें है, यहां सब अपने विषयकषाय वृत्तिमें हैं, खुब ससारमें रुलने वाले हैं उनका सहारा नहीं हो सकता। सच्चा सहारा तो अपने आपमें बसे हुए स्वरूपके ध्यानसे हैं। मेरा स्वरूप सबसे निराला ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण स्वतः सिद्ध है उस प्रभुका ध्यान करनेसे कर्मोंका क्षय होता है।

जब किसीमें सहजप्रभुका ध्यान किया जाय तो उसका उपाय एक ही रहा है कि सबसे पहिले तो जिह्वा इन्द्रियके विषय पर विजय करना। सब इन्द्रियोंसे कठिन इन्द्रिय रसना है स्वाद लेना, अमुक चीज बने इसका स्वाद लूं अमुक स्वाद लूं। तो पहिले जिह्वाइन्द्रिय पर विजय प्राप्त करो। जिह्वा इन्द्रियका जो स्वाद है वह इन्द्रियजन्य है, क्षणिक हैं, जो विकल्प मचानेवाला है। रसनाके स्वादसे कुछ लाभ नहीं है, आत्मामें अपने आप सहज स्वाद बसा है। अतीन्द्रिय सुखके स्वादमें रुचि करो। जिह्वा इन्द्रियके स्वादकी आसक्ति स्पर्शनेन्द्रियभोगकी ओर प्रेरणा देती है इसलिए सर्वप्रथम जिह्वाइन्द्रिय पर विजय प्राप्त करो।

मोहपर विजय प्राप्त करो। मोहविजय तो सर्वप्रथम करनेकी बात है, किन्तु साधारणजनोंकी दृष्टि रख-कर कहा जा रहा है। किसी भी परद्रव्यको अपना मत मानो। मोहको दूर करनेका उपाय क्या है ? मोहरहित शुद्ध आपका जो स्वभाव है उसका ध्यान करो। इसीसे मोह पर विजय हो सकती है। दूसरा काम है निर्मोह शुद्ध आत्म-स्वभावका ध्यान करो और मोह पर विजय प्राप्त करो। तीसरी बात है ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करो मन, वचन काय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का कृतकारित अनुमोदन, ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करना मुमुक्षुजनोंका कार्य है। ब्रह्मचर्य व्रत कैसा है कि जिसके प्रताप से वीतराग सहज समता रूप सुखरसका अनुभव होता है और अब्रह्मभाव इससे विपरीत है। इसलिए अब्रह्मभावको त्यागकर ब्रह्मभावका पालन करें यह मुमुक्षुजनोंका तीसरा कदम है। फिर चौथी बात मनके सकल्प विकल्प जगजालों पर विजय प्राप्त करना। ये मनके जो सकल्प हैं ये ही वीतराग समाधिका घात करते हैं। जीवका घात करने वाले सकल्प विकल्प ही होते हैं। यदि ये न हों तो जीव तो आनन्दमय है। उसे किसी प्रकारका क्लेश नहीं है। सो इन संकल्प विकल्पोंपर भी विजय प्राप्त करो। हे प्रभाकरभट्ट! सर्वप्रयत्न करके एक इस शुद्ध आत्माका अनुभव करो।

श्री मूलाचारजी में कहा है कि इन्द्रियोंमें सबसे प्रबल इन्द्रिय रसना इन्द्रिय है। रसना इन्द्रियपर विजय प्राप्त करना कठिन है। और ८ कर्मोंमें सबसे विकट कर्म मोहनीयकर्म है, मोहनीयकर्मके कारण श्रद्धान बिगड़ता है, चारित्र बिगड़ता है। श्रद्धान और चारित्र बिगड़ा तो जीवका सब बिगड़ा। ज्ञान और दर्शन बिगड़ता नहीं है किन्तु कम ज्यादा हुआ करता है। पर श्रद्धान् और चारित्र बिगड़ा तो संसारमें रुलना ही पड़ेगा। जिसकी श्रद्धा विपरीत हो गयी, देव, शास्त्र, गुरुको छोड़कर कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरुमें मन लग गया। राग, द्वेषोंकी परम्परा लग गयी तो फिर मोक्षमार्ग कैसे मिलेगा? इस कारण सबसे प्रबलकर्म मोहनीय कर्म है। मोहनीय ही तो इस जीवको संसारमें रोके हुए है और व्रतोंमें सबसे कठिन व्रत ब्रह्मचर्य। और गुप्तियोंमें सबसे कठिन है मनोगुप्ति।

भैया! किसीसे कहो कि एक आसनसे निश्चल बैठ जावो तो वह शरीरसे निश्चल बैठ जायगा और कहा जाय कि बचन भी न बोलो, बोलते बोलते भी बंद कर देगा। अब कहो कि मनसे कुछ न विचारो, मनकी चंचलता न करो तो यह बात कठिन है। मन तो सर्वत्र दौड़ लगाता ही रहता है। शरीरको मूर्तिकी तरह निश्चल करने पर भी, बचनोंका कार्य बंद करने पर भी मनको बद नहीं किया जा सकता है। तो सब कठिन काम है मनको बसमें करना। यदि इन चारों पर विजय नहीं होती है तो साधु होना बड़ा कठिन है।

यहां जैसे कहते हैं ना कि सब व्यसनोंका मूल जुवा है. जुवा खेलनेके आगे सब व्यसन लघु बाते हैं। इसी तरह सब पापोंका मूल एक रसनाइन्द्रिय है। रसनामें स्वादकी आसक्ति होती है. कुछ मौज मानना चाहते हैं, आराम से रहना चाहते हैं तब अनेक प्रकारके पापोंके विकार इनमें आने लगते हैं। इन इन्द्रियोंमें गड़बड़ी करने वाला मूल रसनाइन्द्रिय है। इस लिए रसनाइन्द्रियोंको अवश्य ही सर्वप्रथम बसमें करो। इस कारण साधु लोग कभी रसका त्यागकर देते हैं, कभी आहारका त्याग करते हैं, कभी मन, वचन, कायपर संयम बनाते चलते हैं। सब बिगाड़ करने वाली मूल जड़ यह एक रसनाइन्द्रिय है।

कर्म ८ होते हैं। ज्ञानावरणका काम तो ज्ञान रोकनेका है, दर्शनावरणका काम है दर्शनको रोकनेका। रोके रहते हैं पर बिगाड़ नहीं करते और वेदनीयका काम सुख दुःखका अनुभव करना है किन्तु वेदनीय स्वयं अपने अपने कारण सुख दुःखका अनुभव नहीं करता है किन्तु मोह साथमें लगा हो तो सुख और दुःखका अनुभव होता है। मोह साथ न हो तो धनका सुख नहीं मान सकते। और कैसी ही विपत्ति हो पर मोह न हो तो दुःख नहीं मान सकते तो वेदनीयमें सुख दुःख देनेकी प्रपलता मोहनीय कर्मसे है।

आयुका काम जीवको शरीरमें रोकनेका है। जीव शरीरमें रुका रहे तो बुरा नहीं है, चला जाय तो बुरा नहीं है। पर शरीरमें मोह हो तो अज्ञानकी बात है। नामकर्मका काम है शरीरकी रचना करना ऐकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय नाना प्रकारके जो जीव हैं इनके शरीरकी रचनाका कारण नामकर्म है। सो नामकर्म भी वास्तवमें दुःखी करने वाला नहीं है पर इसके साथ मोहनीय कर्म लगा हो तो शरीर भी दुःखोंका कारण बन जाता है। अब देखो गोत्रकर्म। गोत्रकर्मका यही फल है कि कोई उच्च कुलमें पैदा हो जाय और कोई नीच कुलमें पैदा हो जाय। नीच कुल और उच्च कुलमें पैदा होनेसे आत्मा दुःखी नहीं होता है किन्तु मोहवश जब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ये नीचकी कल्पना कर लेते हैं तो दुःखी होते हैं और उच्चकी कल्पना कर लेते हैं तो अपनेमें मौज मानने लगते हैं। तो गोत्रकर्म भी इन जीवोंका दुःखका कारण नहीं है पर उसके साथ जो मोह लगा हुआ है वह दुःखका कारण है। इसी तरह आठवां कर्म है अन्तराय, उसका परिणाम देखिये, अन्तरायका परिणाम यह है कि दान देना चाहते हैं पर दानका भाव बिगड़ जाता है। या शक्ति नहीं है या विघ्न हो जाता है लाभकी बात आती है तो ऐसी खुदकी चेष्टा बन जाती है कि वह लाभ खतम हो जाता है। इसी तरह भोगकी बात मिलती हो तो वहां भी विघ्न आ जाय। शरीरमें आत्मामें शक्तिका विकाश नहीं हो पाता, यह भी अन्तरायका फल है।

कैसी भी स्थिति हो, यदि मोह साथ है तो दुःख होगा और मोह साथ नहीं है तो दुःख नहीं है। इसलिए दुःखोंका कारण तो मोहनीय कर्म है। इसीसे ८ कर्मोंमें सबसे प्रबल मोहनीय कर्म माना गया है। देखो भैया! बड़े बड़े तप कर डालते हैं ऋसिसत, पर मनमें रंच भी विकार न आये यह बात बहुत कठिन है और जो विकारोंको जीत लेता है, अपने ब्रह्मचर्य व्रतको निर्बाध पाल लेता है वह सब व्रतोंका अधिकारी हो जाता है। बाह्यमें तो त्याग है ही, अब मनकी बात है। जितना बुरा दोष जो कुछ लगता है वह मनसे लगता है। किसीका मनसे कोई बुरा चिंतन कर ले चाहे वह शरीरसे, बचनेसे वैसा बुरा न कर सके लेकिन मनसे दूसरोंका बुरा सोचनेसे सोचने वालेका बुरा हो जाता है। सो प्रत्येक उपायसे अपने मनको सयत रखना साधु पुरुषका कार्य है।

यह परमात्मत्व वेद शास्त्र इन्द्रियादिकका विषय नहीं है अर्थात् यह परमात्मस्वरूप न तो वेदसे जाना जाता है, न शास्त्रोंसे जाना जाता है, न इन्द्रियादिक परद्रव्योंसे जाना जाता है किन्तु यह खुदके ज्ञानबलसे जाना जाता है। इस अपने आपमें बसे हुए परमात्मस्वरूपका जब पता पड़े तब रागद्वेष कम होते ही हैं। चिन्ता तो कहीं लगा रखी हो और परमात्माका भाव हो जानेकी आशा करें तो कैसे हो सकता है? धर्म तो करते हैं पर थोड़ा-थोड़ा मनको डुलाकर करते हैं। यदि कुछ क्षण भी मनकी पूरी सम्हाल कर सके रागद्वेषोंको तजकर केवल अपने सत्य प्रभुका आग्रह करके रह जावो तो परमात्माके दर्शन होंगे।

भैया! किन्हीं बाह्यपदार्थोंसे इस आत्माका मेल नहीं है। जिसकी चिन्ता करते हो उससे कुछ लाभ तो नहीं मिलता है। चाहे वह भाई हो, चाहे बहिन हो, चाहे माता हो, चाहे पिता हो, किसी भी अन्य पुरुषसे अपनेको लाभ नहीं मिलेगा क्योंकि वे खुद अपने स्वार्थ और विषयोंमें फंसे हुए हैं। कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यको अपना परिणमन नहीं देता है। कोई भी जीव मेरा सुधार नहीं कर सकता? और न बिगाड़ कर सकता, फिर हम दूसरेकी चिन्ता क्या करें? किस दूसरे पदार्थका चिन्तन किया जाय? किसी भी जीवसे अपनेको सिद्धि कुछ नहीं होती है। अपने ही ज्ञानसे अपनेमें देखा गया जो अपना प्रभुस्वरूप है उस प्रभुके स्वरूपका शरण लिए बिना किसी जीवका उद्धार नहीं हो सकता है। अब इस ही परमात्माके स्वरूपका प्रतिपादन करते हैं।

वेयहिं सत्थहिं इंदयहिं जो जिय मुणहुण जाइ।
णिम्मल झाणहं जो विसउ सो परम्प अणाइ ॥२३॥

यह मेरा परमात्मा अनादिकालसे है अर्थात् जबसे मैं हूं तबसे ही यह मेरा भगवान है। मेरा भगवान् याने मेरा चैतन्यस्वरूप वेदोंसे जाननेमें नहीं आता, शास्त्रोंसे जाननेमें नहीं आता, इन इन्द्रियोंसे भी जाननेमें नहीं आता। यह तो निर्मल ध्यानका विषयभूत है। रागद्वेष रहित निर्मल ध्यान बन जाय तो परमात्माका अनुभव हो सकता है। उस परमात्माके अनुभवमें केवल ज्ञान ही ज्ञानका प्रकाश दीखता है। वहां कोई परपदार्थ न इष्ट दीखता, न अनिष्ट दीखता बल्कि अपने उपयोगमें कोई पदार्थ विशेषताका अनुभव कराता हुआ आता ही नहीं है रागद्वेष-रहित समतारसका पूर्ण ध्यान बन जाय तो वहां परमात्माका ज्ञान होता है। यह परमात्मा एक ध्यानका ही विषय है। कैसा ध्यान बने? उत्कृष्ट, नित्य आनन्दका स्वाद लेता हुआ ध्यान बने, जिसमें शुद्ध आनन्दका अनुभव हो रहा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है ऐसे ध्यानका विषय ही यह परमात्मा है। वह शुद्ध आनन्द कैसे प्रकट होता है? अपने शुद्ध आत्माका सम्वेदन हो अर्थात् रागद्वेषोंको छोड़कर केवल शुद्ध ज्ञाता दृष्टा रहनेकी स्थितिका अनुभव हो तो उससे आनन्द प्रकट होता है।

इस आत्मामें किसी प्रकारका आस्रव नहीं लगा हुआ है। आस्रव ५ प्रकारके होते हैं। जैसेकि सूत्र जीने कहा है। मिथ्यात्व विरतिप्रमादकषाययोगाबंधहेतव: मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इनसे कर्म आते हैं बंधते हैं। मिथ्यात्वका अर्थ है मिथ्या परिणाम होना। अपनेसे भिन्न वस्तुवोंको अपना स्वरूप मानना सो मिथ्यात्व है। परवस्तुवोंसे अपना हित समझना मिथ्यात्व है। परवस्तुवोंमें अपनी रुचि उत्पन्न होना मिथ्यात्व है. सो सबका मूल आस्रवमिथ्यात्व है।

अविरति कोई प्रकारका व्रत न हो, न हिंसाका त्याग हो, न झूठका त्याग हो, न चोरीका त्याग हो, न कुशीलका त्याग हो, न परिग्रहका त्याग हो। ५ प्रकारके पापोंमें लगना उनसे विरक्त न होना सो अविरति नामका आस्रव है। ऐसी तीव्र कषाय होना है, जिन तिव्र कषायोंके बेगमें यह जीव संसारकी ओर ही झुका रहता है, मुक्ति-मार्गके द्वारसे दूर रहता है, ऐसा जो भाव है उसका नाम प्रमाद है, और फिर चौथा आस्रव है कषाय। क्रोध, मान, माया, लोभ हो उससे कर्म आते हैं। जिसे कर्म न चाहिए उसे कषायके भावोंका त्याग करना चाहिए। सो चौथा आस्रव है कषायभाव और ५ वां आस्रव है योग। मनका चन्चल होना, कषायकी चेष्टा करना वचनोंकी प्रकृति होना सो योग है। जब मन, वचन, कायका योग होता है तो कर्मोंका आस्रव होता है।

इन ५ प्रकारके आस्रवोंसे रहित निर्मल जो शुद्ध आत्मा है उसका सम्वेदन होनेसे एक नित्य अविनाशी आनन्द प्राप्त होता है। उस आनन्दरूप अमृत स्वादसे छका हुआ जो ज्ञानपरिणमन है उसमें ही परमात्माका स्वरूप जाना जाता है। कष्ट सह रहे हैं, चिन्तन कर रहे हैं, विकल्प मचा रहे हैं, केवल आकुलताएं बसी हैं और चाहें कि परमात्माका दर्शन न हो तो परमात्माका दर्शन नहीं हो सकता। जब शुद्ध हृदय हो, ज्ञानसे परिपूर्ण हो किसी वस्तुमें मोह न हो, अपने शुद्ध ज्ञानका प्रकाश अनुभवमें आता हो तो ऐसी स्थितिमें परमात्माका दर्शन होता है। यह परमात्मा अपने आपमें अनादि कालसे है, अपने ही घटमें विराजमान है। जहां शुद्ध चैतन्यस्वरूपको देखा गया कि परमात्माके स्वरूपका अनुभव हो जाया करता है। इसलिए हे प्रभाकर भट्ट! तुम अपने आपके स्वरूपका ध्यान करके परमात्माको जानो।

लोकमें जितने भी जीव हैं वे तीन प्रकारोंमें से किसी न किसी प्रकारके हैं। (१) बहिरात्मा (२) अन्तरात्मा (३) परमात्मा। बहिरात्मा तो उसे कहते हैं जिसकी बाहरमें आत्मीय दृष्टि है कि यह मैं हूं, यह मेरा है, शरीर मैं हूं, धन मेरा है ऐसी जिसकी दृष्टि है उसको बहिरात्मा कहते हैं और अपने अन्तरमें ज्ञानमात्र मैं हूं ऐसी जिसकी दृष्टि है उसे अन्तरात्मा कहते हैं। और अन्तरात्मा बनाकर और ज्ञान तपस्या करके कर्मोंका नाश कर देते हैं और केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्ति जिसके प्रकट हो जाती है उसे परमात्मा कहते हैं। और तीन प्रकारके आत्मामें जो ध्रुव तत्व है चैतन्यस्वरूप है उसे कहते हैं कारणपरमात्मा। तो अब चार चीजें समझना चाहिए। कारणपरमात्मा, बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। कारणपरमात्मा तो सब जीवोंमें मौजूद है, चाहे वह मिथ्यादृष्टि हो, चाहे सम्यदृष्टि हो। सब आत्माओंमें कारणपरमात्मा मौजूद है। कारणपरमात्माका अर्थ है आत्माका चैतन्यस्वभाव। जिसके चैतन्यस्वभाव पूर्णविकाशमें प्रकट हो गया है उसको कहते हैं परमात्मा। और जिसके चैतन्यस्वभावकी पहिचान तो हो गई है पर पूर्णविकसित नहीं हुआ है उसको कहते हैं ज्ञानीजीव अन्तरात्मा और जिसे चैतन्यस्वभावकी खबर नहीं है बाहर-बाहर डोल रहा है उसको कहते हैं बहिरात्मा। और जीवोंका जो स्वभाव है चैतन्यभाव है उसको कहते हैं कारण परमात्मा।

भैया! इन जीवोंने सबका तो ज्ञान किया, सबका लाभ लिया पर अपने आपमें विराजमान जो कारण परमात्मा है उसकी पहिचान नहीं की याने स्वभावकी पहिचान नहीं थी वह कितना ही वेदमें पंडित बन जाय उस

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

की पंडिताई व्यर्थ है, शास्त्रमें पंडित बन जाय उसकी पंडिताई व्यर्थ है और कितना ही बड़ा तप करले तो भी वह तप करना व्यर्थ है, अपने आपको भीतर जो एक ज्ञानस्वभाव मौजूद है, जिसका काम केवल जानन है उस ज्ञान-स्वभावको न जान सके तो धर्मके नाम पर कितना ही कुछ उत्सव मनावो पर वह व्यर्थ। भैया ! कुछ मोह ऐसा पड़ा हुआ है कि धर्मके नाम पर भी और और बातोंमें बहुत खर्च कर डालते हैं और स्वयको ज्ञान मिले, शांति मिले ऐसा उपाय नहीं करते हैं।

जैसे मान लो विधान ही किया तो विधानमें ५ हजार दस हजारका खर्चा किया। इतनेमें ही एक विद्वान अच्छा सा रख लेते तो ज्ञान मिलता। यदि कुछ ज्ञान मिलता तो उससे लाभ था। भक्ति तो करो, किन्तु ज्ञानका अनादर मत करो। वैसे यह भी भक्तिका काम है मगर ज्ञानका काम भक्तिके कामसे बड़ा है क्योंकि ज्ञानरहित भक्ति में अपना श्रम अपना धन खर्च करनेके बाद भी कुछ साथमें न रहा, पर ज्ञानसाधनासे गांठमें कुछ रहा, जिसके उप-योगसे वह किसी भी समय सुखी हो सकता है। इसने अपने आपके अन्तरमें बसे हुए कारणपरमात्माका परिचय नहीं किया तो वेद शास्त्र तप ये सब क्लेश ही रूप हैं। इनसे व्यग्रता ही बढ़ती है इसलिए सब उपाय करके एक अपने आपके ज्ञानस्वभावका परिचय कर लो।

भैया ! अपने आपमें बसे हुए प्रभुके दर्शनके लिए एक सरल काम हैं। करते बने तो आज करके देख लो। उसमें बहुत पढ़ने लिखनेकी भी आवश्यकता नहीं है। जो पुरुष यह समझते हैं कि धन वैभव मेरा कुछ नहीं है, ये न्यारी चीजें हैं। इनको छोड़कर जाना पड़ेगा। यह शरीर भी मेरा कुछ नहीं है। इसको भी छोड़कर जाना होगा। ससारमें जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं वे सब असार है, विनाशीक हैं, इसमें आत्माका हित नहीं है। इतनी बात जिसने समझ लिया हो, कैसी भी स्थिति हो, हठ करके बैठ जावो कि मुझे तो अपने ज्ञानमें किसी दूसरे पदार्थको सोचना ही नहीं है। किसी पदार्थका हमें ख्याल नहीं करना है। अगर स्त्री ख्यालमें आ गयी, हट जावो, तुम मेरी बर्बादीके ही कारण हो। धन वैभवका ख्याल आ गया, हठ जावो, मैं तुम्हारा ख्याल नहीं करता क्योंकि तुमसे मेरा पूरा नहीं पड़ेगा। ऐसे सब पदार्थोंका ख्याल छोड़कर हट जावो, तब हटते-हटते किसी समय ऐसा विश्राम अपने आत्माके छूनेसे मिलेगा कि खुद जान जावोगे कि यह प्रभुका स्वरूप है, यह है कारणपरमात्मा।

वह कारण परमात्मा सबके अन्दर मौजूद है। जो दर्शन कर लेता है वह कर्मोंको नष्ट कर लेता है और जो अपने आपके परमात्मस्वभावको नहीं जान पाता वह कर्मोंका विनाश नहीं कर पाता है। इसलिए ये चार चीजें जाननेकी हैं। वेदान्तने भी चार चीजें कहीं हैं। जिसमें यह कहा कि ब्रह्मके चार पाद हैं। एक तो जागृत दशा, दूसरी सुप्तदशा, तीसरी अंतः प्रज्ञ दशा और चौथीका नाम नहीं कहा। चौथीको तुरीयपाद कहते हैं। जागृत दशा उसको कहते हैं कि जहां व्यवहार है, व्यवहारमें लग रहे हैं। सुप्तदशा उसे कहते हैं जहां व्यवहार सोया हुआ हो अर्थात् ज्ञानदृष्टि है। अंतःप्रज्ञ दशा उसे कहते हैं कि जहां परमात्माकी दशा बन गयी है। चौथा है तुरीयपाद, जो सबमें बसा हुआ है।

ज्ञानी समझता है कि आत्माके जाननेसे क्लेश नहीं आते हैं, आत्माका स्वभाव ज्ञान है, आनन्द है। ज्ञान और आनन्दमात्रके अनुभव द्वारसे आत्माका परिचय होनेसे कर्म दूर होते हैं। धर्मका पालन सही रूपमें तब बनता है जब मोह रंच भी न हो। अगर मोह है तो धर्म रंच भी नहीं होता। कहीं ऐसा नहीं होता कि हाथ जोड़ने से कर्म डर जाते हों और वे भाग जाते हों। किसीने पैदल चलकर हजारों मीलकी यात्रा कर ली है और अपने ज्ञानप्रकाश का अवलोकन नहीं किया है तो इससे कर्मोंका क्षय नहीं होता है। जिसने अपने आपको समझ लिया कि मैं ज्ञानमात्र हूं। इससे आगे मेरा कहीं कुछ नहीं है ज्ञानप्रकाशको ही मैं करने वाला हूं और ज्ञानप्रकाशको ही मैं भोगने वाला हूं। इस ज्ञानप्रकाशके अतिरिक्त न मेरे कुछ आधीन हैं और न मैं कुछ किसीमें करता हूं। ऐसा जिसका विश्वास है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसके कर्मोंकी बात नहीं आती है। तो इस गाथामें प्रयोजनभूत बात यह बताई है कि अपना जो निजी शुद्ध आत्मा है वह ही उपादेय है और बाकी सब हेय चीजें हैं।

यह आत्मा वेदका विषय नहीं है किन्तु समाधिका विषय है। परमात्माकी भेंट आखोंसे न होगी, किसी प्रकृत्तिसे न होगी किन्तु जब उपाय अभी कहा था कि सब परवस्तुवोंको हटाओ। हटाते हटाते अपने आप आत्मामें समाधिका परिणाम पैदा होगा और वह विश्रामका परिणाम एक सेकेन्डको भी होगा, मगर उतने समयमें जो आनन्द मिलेगा उसमें इतनी शक्ति है कि अनगिनते भवोंके बांधे हुए कर्म खिर जाते हैं, कर्म कष्टोंसे नहीं खिरते। कोई कहे कि पर्वत पर गर्मीके दिनोंमें तपस्या करनेसे कर्म खिरें सो नहीं, किन्तु तपस्यामें लगे हुए भीतर ही भीतर ज्ञानस्वभाव में प्रवेश हो रहा हो, उससे जो आनन्द आ रहा है उस आनन्दसे ही कर्मोंका क्षय होगा। ऊपरी कितने ही क्लेश हों उनसे कर्म नहीं हटते। अब जो परमात्मा वेदका, शास्त्रका, इन्द्रियोंका विषय नहीं है किन्तु समाधिका विषय है, समता परिणाम, का स्वरूपके अनुभवका विषय है उस परमात्माके स्वरूपको व्यक्त करते हैं।

केवल दंसणणाणमउ केवल सुक्खसहाउ।
केवल वीरिउ सो मुणहि जो जि परावरु भाउ॥२४॥

जो केवल हैं, असहाय है, खालिस है याने जिसके साथ उपाधि नहीं लगी है, शरीर आदिका सम्बन्ध नहीं है ऐसा जो ज्ञानदर्शन करि रचा गया परमात्मा है वह इस कारणपरमात्माका व्यक्तस्वरूप है। जैसे पत्थरकी मूर्ति पत्थरसे ही निकलती है, बाहरसे नहीं निकलती है। इसी तरह हम आपका परमात्मतत्व हम आपसे ही निकलेगा कोई बाहरकी चीजसे नहीं बनेगा। यह आत्मा जब मोह करता है तो उसका नाम मोही है यही आत्मा जब ज्ञानमें लगता है तो उसका नाम ज्ञानी है, यही आत्मा जब राग द्वेषोंसे छूट जाता है तो उसका नाम वीतराग है। यही आत्मा जब पूर्ण विकाश पा लेता है तो उसका नाम परमात्मा है।

भैया! अपनी शक्तिका विश्वास हो जाय तो सबसे बड़ा प्रथम पुरुषार्थ यही है। धन वैभव किसीको कम मिलता है, किसीको ज्यादा मिलता है तो इससे किस बातका अन्तर है? जिसका पुण्य अधिक है उसे धन वैभव ज्यादा मिलता है और जिसका पुण्य कम है उसे धन वैभव कम मिलता है. जिसकी धर्ममें रुचिके साथ साथ शुभराग था, उसे बड़ा पुण्य मिलता है, छोटा मोटा पुण्य तो भूखोंको रोटी दे देने आदिसे मिलता है। बहुत बड़ा पुण्य धर्म साधनोंके बिना नहीं मिलता है। धर्म माने आत्माका स्वभाव मेरे आत्माका स्वभाव सब परवस्तुवोंसे निराला केवल प्रतिभास स्वरूप है। ऐसी दृष्टि जगे बिना धर्म नहीं होता है। धर्मदर्शी ज्ञानी पुरुषके ही सातिशय पुण्य होता है। सातिशय पुण्य चक्रवर्ती और तीर्थंकर इत्यादिके फलित होता है थोड़ा बहुत पुण्य तो मात्र पुण्यकार्योंसे हो जाता है।

भैया मोक्षमार्गमें लग सके ऐसी शक्ति तो धर्ममें ही है। लौकिक सुख तो पुण्यके प्रतापसे होते हैं किन्तु अलौकिक सुख धर्मके प्रतापसे प्राप्त होता है। यहां अरहंत और सिद्ध भगवानका स्वरूप बतला रहे हैं। हम जिनकी पूजा करते हैं उनको ही न जानें तो वह हमारी भक्ति क्या कहलायेगी? जिसकी हम पूजा करते उस प्रभुका स्वरूप कैसा है? यह जानना प्रथम आवश्यक है। जिसकी पूजा रोज करते हो उसका स्वरूप नहीं जाना तो उससे तो यह अच्छा है कि दो महीने तक चाहे पूजा करनेका अवसर न रहो, मगर भगवान् क्या है? उसका क्या स्वरूप है. यह जाननेमें ही समय लगा दो। यदि प्रभुकी पूजा करते है और प्रभुके स्वरूपको न समझा और पूजाका अर्थ न समझा तो उस पूजासे क्या लाभ? पहिले प्रभुका स्वरूप समझो, फिर प्रभुकी पूजा कर लो, भक्ति करलो, प्रभुका स्वरूप जाने बिना प्रभुकी पूजा कैसी?

आत्मामें चार गुण हैं—(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) आनन्द (४) सुख ये सब जीवोंके अन्दर पाये जाते हैं। किसीके ज्ञान कम है किसीके ज्यादा है, किसीको अच्छा है किसीको अच्छा नहीं है, किसीको सुख थोड़ा है किसीको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बहुत है, किसीकी शक्ति कम है, किसीकी ज्यादा है मगर सबमें ये चार चीजें मौजूद हैं। जैसे ये पुद्गल है तो इनमें रूप, रस, गंध, स्पर्श ये चारों चीजें जरूर हैं। चाहे किसी पुद्गलमें रूप न मालूम पड़े और रस वगैरह ही मालूम हों, किसीमें कुछ न मालूम पड़े मगर हैं सबमें ये चारों चीजें। जैसे हवा है तो वह भी एक पुद्गल है। हवाका रूप किसीने नहीं जाना, हवा तो केवल स्पर्शसे ही मालूम पड़ती है मगर उसमें भी ये चारों चीजें हैं। हवा में तो केवल स्पर्श मालूम पड़ा, इसमें तीन चीजें नहीं मालूम पड़ीं, फिर भी इसमें चारों चीजें हैं। और जैसे आग है। क्या किसीने आगके रसको मालूम किया कि आग मीठी है या खट्टी है। मगर उसमें भी रूप है तो रस जरूर है। तो पुद्गलमें चार गुण नियमसे हुआ करते हैं।

इसी प्रकार आत्मामें ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति ये चार गुण जरूर हुआ करते हैं। भगवान्के ये चार गुण पूरे विकसित होते हैं। जिसके ये पूरे प्रकट होते हैं उसको परमात्मा कहते हैं। भगवान्का ज्ञान पूर्ण प्रकट है. जिस ज्ञानके द्वारा तीन लोक तीनकालके सब पदार्थ ज्ञात होते हैं। कुछ कुछ ज्ञान तो हम आपमें है मगर भगवान्को पूर्ण ज्ञान है और शुद्धज्ञान है और हमारा अपूर्ण ज्ञान है और अशुद्ध ज्ञान है। हम ऐसा जाना करते हैं, यह घर मेरा है, यह वैभव मेरा है, ये भाई मेरे हैं? यह हमारा अशुद्ध ज्ञान है। भगवान् शुद्ध जाना करते हैं, भगवान् तो जैसा है तैसा जाना करते हैं। वह नहीं जाना करता कि यह इनका मेरा घर है, यह उनका घर है। भगवान् तीन लोक तीन कालके सब पदार्थोंको जानता है और शुद्ध जानता है।

भगवान् निश्चयतः ज्ञेयाकार परिणत निज आत्माको जानता है। ऐसे ज्ञाता निज आत्माको देख लेता है यह उनका अनन्त दर्शन है और सुख कितना है? तीन लोकके जितने जीव हैं, जितने देव हैं, जितने इन्द्र हैं, जितने धनी हैं, जितने राजामहाराजा आदि हैं उन सबको मिला करके उनका जितना सुख है उससे भी अनन्तगुणा सुख इस प्रभुको है। और अनन्तगुणेकी बात क्या उनका सुख तो इन सुखोंसे विलक्षण अलौकिक सुख है। यह प्रभु निरंतर अनन्तानन्द स्वभावको बर्तता रहता है। यह सब प्रताप है मोह रागद्वेष हटनेका। मोह रागद्वेषोंपर विजय किया, यह तो उनकी उत्कृष्ट स्थिति है इसके ही परिणाममें भगवान् अनन्त सुखी हैं।

प्रभुमें अनंतचतुष्टयमें चौथा गुण है अनन्तल, जिसके यह अनन्त चतुष्टय प्रकट होता है उस आत्माको तुम परमात्मा समझो। जो परमात्मा कैसा है कि परात्पर है याने गुरु तो हुए अरहंत परमेष्ठी और उससे उत्कृष्ट हैं सिद्ध भगवान् और उन परात्परोंमें भी परव्यक्त सहजसिद्ध कारणपरमात्मा है। अरहंत भगवान्के ये चार गुण प्रकट हो गये। यद्यपि अरहंत देवके शरीर है पर औदारिक है, स्फटिक मणिके समान व, पर शरीर सुख दुःखकी अनुभूतियोंका निमित्त भी नहीं है। सिद्ध भगवान्के शरीर नहीं रहा चार आघातिया कर्म भी नहीं रहे। ये भगवान् शरीरादिसे अत्यन्त जुदे हैं केवल आत्मा ही आत्मा रह गये। वे सिद्ध भगवान् हैं।

परमात्मामें अरहंत भी आगए और सिद्ध भी आगए और अन्तरात्मामें चौथे गुणस्थानसे लेकर १२वें गुणस्थान तकके ज्ञानी जीव आ गए और बहिरात्मामें तीन गुणस्थान आते हैं उनमें भी पहिले मिथ्यात्व गुणस्थानके जीव तो पूर्णबहिरात्मा हैं और दूसरे तीसरे गुणस्थान वाले जीव तारतम्यरूपसे बहिरात्मा हैं। इन सभी जीवोंमें जो शुद्ध आत्मपदार्थ वह है कारणपरमात्मा। स्वभावदृष्टिसे वह आत्मस्वभाव देखा जाय तो वह हममें भी है, ज्ञानीमें भी है। भगवानमें भी है। वह है कारणपरमात्मा सहजसिद्ध आत्मा। उस परमात्माका ग्रहण हो तो कर्मोंका क्षय होगा औरधर्मका काम भी होगा। परमात्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दसे सम्पन्न है, जिसको न वेदोंसे; न शास्त्रोंसे, न इन्द्रियोंसे जाना जा सकता है किन्तु केवल अपने निर्विकल्प समता परिणाम वाले ज्ञानसे ही जान सकते हैं। ऐसा परमात्मा रहता कहां है? इस प्रश्नका उत्तर इस दोहामें दे रहे हैं—

एयहिं जुत्तउ लक्खणहिं जो परु णिक्कलु देउ।
सो तहिं णिवसइ परमपइ जो तइ लोयंह झेउ ॥२५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमात्मा त्रिभुवन वंदित है ? तीन लोकके जितने जीव हैं वे सब परमात्माकी वंदना करलें यह बात तो असम्भव है ना ? असज्ञी जीवोंमें तो वंदना करनेकी योग्यता ही नहीं है। इन संज्ञी जीवोंमें कितने मनुष्य हैं ? कितनेके धर्मबुद्धि है ? जिसके धर्मबुद्धि नहीं है वे तो वंदना करनेके भाव ही क्या करेंगे ? कितने मनुष्य बच जाते हैं, कितने नारकी बच गये, कितने देव बच गए। थोड़ेसे मनुष्य, थोड़ेसे इन्द्रादि जीव और थोड़ेसे मुख्य जीव ये ही वंदना कर पाते हैं। केवली भगवान्को कहते हैं। इनकी तीन लोक वंदना करते हैं। तीन लोकके कितने जीव हैं वे सब भगवान्के चरणोंमें नमस्कार करते हैं। यह कैसे ठीक हो ? इसका उत्तर सुनिये।

गतियां चार हैं, अथवा तीन लोक हैं (१) ऊर्ध्वलोक (२) मध्यलोक और (३) पाताल लोक। ऊर्ध्वलोक मध्यलोक व पाताल लोकका इन्द्र जब भगवान्के चरणोंमें झुक गया तो इसका अर्थ यह है कि तीन तीन लोकके सब प्राणी झुक गये और उन इन्द्रियोंके अतिरिक्त अन्य अन्य भी धर्मप्रेमी आत्माएं हैं जो परमात्माके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। जो त्रिभुनवंदित है, अनन्तचतुष्टयके स्वामी हैं, जो जो निर्विकल्प समाधिमें हो जाना जा सकता है ऐसा निश्चल निरंजन परमात्मदेव रहता कहां है ? इस बातको इस दोहेमें कहा जा रहा है।

वह परमात्मा उत्कृष्ट स्वभाव वाला है। आत्माका जो गुण है उस गुणका पूर्ण विकाश परमात्मदेवके हैं क्योंकि गुणोंके बाधक हैं रागादिक विकार और निमित्त दृष्टिमें हैं द्रव्य कर्म। साक्षात् बाधक तो हैं रागादिक विकार। जब रागादि विकारोंकी पर्यायें रहती हैं वहां गुणके पूर्णविकाशकी पर्याय नहीं चलतीं। इसलिए साक्षात् बाधक रागद्वेष विकार हैं। रागद्वेष विकार आत्मामें स्वरसत: नहीं उत्पन्न होते हैं। आत्माकी परिणतिसे, किन्तु पर-उपाधिका सम्बन्ध पाकर होते हैं। इस कारण निमित्तरूपसे बाधक द्रव्यकर्म हैं। जिसके द्रव्यकर्म भी नहीं, ५ प्रकार का शरीर भी नहीं, रागादिक भावकर्म भी नहीं, छुटपुट ज्ञान भी नहीं, क्षयोपसमका भी अभाव हो गया ऐसा सिद्धदेव परमात्मदेव उत्कृष्ट स्वभाव वाला है।

परमात्मा कहां रहता है ? इसे निश्चयदृष्टिसे सोचो कि जीव जितने हैं वे सब परिणमते रहते हैं। सिद्ध भगवान भी निश्चयदृष्टिसे जैसा शुद्ध वह है वह अपने स्वरूपमें रहता है। जैसे कोई आपसे पूछे कि आप कहां रहते हैं साहब ? तो आप यह कहेंगे साहब अपने स्वरूपमें रहते हैं ? कोई पूछे कि आप कहांसे आ रहे हैं ? कहां जावोगे ? तो कहोगे पता नहीं कहां जायेंगे ? जीवका स्वरूप अपने आपमें है और वह अपने स्वरूपमें ही निवास करता आया है। इतना ही तो अन्तर हुआ कि हम अशुद्धावस्थामें है और परमपदमें है। प्रभु उत्कृष्ट अवस्थामें है, लेकिन है तो अपने ही स्वरूपमें। मोक्ष कहां है ? आत्माकी जो सिद्ध अवस्था है वही मोक्ष है। प्रभु मोक्षमें रहता है, इसका अर्थ है कि परमात्मा अपने परिपूर्ण ज्ञानानन्द विकासमें वर्तता रहता है इसका ही नाम है मोक्षमें रहना।

अब सिद्धोंका निवास व्यवहारदृष्टिसे देखो। जितने भी जीव कर्मयुक्त हुए हैं वे सब लोकके अग्रभागमें रहते हैं। क्योंकि अंजन मुक्त होने पर, जीवका स्वभाव ऊर्ध्वगमन है ना, इस कारण ऊपर चला जाता है लोकके बाहर आकाशके सिवाय किसी द्रव्यका अस्तित्व नहीं है। अत: लोकके अग्रभागमें प्रभु ठहरते हैं। लोकाग्रभावमें भी कितनी जगह है लोकका अग्रभाग एक राजू लम्बा चौड़ा है, उसमें भी कितनी जगहमें मुक्तजीव रहते हैं तो सीधी बात है जो जिस जगहसे मुक्त हुआ है उसका सीधा लोकके अग्रभागमें निवास हो जाता है। अब यह देख लो कि मुक्ति कितनी जगहसे हुआ करती है ? फिर उसके सीधमें ऊपर सिद्धदेवका निवास समझलो। ढाई द्वीपके अन्दर ही मुक्ति होती है इसलिए ढाई द्वीपमें जितना विस्तार है उतना ही मोक्ष स्थान है।

वह परमात्मदेव निश्चयसे कहां रहता है ? अपने शुद्धज्ञानानन्दके परिपूर्ण विकासमें रहता है अपने स्वरूप में रहता है, और व्यवहारसे कहां रहता है ? तो ढाई द्वीपके विस्तार प्रमाण जो लोकका अग्रभाग हैं वहां रहता है। वहां रहना व्यवहारसे क्यों बताया कि शुद्ध जीव और है और स्थान और पदार्थ है। भिन्न-भिन्न पदार्थोंका सम्बन्ध

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

करना, वर्णन करना, कुछ सम्बन्ध बताना वह सब व्यवहार कहलाता है। एक ही पदार्थमें से एक पदार्थको बताना सो तो निश्चयकी पद्धति है और भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें किसी भी प्रकारका सम्बन्ध बताना सो व्यवहारकी पद्धति है।

क्या मुक्तजीव लोकके अग्रभागमें नहीं रहते हैं? रहते हैं, झूठ नहीं है किन्तु एक पदार्थके स्वरूपकी दृष्टि से चिगकर दो पदार्थोंके सम्बन्धमें कुछ दृष्टिकी जा रही है कि प्रभु किस जगह रहता है? इसका जो उत्तर हुआ वह व्यवहारपद्धतिसे हुआ। और प्रभु कहां रहता है? प्रभु अपने शुद्धस्वरूपमें रहता है। यह निश्चय पद्धतिका उत्तर हो गया। इस वर्णनसे हमें शिक्षा क्या मिलती है? जितने भी वर्णन किए जाते हैं उन वर्णनोंमें आत्महितकी बात यदि मिलती है तब तो वह वर्णन शिक्षाकी बात हुई, हमारे हितका उपदेश हुआ। यदि परमात्माका वर्णन करके भी हम अपने आत्माके लिए लाभकी कोई बात न समझ पायें तो चाहे विज्ञानशालामें जाकर और चीजोंकी निगरानी करलें, चाहे सिद्धस्वरूपकी करलें तो कोई लाभ नहीं हो पाता है। सिद्धस्वरूपके वर्णनसे कोई लाभ न उठा पाया। इसलिए सब वर्णनोंमें यदि सम्यग्ज्ञानका सम्बंध है तो उससे आत्महितका शिक्षा मिलती है? यह शिक्षा मिलती है कि जिस कारणपरमात्माके ज्ञानसे ऐसा उत्कृष्ट विकास रूप परमानंदमय कार्यपरमात्मत्व प्रकट होता है। उस कारण-परमात्माकी दृष्टि उपादेय है।

यह तो है प्रभुके स्वरूपकी बात। तीन लोकके द्वीप समुद्रका वर्णन करके भी आत्महितकी शिक्षा ग्रहण करो और जगतमें अनेक प्रकरके जीवोंकी अवगाहना देखकर आत्महितकी शिक्षा लो। अभी रास्तेमें जाते जाते भी यदि कोई पीड़ित सूकर मिल जाता है, कोई भाला वगैरहसे बेधा हुआ, काटा हुआ, खून निकल हुआ तो आपके मन में दयाका भाव आता है वह दया सूकर पर नहीं की जा रही है किन्तु यह समझमें आया कि जैसा सूकरका अथवा इस जीवका स्वरूप है वैसा ही हमारा स्वरूप है। जैसे इसको वेदना दी जा रही है वैसे दो मुझे वेदना दी जा सकती है तो इस तुलनाका भाव आने पर आपके दया उत्पन्न होती है। कुछ सम्बंध मिला ना?

जीवकी आगममें अवगाहना बताई है। स्वयम्भूरमण समुद्रमें उत्पन्न हुए महामत्स्यको लो वह एक हजार योजन लम्बा, पांच सौ योजन चौड़ा और ढाइ सौ योजन मोटा है। तो इस वर्णनसे अपने हितके लिए क्या बात मालूम पड़ी कि अहो जिस कारण परमात्माके ज्ञानके बिना जीवके अन्य अन्य देहोंकी स्थिति हुआ करती है वह कारणपरमात्मा उपादेय है। उसका ज्ञान हो तो इन सब अवगाहना वाले देहोंमें निवास करना छूट सकता है। इतनी बात वर्णनसे समझमें आसके, मनमें उतर सके तो वह वर्णन धर्मप्रद हो गया।

तीनों लोक कितने बड़े हैं। ३४३ घन राजूप्रमाण हैं। कैसी कैसी रचनाए हैं, सब ज्ञान कर लिया। इस ज्ञानसे कुछ शिक्षा भी मिली? हां मिली। देखा निजस्वरूपके बोधके बिना जीवका ३४३ घन राजू प्रमाण लोकमें प्रलोक प्रदेशों पर अनन्त बार जन्म हुआ है, मरण हुआ है। यदि अपनेमें शुद्ध सहजस्वरूपकी अनुभूति हो जाय तो यह जन्म मरणसे छूट सकता है। जो इतनी शिक्षा यदि उस वर्णनको सुनकर प्राप्त कर पाते हैं उनका जन्म सफल है। प्रभुस्वरूपका हम ध्यान करते हैं, वर्णन करते हैं, चिंतन करते हैं उससे हमें यह शिक्षा लेना है कि जैसा परमात्माका स्वरूप है वैसा ही हम सब आत्मद्रव्योंका भी स्वरूप है यह बात समझमें आये। मुक्त जीवोंके सदृश द्रव्यत: शुद्ध आत्मा है और वह उपादेय है। यह परमात्माके स्वरूपको जानकर हमें भाव ग्रहण करना चाहिए। जैसे बिल्कुल निर्मल जल और कीचड़से मिला हुआ गंदा जलकी बात सोचें। हम आपसे कहें कि जरा निर्मल जलके स्वरूपका वर्णन करो और गंदे जलके स्वभावका वर्णन करो तो आप निर्मल जल और जलके स्वभावका वर्णन एकसा करेंगे। गन्दे जलमें रहने वाले जलके स्वभावका वर्णन और स्वच्छ गिलासमें रखें स्वच्छ जलका वर्णन दोनोंका एक समान वर्णन होगा।

हां, गंदे जलकी पर्यायकी दशाका वर्णन भिन्न होगा मगर गंदे जलके स्वभावका वर्णन और निर्मल जलके स्वभावका वर्णन एक सा होगा। इसी प्रकार संसारी जीवकी दशाका वर्णन भिन्न होगा और परमात्मस्वरूपका वर्णन

http://sahjanandvarnishastra.org/

भिन्न होगा। पर परमात्माके स्वरूपका वर्णन और जीवके स्वभावका वर्णन एक समान होगा। उसमें रंच भी अन्तर न आयगा क्योंकि जो परमात्मा होता है वह शुद्ध आत्मस्वभावका विकास ही तो है। सो प्रभुके वर्णनके साथ-साथ अपनी शक्ति अपने स्वभावकी श्रद्धा भी जगती जाय, श्रद्धा बनी रहे तो ऐसी स्थितिमें कभी ऐसा अवसर आ सकता है कि प्रभु और भक्तका यह भेद भी मिट सकता है और भक्त भी शुद्ध चैतन्य प्रकाशमय रह जायगा।

जिस क्षण उपयोगका विषय त्रैकालिक शुद्ध चैतन्यप्रकाश रह जाता है उस क्षण जो सहज आनन्द उत्पन्न होता है वही आत्मानुभवकी स्थिति है। और उस आनन्दके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होता है, इसी प्रकार तीन प्रकार की आत्मावोंका कथन इन वर्णनोंमें किया गया है, और सब वर्णनोंमें यह बात बतायी गयी है कि मुक्तिको प्राप्त शुद्ध जीवके स्वरूपकी तरह द्रव्यत: समस्त संसारी जीव हैं, यही समस्त जीवोंका स्वभाव है। अब इसके बाद कुछ, दोहोंमें यह बात बतावेंगे कि जैसा व्यक्तिरूप परमात्मा मुक्तिमें ठहरता है वैसा ही शुद्ध निश्चयसे शक्तिरूपसे यह आत्मा ठहरता है।

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहिं मं करि भेउ ॥२६॥

जितने भी मनुष्य हैं, प्राणी हैं वे सब दो बातोंको लिए हुए रहते ही हैं। मैं क्या हूं और मुझे क्या बनना है? बच्चोंमें भी ये दो बातें मिलेंगी। मैं क्या हूं और मुझे क्या बनना है? मैं सेठका कुंवर हूं और मुझे करोड़पति बनना है। कोई सोचता है कि मैं पंडितका लड़का हूं और मुझे पंडित बनना है। मैं क्या हूं और क्या बनना है ये दो बातें सबके चित्तमें बैठी हुई हैं।

अभी रास्तेमें एक नवयुवक बोलता था कि साहब मेरा तो ऐसा दिल है कि गृहस्थीमें चित्त नहीं लगता है। मेरी तो ऐसी इच्छा है कि मैं समाजमें कोई ऐसा काम कर जाऊं कि मेरा नाम हो जाय। हालांकि शुद्ध भावसे कहा पर बेचारेको कहनेकी अध्यात्मपद्धति न मालुम थी। अध्यात्मपद्धतिके जानने वाले तो उसके बचनोंकी निन्दा करेंगे। इसके अन्दर यों चाह है कि मेरा नाम हो जाय। उसका प्रयोजन विशुद्ध था कि गृहस्थीके झझटोंमें नहीं रहना चाहता हूं और समाजका कोई अच्छा कार्य करना चाहता हूं।

भैया! जैसे-जैसे ज्ञानका विकास होता जाता है तैसे-तैसे अपनी वृत्तियोंकी गल्तियां मालूम होती जाती हैं। शुरुमें वहां मैं यों करुं, भक्ति करुं, ज्ञानी बनूं, सब प्रकारसे अपने धर्मको करना समझते हैं। कुछ और शुद्ध जानने पर यह काम करना है तो भी ध्यानमें यह रखना है कि जीवके जाननेका प्रयोजनभूत यथार्थज्ञान होना चाहिए। उस ज्ञानसे ही परमात्म विकास है और उससे ही स्वयंकी सिद्धि है। सो अब ज्ञानको बढ़ाओ ज्ञानके बढ़ाने पर भी जाननकी आवश्यक क्रियायें रह जाती हैं सो फिर और ऊंचे चलकर यह सोचना है कि जो जो यत्न मैं करता हूं वह ज्ञानके लिए करता हूं, धर्मके लिए करता हूं, इसके अतिरिक्त जितनी भी चेष्टाएं हैं वे सब अज्ञानकी चेष्टाएं हैं। ज्ञानकी चेष्टा तो केवल शुद्ध ज्ञानका अवलोकन होता है। जहां मात्र जानन रहता है वह है ज्ञानकी स्थिति। ये तो सब मंद कषायकी चेष्टाएं हैं। कषाय तो ज्ञानका स्वरूप नहीं है। तो जैसे जैसे ज्ञान वृत्ति जगती जाती है तैसे-तैसे अपने किए हुए यत्न अपनेको गलत मालूम देते जाते हैं। कब तक ये गलत मालूम होते रहेंगे? जब तक शुद्ध ज्ञानमें पूर्ण लीनता नहीं हो जाती है।

इस दोहेमें कह रहे हैं कि जैसा केवल ज्ञानानन्द व्यक्तरूप कार्यसमयसार है वैसा ही यह शक्तरूप कारण-समयसार है। कार्यपरमात्मा, कार्यसमयसार, अरहंत सिद्ध ये सब एक ही अर्थको बताने वाले शब्द हैं। जो कार्य समयसार निर्मल हैं, भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे रहित हैं, ज्ञानमय है, केवलज्ञानसे रचा हुआ है, सिद्धभगवान मुक्तिमें ठहरता है, परमआराध्य है ऐसा ही शुद्ध बुद्ध एकस्वभाव शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे यह आत्मा देहमें बसता है।

जैन शासनको पाकर आत्मलाभ कर लीजिये। इतनी बात सबके मनमें रहना चाहिए कि मेरा स्वरूप ज्ञानकर रचा हुआ है और इस ज्ञानमय मुझ आत्माका लोकमें परमाणुमात्र भी कुछ नहीं है। यह मैं आत्मस्वभावसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आनन्द करके पूर्ण हूं, यह बात श्रद्धामें रहे तो आपके धर्मके अर्थ किए हुऐ श्रमसे लाभ है, और अगर धर्म इस लिए किया जा रहा हो कि धर्ममें लगे रहें, घर बार अच्छा बनेगा, लड़के खुश रहेंगे, कुटुम्ब परिवार सब मौजमें रहेंगे, केवल इतनी बातोंके लिए धर्मका रूपक बना रहे तो उससे आत्माको लाभ नहीं मिलेगा।

जिन-जिन पदार्थोंका आपको समागम मिला है उनमेंसे कोई भी पदार्थ ऐसा बतलाओ जो आपके पास सदा रह सकता हो। जितने भी समागम मिले हैं उनमें नियमसे वियोग होगा। तो इन समागमोंमें चैन माननेका फल क्या होगा कि वियोगके समय आपको बहुत कष्ट होगा। जितना अपनी उमरभर मौज मानते हो उस मौजमें जितना जो कुछ मौज इकट्ठा कर लिया है उससे भी कई गुणा क्लेश आपको वियोगके समयमें होगा। तब विवेक क्या है कि इन समागमोंके समयमें उन बातोंमें हर्ष न मानो। बात मान लो अन्यथा तो क्लेशमय संसारकी अवस्था होगी।

एक सेठ था। उसकी मृत्यु निकट आ गयी। तो नगरके ४-६ आदमियोंको बुलाकर कहा कि मेरी इस जायदादका ट्रस्टनामा लिख दो, मैं इस दो वर्षके बच्चेको छोड़े जा रहा हूं। ये चार पांच ट्रस्टी हैं जो जायदादकी रक्षा करेंगे। जब बच्चा बड़ा हो जाय तो सारी जायदाद इस बच्चेको सौंप देना। सेठ गुजर गया। कुछ दिनोंके बादमें बच्चा सड़क पर खेल रहा था। उस सड़कसे एक ठग निकला। उस ठगको बच्चा बड़ा सुन्दर लगा। मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वह ठग उस बच्चेको उठा ले गया क्योंकि उसके भी कोई बच्चा न था। उसकी स्त्री ठगनीने उसे खूब पाला पोसा। अब १७-१८ सालका हो गया—वह तो यही समझ रहा है कि मेरा बाप तो यही है, मेरी मां यही है। मेरा वैभव तो यह खेती गाय भैंस ही है।

अब वह एक दिन शहरमें निकला तो उसे एक ट्रस्टी सेठ मिल गया। सेठने पहिचान लिया व कहा—अरे बेटा, कहां जा रहे हो यह तुम्हारी १० लाखकी जायदाद पड़ी है अब तो इसे सम्भालो। हम लोग कहां तक सम्भालेंगे। तो उसने समझ लिया कि सेठ मुझे बहका रहा है, उसने उसकी बात अनसुनी करदी। अब दूसरे ट्रस्टी ने कहा, तीसरे ट्रस्टीने कहा कि बेटा लो अपनी यह १० लाखकी जायदाद अब तो सम्भालो, उसने फिर अनसुनी करदी। फिर चौथे ट्रस्टीने कहा, आखिर बालक तो वैश्याका था। सोचता है कि ये सब देनेको ही कह रहे हैं कुछ छुड़ा तो नहीं रहे हैं। कहा अच्छा ठहरो, १५-२० दिनमें जायदादको सम्भालेंगे।

अब वह अपने घर जंगलमें गया। अपनी ठगनी मांसे पूछता है बड़ी नम्रतासे कि मां सच तो बतलावो कि मैं किसका बेटा हूं? ठगनीने कहा कि तू तो एक सेठका बेटा है, तू मुझें सुन्दर लगा इसलिए तुझे मैंने उठा मंगाया और तुझे पाला पोसा। उसको ज्ञान हो गया। सोचा ठीक कहते थे वे चारों। मैं फलां सेठका लड़का हूं, अब मुझे १० लाखकी जायदाद मिलेगी। तो इतना जानने पर क्या वह अपनी मांको मां नहीं कहेगा? क्या वह कहेगा कि ऐ ठगनी! तू मुझे पानी पिला? क्या वह अपने खेत, गाय, बैलकी रक्षा न करेगा? सारी बातें करेगा मगर दिल कहां लगा है? दिल लगा है? दिल लगा है अपने वैभवमें। फिर कुछ समयमें आसानीसे जाकर वह अपनी जायदाद सम्भाल लेता है।

इसी तरह हम सबमें जीव बालक हैं। जब तक अज्ञान है तब तक बालक कहते हैं। इस बालककी जायदाद जो अनन्तज्ञान अनन्तसुखकी निधि है उसके ट्रस्टी हैं कुन्दकुन्दाचार्य, सुमन्तभद्रमहाराज आदि। इस निधिको हम आप सब भूल बैठे हैं। इसलिए कहते हैं कि यह मेरा घर है, यह मेरा धन वैभव है, यह मेरी मां है, यह मेरा पिता है। यही हम आप सब मान रहे हैं। यह हम आपको पता नहीं है कि यह मनुष्यभव बड़ी कठिनाईसे मिला है, इस मनुष्यभवमें तो अपने कल्याणकी बात सोच लेना चाहिए।

हमारे ट्रस्टी एक आचार्य देवने बताया कि तुम्हारा सुख इन बाह्य चीजोंमें नहीं है। तुम्हारा अनन्तवैभव है तुम ही में गुप्त है, अनसुनी कर दिया। दो चार ट्रस्टीयोने समझाया तो कुछ ख्याल करता है कि ये मेरे हितके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिए ही लिख गये हैं। कह रहे हैं, सो कुछ सोचा कि अच्छा मानूंगा तुम्हारी बात। एकांतमें बैठा और इन अनुभूतियोंसे बड़ी दयाकी दृष्टीसे पूछने लगा नम्रताके साथ पूछने लगा कि सच तो बतलावो कि मेरा सच्चा घर कौन है ? अनुभूतिने सरलतासे जवाब दे दिया कि तेरा घर तेरा शुद्ध स्वरूप है, इस तेरे स्वरूपमें अनन्तज्ञान, अनन्तदशन की निधि है। अब उसे पूरा ज्ञान हो गया क्योंकि यह गृहस्थ तो समझ ही रहा था। ये ट्रस्टी लोग तो पुकार ही रहे थे, अब अनुभूतिने भी समर्थन कर दिया कि यह तेरा घर है, यह तेरी जायदाद है। बस उसे सम्यग्ज्ञान हो गया।

सम्यग्ज्ञान होने पर क्या वह ज्ञानी पुरुष मांको मां व पिता को पिता नहीं कहेगा ? बस स्त्रीसे यह नहीं कहेगा ? कहेगा। वह स्त्रीसे यह नहीं कहेगा कि तू मुझे नर्कमें डालने वाली है। क्या वह सबसे बुरे वचनोंसे बोलेगा ? नहीं बोलेगा। उनसे पले पुसे हैं, जीवन मिला है, लगाव है तो धीरेसे, आसानीसे वहांसे छुटकारा पाकर यह अपनी निधिको पानेके लिए उत्सुक हो जायगा। फिर इस लौकिक निधिको छोड़कर ज्ञानानन्दमय निजनिधिको अपने उपयोगमें प्राप्त करनेको उपयोगरूप यत्न करेगा।

जैसे किसी सेठके गुजरने पर केवल उस घर एक नाबालिग लड़का हो तो सरकार उसकी जायदादको कोर्ट आफ वार्ट कर ले और ५०० रुपया महीना सरकार देने लगे तो जब तक उसे ठीक ठीक पता नहीं होता तब तक वह जानता है कि वह सरकार बड़ी दयालु है, घर बैठे ५००) महीना देती है। लाखोंकी जायदाद सरकारके सुपुर्द हो जाती है। जब बालकको यह बात मालूम होती है तब फिर वह बालिग सरकारको नोटिस दे देता है कि ५०० रुपया महीना नहीं चाहिए। पहिले तो समझता था कि सरकार मुझ पर दया कर रही है घर बैठे ५००) महीना देती है। पर जब यह ज्ञात हो जाता है कि सरकारने मेरी १० लाखकी जायदाद जप्त कर रखी है और उसमेंसे ५००) रुपया महीना देकर मुझे बहका रही है। इतना समझमें आते ही ५००) रु० महीना लेना तिरस्कृत कर देता है।

इसी प्रकार इस जीवको जब तक अपने स्वरूपका सही पता नहीं होता है कि मैं क्या हूं ? तब तक तो छोटे-छोटे पुण्योंसे प्राप्त वैभवसे अपनेको भाग्यशाली समझता है। पर जब अपने आपके स्वरूपका सही पता हो जाता है, उसे यह समझमें जब आ जाता है कि मेरा स्वरूप तो स्वयं आनन्दमय है, मैं तो स्वयं आनन्दमय हूं, इतना ज्ञान आते ही उस बाह्यवैभवको वह तिरस्कृत कर देता है और पुण्य सरकारको नोटिस दे देता है कि अपनी पाई-पाई सम्भालो, मुझे कुछ नहीं चाहिए और अपने भीतर अपना उपयोग देकर अपनी आनन्दनिधिको प्रकट कर लेता है। जिसने प्रकट किया उसे परमात्मा कहते हैं और जो परमात्माका स्वरूप हैं वही हम आपका स्वभाव है। ऐसा विश्वास रखो कि क्षणिक निधिसे उपेक्षा रखो, इससे पूरा न पड़ेगा। आपका पूरा तो आपके अन्तर्ज्ञानसे होगा।

जैसे केवलज्ञान आदि रूपमें प्रकट होने वाला कार्य समयसार उपाधि रहित परमात्मादेव है, जो मुक्तिमें निवास करता है ऐसा ही परम ब्रह्म कारण समयसार यह आत्मदेहमें निवास करता है। कारण समयसार तो शक्ति का नाम है और कार्य समयसार शक्तिकी पूर्ण व्यक्तिका नाम है। समयसारका अर्थ है कि समस्त समयोंमें द्रव्योंमें सारभूत द्रव्य है, आत्मद्रव्य, उसमें भी सारभूत त्रैकालिक जो स्वरूप है उसे कहते हैं समयसार और वह इस ही शक्तिमें दृष्ट हो तो उसका नाम है कारणसमयसार। और जैसा आत्माका स्वभाव है तैसा ही पूर्ण व्यक्त हो जाय सो उसको कहते हैं कार्यसमयसार।

भैया ! इस लोकमें अब तक पंचेन्द्रियोंके विषयोंमें और मनके विषयोंमें ही अनुराग किया, विषयोंकी ही बात सुनी, विषयोंकी ही बात परिचयमें आई और विषयोंकी ही बात अनुभवमें आई किन्तु अपने आपके स्वरूपमें अंतःप्रकाशमान ज्ञायकस्वरूप यह देव अपने ज्ञानमें न आया, यह आत्मा स्वयं, स्वयंके लिए महान् है यह समझमें न आया और परसे कुछ भिक्षा मांगता हुआ, ऐसा बना हुआ यह भिखारी रहा। परिवारसे आशाकी, उनका ही भिखारी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा, देशमें आशाकी, वहां भी भिखारी रहा और यहां तक कि कभी देव शास्त्र गुरुका प्रसंग आवे तो वहां भी विषयसाधनाकी आशा रखी। वहां भी भिखारी रहा।

भैया! प्रभुके समक्ष हमें भिखारी नहीं बनना है किन्तु प्रभुका भक्त बनना है। भक्त और भिखारीमें अन्तर है। प्रभुके स्वरूपकी उपयोगसे सेवा करना भक्ति है। यह कार्यसमयसारका स्मरण कारणसमयसारकी याद दिलानेके लिए है। किन्तु ये विषयसाधनोंकी मांगके लिए उपासनीय नहीं है। जैसे यह प्रभु भावकर्म, द्रव्यकर्म नोकर्म से रहित है। इसी प्रकार यह स्वयं सहजस्वरूप भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे रहित है। जैसे जलमें डूबे हुए कमलके पत्रको हम इस दृष्टिसे भी देख सकते हैं कि यह पानीमें डूबा हुआ है, पानीसे छुवा हुआ है, पर उस डूबी हुई हालतमें भी केवल कमलके पत्र पर दृष्टि दें और कमलपत्रके स्वभावको निरखें तो यह ज्ञात होगा कि यह कमलपत्र पानीसे छुवा हुआ नहीं है उस ही प्रकार इस आत्मदेवको कर्म नो कर्म शरीर और बाह्य वातावरणसे बंधा और फसा अनुभव किया तो शरीरके बंधनमें है, अनेक बंधनोंमें है तथा इस ही आत्मद्रव्यको यदि हम इसके सहजस्वरूपकी दृष्टिसे देखें अर्थात् यह चैतन्यसत् अपने शुद्धसत्वके कारण इस स्वरूपको लिए हुए है, इस दृष्टिसे देखते हैं तो यह समस्त पर-उपाधियोंसे अछूता है।

यह सब प्रज्ञाकी महिमा है। जैसे हड्डीका फ़ोटो लेने वाला एक्सरा क्या उसके नीचे पड़े हुए मनुष्यके न कपड़ेका फोटो लेता है, न चमड़ीका फ़ोटो लेता है, न खूनका, न मांसका इन सबको छोड़कर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है इस ही प्रकार यह प्रज्ञा सर्वकर्म, रागादिक विकार सबको छोड़कर केवलज्ञान स्वभावको ग्रहणकर लिया करता है।

एक चुटकुलामें कहते हैं कि राजा और मंत्री सभामें बैठे हुए थे। राजाने मंत्रीसे मजाक किया, नीचा दिखानेके लिए अथवा इसी प्रकार व्यवहार चला करता था। राजा बोला मंत्री जी आज रातको मुझे एक स्वप्न आया कि हम दोनों घूमने जा रहे थे, रास्तेमें दो गड्ढे मिल गये एक गड्ढा था गोबरका और एक था शक्करका सो आप तो गोबरके गड्ढेमें गिर गये और मैं शक्करके गड्ढेमें गिर गया। तो मंत्री बोला महाराज ठीक यही स्वप्न मुझे आया है, कि आप तो शक्करके गड्ढेमें हैं और मैं गोबरके गड्ढामें हूं। हमारा और आपका चित्त एकसा है ना ? पर एक बात इससे ज्यादा मैंने देखी कि आप मुझे चाट रहे थे और मैं आपको चाट रहा था। अब बतलावो कि गोबरके गड्ढेमें गिरा हुआ व्यक्ति स्वाद किसका ले रहा था ? शक्करका और शक्करके गड्ढेमें पड़ा हुआ व्यक्ति स्वाद किसका ले रहा था ? गोबरका। इसी प्रकार यह बंधन, लगाव, फ़ंसाव, गृहस्थीका समागम, कुरता टोपीके बीचमें फंसा हुआ ज्ञानीपुरुष समस्त माया रूपोंको पार करके अंतः बसे हुए ज्ञानस्वभावको लखता है तो बतलावो कि गृहस्थीके कीचड़में अथवा गोबरके गड्ढेमें पड़ा हुआ वह ज्ञानी स्वाद किसका ले रहा है ? ज्ञानस्वभावका, परमात्मस्वरूपका, सहज आनन्दका और सर्व कुछ छोड़कर त्यागकर एक बाह्यमें त्यागी बनकर यदि ज्ञानदृष्टिसे विषय और कषाय, प्रतिष्ठा रीति, अथवा किन्हीं प्रकारके विषयोंमें चित्त जाता है तो वह किसका स्वाद लेता है ? कीचड़का, गोबरका।

यदि कला हैं, प्रताप है तो दृष्टिका है और हम आप सब तिर सकते हैं तो इस ही दृष्टिके बलसे तिर सकते हैं तो तो इस ही प्रज्ञा द्वारा यह देखा जा रहा है कि जैसे परमात्मस्वरूप भावकर्म द्रव्यकर्म नोकर्मसे रहित है इस ही प्रकार यह अपने अस्तित्वमें सदा विराजमान अपने ही सत्त्वके कारण जिस सहज स्वरूपमें रहता है उस ज्ञायक स्वभावको निरख कर देखूं तो यह मैं भी परमात्माकी तरह एक शुद्ध चैतन्य हूं। इस देहमें रह रहा हूं, पर भेद न करूं, केवल स्वरूप और स्वभावको लखकर एक शुद्ध आनन्दकी दृष्टि करूं। यह सब एक ज्ञानदृष्टिकी लीला है, जिस दृष्टिसे स्वरूपपथसे चलकर यह आत्मा प्रगतिकी ओर जा रहा है। उस ही कलाकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखिये। अन्यथा जिसने इन्द्रियों द्वारा जैसा जाना है वैसा ही अपनेको देखा तो वहां शंका हो जायगी कि यह तो शरीर, कर्म और विकारोंसे तो बंधा है और कहा जा रहा है कि हमारा स्वरूप सिद्धके समान है।

यह कारणसमयसार जो परम ध्येय है, आचार्य साधु उपाध्याय भी जिस कारणसमयसारका ध्यान करते हैं, जिस कारणसमयसारका ही आश्रय लेकर अरहंत और सिद्धरूपमें परमात्मापद प्राप्त करते हैं वह कारणसमय-समयसार महापुरुषोंसे भी नमस्कार करने योग्य है। भैया! हमारा और आपका शरण क्या है? जैसे बच्चेको किसी ने डांटा तो दौड़कर झट वह अपनी मांकी गोदमें बैठ जाता है और अपनेको निरुपद्रव अनुभव कर लेता है। उस बच्चेको कोई कष्ट आने पर शरण है मांकी गोद, इसी प्रकार हम आप सब कितने क्लेशोंमें पड़े हैं? धन है तो क्लेश, नहीं है तो क्लेश, समागम है तो क्लेश, समागम नहीं है तो क्लेश, बहुतसे बच्चे हैं तो क्लेश, अकेला ही है तो क्लेश इत्यादि क्लेशोंका सबको अनुभव हो रहा होगा। सब अपने आपमें दुःख पा रहे हैं। ऐसे दुःख संकटोंसे घिरे हुए हम किसकी शरण जाएं, कि ये संकट तत्क्षण खतम हो जाएं? फिर चाहे उस शक्तिसे हम हटें तो संकट आ जावें, पर एक बार तो जिसकी शरणमें पहुंचकर संकट दूर हो जाएं ऐसा शरण कौन है? किसके पास जावोगे? किस लखपतिके पास जाकर निर्मलताका अनुभव करोगे? किसके पास जाकर अपनेको संकटरहित अनुभव करोगे? परद्रव्योंकी पकड़से एक क्षण भी अपनेको संकटरहित नहीं पा सकते।

एक अपने आपके प्रकाशमात्र सहजस्वरूपमय कारणपरमात्माकी शरण पहुंचो। देखो यदि अपने सहज-स्वरूपकी शरण पहुंच पाते हो अर्थात् रागद्वेषादिक विकल्परहित (समता परिणाम रूपमें) वृत्तिमें रह पाते हो तो तत्क्षण सर्वसंकट दूर हो जाते हैं। हां यदि तुम अपने केन्द्रसे चिग जाओगे तो फिर संकट पाने लगोगे। इसका कारण यह है कि संकट परपदार्थोंसे नहीं आया करते हैं।

यदि संकट परपदार्थोंसे आते होते तो ये संसारी रोगी बेइलाज हो जाते फिर इसका दुनियांमें कोई इलाज नहीं रहता कि जिस उपायसे संकटोंसे मुक्ति हो सके कोई भी संकट परपदार्थोंसे नहीं आते। एक भी संकट आप बतायें। परसे संकट आवे ही नहीं। संकट खुदकी ही विचारधारा बनाकर कल्पना बनाकर कुछका कुछ सोचकर मान लिया करता है, बड़ी परेशानी अनुभव करता है। किन्तु भैया! दूसरोंके संकटोंकी कथा सुनकर जैसे तुम्हें बीच-बीचमें हंसी आती रहती है कि कैसी मूर्खता भरी बात करता है कि हम संकटोंमें हैं। छोड़ दे यदि मोहको तो संकट टला ही टला। इस प्रकार अपनी मूढ़ता अपनेको अनुभवमें नहीं आ पाती।

संकट केवल अपनी कल्पना है। हमारी ऐसी कच्ची गृहस्थी है कि यह तो छोड़ी ही नहीं जा सकती है। यह तो सरासर संकट है यह तो पुण्यफलकी उद्दण्डता है। सुकौशल स्वामीके कच्ची गृहस्थी न थी क्या? स्त्रीकी भी उम्र छोटी थी। पुत्रके वियोगमें मां बड़ी दुखी थी। हम आपसे भी कच्ची गृहस्थी सुकौशल स्वामीकी थी पर उनसे ज्ञान जगा और संकट मिटे। उस समय समझाने वाले हजारों व्यक्ति समझाते थे। कोई समझाता कि तुम घर के लोगोंको छोड़ दोगे तो इन बेचारोंकी क्या हालत होगी? हम आप यह नहीं जानते हैं कि घरमें रहने वाले लोगों का अधिक पुण्य है जिसकी वजहसे हमें इनकी नौकरी करनी पड़ रही है। वस्तुस्वातन्त्र्यकी दृष्टि करो, क्लेश न रहेगा।

यह जीव किसी परका कर्ता नहीं है। यह केवल अपने विकल्प बनाया करता है। विकल्प बनानेके अति-रिक्त इसका कोई काम नहीं है। तो ऐसी शरण कौन है कि जिसकी शरणमें जाएं तो तत्क्षण आराम मिले? वह शरण है अपना शुद्ध ज्ञानस्वरूप किन्तु इसका दर्शन करना इसकी चर्चा करना, इसके ज्ञानमें लगना यह बहुत बड़ा कठिन मालूम हो रहा है। कठिनाई मालूम होती है इस कारण कि इसके समीप नहीं पहुंचे और जो आत्मज्ञ पुरुष हैं उनकी सेवामें नहीं रहे, अथवा सत्संगमें नहीं रहे। अथवा ज्ञानके अर्जनका यत्न नहीं किया। केवल कनक कामिनी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यही इनके सब देव रहे, गुरु रहे। देव गुरुको माना तो लोकव्यवहारसे, रुढ़िसे। मैं कुछ ठीक कहलाऊं, बड़ा कहलाऊं, न जाने कितने आशयोंसे, देवको माना।

आत्महित बुद्धिके कारण सहजसिद्ध आत्माकी ओर व आत्मज्ञोंके सत्संगमें नहीं पहुंचा इसलिए यह बात कठिन मालूम हो रही है किन्तु है यह खुदके घरकी बात है। अपने आत्माके स्वरूपकी बात कैसे कठिन हो सकती है? कठिन है। कठिन है पैसा कमाना उसपर आपका अधिकार नहीं। आना होता तो आता है वह आपके पूर्वकृत पुण्यका फल है। दुकानमें ही बैठे-बैठे सोचते जायें कि इसकी जेबका पैसा हमारी दुकानमें आजाय तो क्या इस परिणामके फलमें पैसा आजायगा। यह कैसे हो सकता है? जैसे कौवाके सोचनेसे ढोर नहीं मरा करते इसी प्रकार आपके सम्बन्धमें सोचनेसे परमें परिणति नहीं हुआ करती। केवल विकल्पोंके ही हम कर्ता बनते हैं।

इन विकल्पोंसे विराम मिले, इस बातको जीव नहीं सोचता है और मोहसे उत्पन्न हुए दुःखको मिटानेके लिए मोह करनेका ही इलाज करता है। रागका उत्पन्न करना राग बढ़ानेका ही यत्न करना है। यह उद्यम उनका ऐसा है कि जैसे खूनसे भिड़े हुए कपड़ेको धोनेके लिए खूनसे ही धोते हैं। सत्यदृष्टिसे देखो तो जो ज्ञानी ज्ञानके स्वरूपका ज्ञान करता है यह ज्ञान ऐसा ज्ञान है कि जिन ज्ञानमें से ज्ञानकी शुद्धवृत्ति उत्पन्न होती है और ज्ञानके पूर्ण विकासको ज्ञान कर लेता है। जो ज्ञान अपने स्वरूपको छोड़कर बाहरी पदार्थोंके जाननेमें जुटा रहता है उस ज्ञानको अज्ञान कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं। इस ज्ञानके द्वारा हम जगत्के पदार्थोंकी ऐसी व्यवस्था करते हैं और हम स्वयंको नहीं समझना चाहते हैं, यह अपने आप पर कितना बड़ा अन्याय है?

यह मेरा प्रभु मुझमें अनादि कालसे मेरे उद्धारके लिए विराजमान है और इसकी भूलके कारण भूले भटके हम फिर रहे हैं। जब तक हमारे मूढ़ता छाई है तब तक हम लाचार हैं, हम अपना उद्धार करनेमें समर्थ नहीं है। पर यह अपने आपके प्रभुको देखना ही नहीं चाहता और इन इन्द्रिय और मनके द्वारसे बाह्य बाह्यमें ही रमता है।

कोई बाबू थे अपने आपकी सुन्दर व्यवस्थामें ही लगे रहे थे। उचित-उचित स्थान पर चीजें रख रहे थे। घड़ीकी जगह घड़ी रख दिया, छड़ीकी जगह छड़ी रख दिया और लिख दिया। जूते रख दिये और लिख दिया जूते। जहां जो चीज रखना चाहिये वहां वह चीज रख दिया और लिख दिया। यही तो सुन्दर व्यवस्था है। व्यवस्था करते-करते नींद आने लगी, पलंग पर लेट गया। व्यवस्थाकी धुनमें जिस पलग पर लेट गए वहां पर लिख दिया मैं सो गया, जब सुबह हुआ जगे तो देखा कि जो चीज जहां रखी थी वह वहां है कि नहीं। देखा—घड़ीकी जगह घड़ी, बस, ठीक। छड़ीकी जगह छड़ी ठीक और जब पलगपर देखा तो उसमें मैं लिखा था। देखा तो मैं है ही नहीं। पलग को लट्ठसे झाड़ा, शायद कहीं नीचे टपक जावे, मैं तो मिला ही नहीं, इस भ्रमसे दुःखी होने लगा, झट नौकरको पुकारा, अरे गजब हो गया, मेरा मैं गुम गया। बाबूसाहबकी बात सुनकर नौकर हंसने लगा। बाबू जी ने कहा अरे तू तो मजाक समझता है। मेरा मैं गुम गया। नौकर बोला बाबू साहब आप थक गए होंगे, आप ५ मिनट विश्राम कर लीजिए तो आपका मैं अभी मिल जायगा। बाबू साहब थके हुए थे, वे पलंग पर लेट गए और नींद आ गयी। जब थोड़ी देर बाद सोकर उठे तो नौकरने कहा अब बाबू साबूजी आपका मैं पलंग पर मिल गया। पलंगपर अपनेको टटोला तो बोले—ओ यस मेरा मैं मिल गया।

इसी प्रकार जो जीव ज्ञान और आनन्दको परमें खोजता है वह मानो अपनेको ही परमें ढूंढ़ता है, क्योंकि ज्ञानानन्दमें और मैं में कोई अन्तर नहीं है। जो ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है वही तो मैं हूं? यदि मैं पुस्तकोंमें ही ज्ञान और आनन्दको खोजता हूं तो खोजता ही रहता हूं। अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपकी ओर तो मुड़कर नहीं देखता। जो धन वैभव परिवारमें ही आनन्द खोजते हैं वे अपना मैं अपनी कल्पनाओंसे खोकर बाहरमें ही ढूंढ़ते रहते हैं। अपने आपमें वह सहज ज्ञानानन्दस्वरूप अपनी दृष्टिमें आजाय तो सच समझो कि आपने वह विभूति पायी जिसके आगे तीन लोककी सम्पदा भी झुक जाती है। वैसे तो देखा इस जीवने कई भवोंमें अरबोंकी सम्पदा पायी और उसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

छोड़ा, पर आज हजार या थोड़े लाख कि विभूतिको पाकर ऐसा समझते हैं कि यह मैंने अपूर्व निधि पाई, पर क्या पाया ?

अच्छा आप मान लो कि तीन लोककी जितनी सम्पदा है वह मेरी है, क्या हुआ ? क्योंकि आपके घरकी जो तिजोरी रखी है उसे भी तो कल्पनासे ही माना कि यह मेरी है सो केवल कल्पना ही तो करना है। तीन लोक की सारी सम्पदाको मान लो कि यह मेरी है। केवल कल्पनासे ही मानकर सुखका अनुभव करते हो ना सो ओर अधिक मान लो। माननेके अतिरिक्त तो कोई कुछ काम नहीं कर पाता, इन विकल्पोंसे पूरा न पड़ेगा। जन्म लिया, मरण किया, यही चक्र लगा रहेगा।

भैया ! जन्ममरणके मेटने वाली जो दृष्टि है, प्रज्ञा है उसका आदर करो। मोहमें रहे, रागमें रहे, दुकान में रहे, परिग्रहमें रहे सबेरे ८ बजे मंदिरमें पहुंच गए वहां पर भी वही धुन रही तो उससे क्या लाभ है ? जब तक लगनके साथ एक चित्त होकर ५ मिनट भी सर्वविकल्पोंको तोड़कर न बैठे तो क्या लाभ मिलेगा ? ५ मिनटके लिए तो ऐसी हिम्मत बनाओ। ऐसी कमर कसकर बैठो कि मनमें रंच भी किसी चीजका ध्यान न रहे तो इस प्रकारसे एक अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है और कुछ समयके लिए एक विशेष प्रकारकी शांति मिलती है।

आत्महितैषिताके बिना धर्मके नाम पर कोई विधान रच दिया, उत्सव रच दिया तो इससे क्या शांति मिलती है ? उद्देश्यविहीन यह बात कही जा रही है। जगह-जगह निमंत्रण पत्र बांट दिया, हजारों आदमियोंको निमंत्रण दे दिया, व्यवस्था करनेमें क्रोध भी आ रहा है। हमारी नाक न कटने पावे यह भावना भी मनमें रखी हुई है। कितनी ही बातें मनमें आती हैं तो बतलावो इस प्रसंगमें धर्म क्या किया ? इसमें बतलावो आपके हाथ कुछ रहा ? कुछ नहीं। हां केवल यह बड़ाई मिल जायगी कि इस विधानमें १० हजारका खर्चा किया। भैया ! इस बात से पूरा नहीं पड़ता। यह तो हो गया मगर आत्मामें निराकुल ज्ञानस्वभाव परमात्मस्वरूप कारणसमयसार, जिसकी दृष्टिके प्रतापसे अनगिनते भवोंके बांधे हुए कर्म खिर जाया करते हैं उस आत्मदेवकी दृष्टि नहीं की तो धर्म कुछ भी नहीं होगा।

भैया ! अब इस जीवनमें धर्मके लिए अपनी कमर कसो। यदि इस संसारसे छुटकारा पाना है तो आत्मा का जो विषय है, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र इन सबका साधन है सच्चा ज्ञान जानो तो सही कि मैं क्या हूं ? क्या करता हूं ? क्या स्वरूप है ? कैसा हूं इस बुद्धिको मिटानेकी सच्ची विधि सम्यग्दर्शन है, सम्यक्चारित्र भी है और सम्यग्ज्ञान भी है। रुढ़िमें विडम्बना चाहे पायी जाय किन्तु मर्म नहीं पाया जाता।

एक सेठने पंगत की। उसमें सोचा कि लोग पत्तलकी सींक निकालते हैं दांत कुलयानेके लिए। सो मेरी ही पत्तलमें खायेंगे। और उसी पत्तलमें ही छेद करेंगे। अतः पत्तलमें ४-४ अंगुलकी सींकें अलग परोस दी जायें सेठने ४-४ अगुलकी सींकें परोसीं। सो अब वह तो मर गया। लड़के लोगोंने कोई उत्सव मनाया तो सोचा कि हम तो बापका यश बढ़ायेंगे, घटायेंगे नहीं। बापने तो ४ मिठाई बनवाई थी हम १२ बनवायेंगे और ४ अंगुलकी सींक रखी थीं हम १२ अंगुलकी सींक रखेंगे। सो ऐसा ही किया। सो अब तो रुढ़ि चल गई। अब उसके लड़कोने भी अपनी कीर्तिके लिए ऐसा ही किया, उत्सव मनाया और पत्तलोंके साथ-साथ एक हाथका मोटा डंडा भी परोसा, देखो मर्म जाने बिना क्या अनर्थ हो गया।

लोग यह न कह दें कि कुछ नहीं किया सो कीर्तिके लिए लोग ऐसा ही दिखाऊ धर्म करते हैं। अरे यह धर्मका काम नहीं है। धर्मका काम तो नम्र परिणामसे, विनयसे गुप्त ही गुप्त छिपे हुए अपने आपमें कुछ रुकनेके लिए है। धर्म दिखानेकी चीज नहीं है। धर्म तो कारणसमयसारकी दृष्टि ज्ञप्ति व चर्चा है। कारणसमयसारकी दृष्टि हो तो ये संकट हमारे टल सकते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जे दिट्ठे सुहति लहु कम्मइं पुव्वकियाइं ।
सो पर जाणहि जोइया देहि वसंतु ण काइं ।।२७।।

हे योगी ! जिस कारणपरमात्मा तत्त्वके देख लेनेसे पूर्वकृत कर्म अन्तर्मुहूर्तमें ही चूर्ण-चूर्ण खण्ड खण्ड हो जाते हैं उस परमात्मतत्त्वको, इस देहमें बसने वाले निजतत्त्वको क्यों नहीं जानता हूं ? यह परमात्मतत्त्व एक ज्ञानरूप नेत्रसे देखा जा सकता है। वह ज्ञाननेत्र समाधिमें खुलता है। यह समाधि निर्विकल्प दशामें बनती है। यही निर्विकल्प दशा रागद्वेषरहित होने पर होती है। रागद्वेषरहित अवस्था शुद्धज्ञानस्वभावमात्र अपने आपको देखनेसे प्रकट होती है। भैया ! कल्याणके लिए काम बहुत करना है। और कुछ नहीं करना है। केवल एक काम करना है। एकके साधे सब सधते और एक को छोड़नेसे सब छूटते हैं। वह एक काम है अपने आपको ज्ञानानन्दस्वभावमय तकना।

प्रत्येक मनुष्य अपनेको किसी न किसी रूप तकता रहता है। कोई सोचता है कि मैं धनिक हूं, कोई सोचता है मैं पंडित हूं, कोई सोचता है मैं त्यागी हूं, कोई सोचता है मैं नेता हूं नाना प्रकारसे अपनेको समझते हैं पर इस सर्वमायारूप दृष्टिको छोड़कर इन चर्मचक्षुवोंको बन्दकर केवल ज्ञाननेत्रसे देखा जाय तो केवलज्ञानस्वरूप ही प्रतीत होता है। मैं क्या हूं, इसका उत्तर यहां यह आता है कि मैं तो ज्ञानानन्दस्वभावी एक चैतन्यतत्त्व हूं। ऐसा अनुभव करने वालेको सर्वसमृद्धियां मिल जाती हैं और जो अपनेको नानारूप अनुभव करता है उसके हाथ कुछ नहीं लगता।

एक कथानकमें कहते हैं कि दो भाई थे मानो हिन्दु और मुसलमान। एक साथ कहीं जा रहे थे। रास्तेमें एक नदी पड़ी, नदी कुछ गहरी थी तो दोनों बोले कि कैसे पार करें ? उन्होंने कहा कि अपने इष्टका स्मरण करके कूद जावो वह पार कर देगा। चले कूदकर तो मुसलमान तो शुरुसे अपनी एक ही रटन लगाये चला जा रहा था रे अल्लाह, और हिन्दु भाई ब्रह्माको पुकारा, कुछ देर बाद विष्णुको पुकारा, फिर शंकरको पुकारा। जिसका नाम पुकारे वह आवे और फिर जहां दूसरेका नाम पुकारने लगे तहां वह आने वाला देव चला जाये। इस तरहसे उसे कुछ सहाय न मिला और वह डूब गया। सारांश यह लेना है कि किसी एक पर श्रद्धा पुष्ट तो करो, क्या चाहिए दुनियांमें ? धन जोड़कर कुछ लाभ पाया क्या ? क्या बूढ़े नहीं होंगे ? मरण नहीं होगा क्या ? इन मोही जनोंने, जो कि स्वयं संसारके चक्रमें फिरने वाले हैं, स्वार्थमें आकर कभी आपके गुणोंके, कीर्तिके शब्द बोल दिये तो उससे क्या पूरा पड़ेगा ?

इस संसारमें आप क्या चाहते हैं ? यदि इन कर्मोंसे, शरीरके बंधनसे सदाको मुक्ति हो जाय तो वह स्थिति पसंद है या यह कि परिवार या लोकमें स्वार्थवश कभी दो शब्द सुन लिये यह पसंद है ? सदाके लिए संकट से छूटना यदि पसंद है तो जो सदाके लिए संकटोंसे छूटे हैं ऐसे देवके ध्यानमें रहें और जो संकटोंसे छूटनेका उपाय कर रहे हो उनका सत्संग करो। जितना तुम्हारा भवितव्य सुन्दर होगा वह श्रद्धाके आधार पर होगा। हम और आपके पास कौन सा ऐसा बल है कि जिस बलसे हम आप प्रगतिमें सफल हो सकें ? वह बल है श्रद्धानका बल। हमारा आधार वीतराग सर्वज्ञ है। यथार्थगुण दिखता है वहां सो उन पर मुग्ध होकर उनके अनुरागवश उनके गुणों का अनुराग नहीं है वरन् उस अपने आपके विकास माफिक अपने गुणोंका अनुराग है। सो अपने गुणोंके अनुरागके कारण प्रभुकी ओर ही लगन रहती है।

चाहिए क्या ? शान्ति। शान्ति धर्मके प्रसादसे ही मिलती है। एक श्रद्धा मजबूत हो तो हम अपने धर्म-क्षेत्रका प्रोग्राम ठीक बना सकते हैं अन्यथा कभी कोई आफत आए परिवार पर, किसी पर तो जिसने जहां बहकाया उस देवीमें उस देवतामें जगह-जगह बोलता फिरता है, फिर उस श्रद्धा हीनताके फलमें एक पाप चढ़ा मिथ्यात्वका और अपना वह आत्मबल भी घट गया। आत्महितका अभिलाषी ज्ञानी पुरुष एक व्यवहारमें तो जिनेन्द्र देवकी भक्ति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है और परमार्थसे अपने आपमें बसे हुए त्रैकालिक स्वरूपकी आराधना करता है। यहां कहा जा रहा है कि हे योगी ! जिस परमात्माका अवलोकन कर लेनेसे अनगिनते भावोंके बांधे हुए कर्म अन्तर्मुहूर्तमें टूट जाते हैं उस परमात्माको क्या तुम नहीं जानते हो ? भैया ! कर्म उदयकालका निमित्त पाकर जो अपने आपमें रागादिक विकार होते हैं, ये भावकर्म साक्षात् परमात्माके प्रतिबंधक हैं और निमित्तरूपसे ये द्रव्यकर्म परमात्माके प्रतिबंधक हैं। सो योगी तुम उस आत्मतत्वको देखो जिसके देखने मात्रसे कर्म कटते हैं। कर्म कटनेका उपाय क्या है ? ८ कर्मोंका स्वरूप जान लेनेसे ८ कर्मोंकी ओर दृष्टि देकर मैं इन्हें जलाऊं। क्या ऐसा कोई यत्न हो जायगा कि इनको पकड़-पकड़ कर जला दूं या सिरा दूं या नष्ट कर दूं ? एक ही उपाय है इसका। वह क्या ? अपने परमात्मस्वरूपको देखना इस उपायसे जो कुछ होना है, जिस प्रकारसे कर्म निकलेंगे उस प्रकारसे वे कर्म टूट जायेंगे। अपनेको करनेका काम एक है। यह परमात्मतत्त्व व देदेहमें बस रहा है।

इस देहमें बसने वाले आत्मामें परमात्मतत्त्व ऐसे बस रहा है जैसे घी दूधमें बस रहा है। वह यों ही सहज देखनेमें नहीं आता, पर यत्नपूर्वक देखनेसे, विवेकपूर्वक प्रक्रिया करनेसे दूधसे घी आप प्राप्त कर लेंगे तो वह घी किसी अन्य जगहसे नहीं आया, मठानीमे से निकल कर नहीं आया। वह दूधमें गुप्त बस रहा था, पहिचानने वाले जानते थे, दूधको देखकर कह देते हैं ना कि इस दूधमें १॥ छटाक घी है, इस दूधमें आधी छटांक भी घी नहीं है। यह सब अपने ज्ञानबलसे देख लिया। इसी प्रकार देहमें जीव बस रहा है और जीवमें चैतन्यशक्ति ध्रुव चला आ रहा है। उस चैतन्य शक्तिरूप कारणपरमात्मतत्त्वके अवलोकन करनेमें ये भिन्न-भिन्न उपार्जितकर्म अन्तर्मुहूर्तमें टूट जाते हैं।

हे योगी ! सर्वार्थकी सिद्धिके लिए नित्यानन्द स्वभावी स्वआत्माको क्यों नहीं जानते हो ? इस दोहेमें यह तात्पर्य बताया है कि उपादेय है तो वह परमात्मस्वरूप है। जैसे कहा था कि प्रत्येक मनुष्य अपनेको किसी न किसी रूप अनुभव किए रहता है। मैं पंडित हूं, मैं त्यागी हूं, मैं अमुक हूं, मैं बाबू हूं, मैं सर्विस वाला हूं, मैं बाल बच्चों वाला हूं, किसी न किसी रूपमें अपनेको समझते रहते हैं। पर किस अपनेको समझे तो ये कर्म टूट जायेंगे इसका वर्णन इस दोहामें किया गया है। अपने प्रज्ञाबलसे अन्तर्मर्मकी दृष्टि करके जानो कि मैं नित्य एक ज्ञानस्वभावी हूं। यह ऊपरी बात या परिस्थितिको देखकर नहीं देखना है। परिस्थिति है, परिणति है, उस ही परिस्थिति वाला मैं साधु हूं, ऐसा मान लिया तो यह धोखा है। पर परिणतिको यह ज्ञान छुवे नहीं, हैं वे पर उनकी उपेक्षा करो याने मध्यस्थता रखकर अपने आपको जो चैतन्य शक्ति है उसकी श्रद्धा करो और उसको लक्ष्यमें लेकर मानो कि यह मैं परमात्मस्वभाव हूं तो जैसा अपनेको अन्तर विश्वासमें माना है वैसा ही अपनी चेष्टा व फल होगा।

बच्चे लोग दोनों हाथ पैरोंसे चलते हुए मान लेते हैं कि मैं घोड़ा हूं। वे आपसमें घोड़ेकी बोली बोलते हैं और इतना दृढ़ सकल्पसा कर लेते हैं कि अपनेको घोड़ा रूप अनुभवने लगते हैं। वे आपसमें घोड़ोंकी तरह हिनहिनाते हैं और फिर हाथापाई भी कर डालते हैं। और इस हाथापाईमें घूसेबाजी भी हो जाती है और फिर लड़ भिड़कर अपने घर चले जाते हैं। तो उन्होंने जैसा ख्याल किया तैसा ही अपनेमें चेष्टा कर ली। हम मानते हैं कि हम मनुष्य हैं तो मनुष्यपर्यायके रूपमें हमें प्रवृत्ति करनी पड़ती है। हम मनुष्य हैं, बंधन हैं तिस पर भी यदि हम अंतरमें यह मान सके कि मैं तो एक ज्ञानमात्र चैतन्य वस्तु हूं, ईमानदारीसे, सच्चाईसे कहने मात्रसे नहीं, तो मेरे अंतरमें एक ज्ञान परिणति बन जायगी, रागद्वेष विकल्पों के भाव हट जायेंगे।

हम अपनेको किस रूप विश्वासमें लें यह बात धर्मके लिए सबसे प्रथम जानने योग्य है। दो ही तो बातें हैं। हम किस उत्कृष्ट आत्माको शरण मानें ? एक तो यह निर्णय करना है और उस अपने आपको किस प्रकारसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखूं यह निर्णय करना है। इन दोनों निर्णयोंके आधार पर हमारी धार्मिक प्रवृत्ति चलती है। फिर इन दोनों निर्णयों के पश्चात् चूंकि बंधन और स्थिति तो यही हैं ना, कहां तक उनके उपयोगमें डट सकेंगे ? थोड़ी देर बाद फिर व्यवहारसे काम पड़ता है, तब ऐसी स्थितिमें हमारी प्रवृत्ति कैसी हो उसके लिए गृहस्थ धर्म और साधु धर्म दो प्रकार से खूब बताया है ना ?

गृहस्थ धर्ममें ८ मूल गुणोंका पालन सर्व प्रथम बताया है। वे ८ मूल गुण क्या हैं ? (१) मधु त्याग (२) मांस त्याग, (३) मदिरा त्याग और, (४) पंच उदम्बर फलोंका त्याग, (५) रात्रि भोजन त्याग, जीवदया (२) जल गालन (८) देव दर्शन। इनमेंसे प्रथम तीनों जल्दी निभ जायेंगे, मधु, मांस और शहद त्याग। रात्रिका भोजन न करना कुछ कठिन सा हो गया आजकलके फैशनमें। कुछ तो त्याग करते हैं। रात्रि भोजन त्याग करो तो कमसे कम इतना पालन करो कि जिससे जघन्यरूपमें भी रात्रि भोजन त्यागमें शामिल कहलाने लगे।

प्रतिमाओंके बिना अविरत श्रावक रहकर भी रात्रिभोजनत्यागियोंमें तुम भी कहला सको, कमसे कम ऐसा त्याग तो हो। लड्डू पेड़ोंका तो रात्रिमें खानेका त्याग होगा हो, थोड़ा और साहस करो औषधि और जलको छोड़कर रात्रिमें कुछ न लो, क्या कोई यह बात कठिन है ? यह कमसे कम रात्रिभोजनके त्यागकी बात है। और देखो इसमें किसीको संकट नहीं आ सकते हैं। प्यासकी वेदनाके लिए पानी हो गया और कोई रोग हो तो औषधि हो गई और क्या चाहिए ? खानेकी तो चाहे जितनी लिप्सा बढ़ा जावो, बरातोंमें भी समूहरूपमें कहीं कहीं रात्रिको खाने लगे और जो नहीं खाते उनकी लोग मजाक उड़ाने लगते हैं। यह बहुत ही गलत प्रथा चलने लगी है। दृष्टि दो, समाज भी मिलकर इस पर प्रतिबंध करें।

छठा गुण है जीवदया, संकल्पी हिंसाका त्याग। यह भी निभाया जा सकता है। और ७वां मूल गुण है छानकर पानी पीना। २४ घंटेमें जब भी जल पीवें तो छानकर पीवें। जलमें कितने ही जीव पड़े रहते हैं। अनछना जल पीनेसे रोग भी हो जाते हैं, हिंसा तो होती ही है, सो जलको छानकर ही पीना चाहिए। ८वां गुण है देवदर्शन करना। देवदर्शन करना भी नियमसे प्रत्येक श्रावकका कर्त्तव्य है। ये ८ मूल गुण श्रावकके मूल काम हैं। सो अपने सर्व आचारों पूर्वक रहो और ज्ञानाचारका उद्योग करो और शुद्ध परमात्मदेव और अपना शुद्ध आत्मस्वभाव इन दोनों की परखमें, निर्णयमें अपना उपयोग लगावो। इन्हीं बातोंसे अपने दुर्लभ नरजीवनकी सफलता है।

हम लोग अब पढ़ें तो बहुत हैं पर जो करें उन्हें लाभ हैं। एक बाबू साहब मानो दिल्ली जा रहे थे। एक पड़ोसिन आई बोली हमारे मुन्नेको खिलौने ले आना, दूसरी आकर बोली हमारे मुन्नाको मिट्टीका जहाज ले आना, इसी प्रकारसे १०-२० बहुवोंने कहा। किसीने कुछ कहा किसीने कुछ। बादमें एक बुढ़िया आई, बोली बाबूसाहब मेरे पास दो पैसे हैं सो लो और मेरे मुन्नाको एक मिट्टीका खिलौना ला देना। तो बाबूसाहब बोले बूढ़ी मां, मुन्ना तेरा ही खेलेगा और १०-२० बहुवें रईसोंके यहासे आयीं पर किसीने कुछ दिया नहीं तो बातें ही बनानेसे काम न चलेगा, जो अपनी शक्ति माफिक धर्म करेगा उसका काम चल सकता है।

जित्थु ण इंदिय सुह दुहइं जित्थु ण मणवावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं अण्णु परि अवहारु ॥२८॥

आत्माका शुद्धस्वरूप क्या है ? वैसे सभी मोटे रूपसे जानते हैं कि जीव वह है, जो चलता है, फिरता है, खाता है, सुखी है, दुःखी है। इसी रूपसे दुनियां जानती है। पर आचार्यदेव कहते हैं कि जीव तो वास्तवमें वह है जिसके इन्द्रियजन्य सुख दुःख नहीं है। मनमें किसी प्रकारका विकार नहीं है। लोग तो जल्दी यों ही समझा करते हैं कि जो सुखी हो रहे हैं, जो दुखी हो रहे हैं वे ही तो जीव हैं। जीव तो शुद्धज्ञानस्वरूप है। जैसे दर्पण है, आइना है, क्या किसीने ऐसा दर्पण देखा है कि जिसमें छाया न हो, जिसमें प्रतिबिम्ब न पड़ता हो, ऐसा आइना क्या किसीने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देखा है ? अरे जब कोई देखेगा तो उसमें प्रतिबिम्ब आ ही जायगा। ऐसा आइना किसीके देखनेमें नहीं आया कि जिसमें छाया न पड़ती हो। छाया पड़ती हुई दिखती है फिर भी बतलावो कि दर्पणका क्या छाया स्वरूप है ? स्वरूप नहीं है। छाया तो आ पड़ी उपाधिके सम्बन्धसे मगर छाया स्वरूप नहीं है। दर्पणका स्वरूप तो उसकी स्वच्छता है छाया नहीं।

इसी प्रकार यह इन्द्रियजन्य सुख दुःख और मनकी कल्पनाएं ये जीवमें आ पड़ी हैं पर यह जीवका स्वरूप नहीं है। अपना स्वरूप यदि ठीक प्रकारसे पहिचाननेमें आ जाय तो समझो कि हमारा बेड़ा पार है। इस मोहमें कुछ नहीं रखा, यह मेरा घर है, कुटुम्ब है, परिवार है। यह छोड़ा भी नहीं जा सकता, इसमें सार भी कुछ नहीं है। मगर देखो तो जिन्दगी भर खूब श्रम कर रहे हैं। खूब कमा रहे हैं और कमा कमाकर खुश हो रहे हैं। यह मेरा बच्चा है यह मेरा भाई है, यह मेरी स्त्री है, यही मान मान कर खुश हो रहे हैं। इससे पूरा नहीं पड़ेगा। क्या अंत में मरण नहीं होगा ? अरे सबको छोड़कर जाना ही होगा। इनमें सार कुछ नहीं है। दूसरी बात यह है कि जितने भी बाहरी समागम है उन बाहरी समागमोंमें आनन्द नहीं है, चैन नहीं है, उनमें दशों विकल्प लगे हैं।

भैया ! ये विकल्प छूटें, गृहजाल मायाजाल छूटे तो कल्याण है, नहीं तो इसमें सार रंच भी नहीं है। पर यह छोड़ा भी नहीं जा सकता है। छोड़कर जीव कहां जायगा ? रिश्तेदारीमें रहेगा तो कितने दिन रहेगा ? हां यदि ज्ञान है और हिम्मत कर सके तो साधु बन जाए, त्यागी बन जाय तो वह तो मार्ग है। और अगर ममता बनाए रहे और जबरदस्ती छोड़ भी दिया तो उसमें गुजारा नहीं है। जिसके ममता रही ऐसे साधुसे तो गृहस्थ अच्छा है। तो यह बात चल रही है कि इस गृहस्थजालमें रहकर भी कल्याण कैसे हो सकता है ? यों हो सकता है फंसे हैं पर यहां वहांका ऐसा फंसना इस जीवका स्वरूप नहीं है। यह इन्द्रियजन्य सुख होता है दुःख होता है तो होता है आत्मा में, पर यह जीवका स्वरूप नहीं है। शुद्ध आत्मस्वरूप इन्द्रियजन्य सुख दुःख नहीं है क्योंकि सुख दुःख अनाकुलतारूप वास्तविक सुखसे उल्टा है। मेरा स्वभाव तो निराकुलताका देने वाला है। क्योंकि मेरा स्वरूप है केवलज्ञान, निष्फ ज्ञान और ज्ञानकी वृत्तिमें अनाकुलता है ही नहीं। ज्ञानके साथ जो रागद्वेषकी तरंगें उठती हैं उससे आकुलता होती है तो अनाकुलतारूप परिणामात्मक सुखसे विपरीत आकुलताओंको उत्पन्न करने वाले इन्द्रियजन्य सुख और दुःख इस मेरे असली भावमें नहीं है। और जो संकल्प विकल्पकी तरंगें चलती हैं वे मेरे स्वरूपमें नहीं है। जैसे कोई खोटा मित्र आपकी ही आर्थिक जड़ काटनेकी सोच रह रहा हो तो कमसे कम इतना तो जान लो कि मेरा खोटा मित्र है, मुझे धोखा ही देनेके लिए है। यह तो जान लो कि यह दगाबाज है कमसे कम इतना तो जानलो कि मेरा अहित करने वाला है। नहीं छूट सकते तो न छूटने दो पर जानते तो रहो। कर्मोंका बंध अपने परिणामोंके अनुसार होता है। विभावोंके बीचमें पड़े हो तो क्या न पड़े हो तो क्या, इसका बंध तो परिणामोंसे होना है। विभाव कितने भी पड़े हुए हों और परिणाम निर्मल है तो बंध पापोंका न होगा। और विभाव कुछ नहीं है। कर्मबंध तो परिणामोंसे होता है। इसलिए संकल्प विकल्पकी जो तरंगे उठती हैं वे इसके उठती ही रहती है। कोई दुश्मन इस दुनियांमें हमारा आपका नहीं है। हम आपने तो भ्रमसे ही दुश्मन मान लिया। वह दूसरी आत्मा जिससे आपकी किसी प्रवृत्ति का निमित्त पाकर विषयोंमें बाधा पहुंचती है उसे आपने दुश्मन मान लिया। जिससे कषायोंके अनुसार उसकी बात न बनी सो वह दुश्मन मान लेता है, आपके कषाय है कि मुझे इतना लाभ हो और उसमें वह बाधा तो नहीं डालता, मगर उसके भी कषाय है सो वह अपने कषायोंका काम करता है और उससे कुछ बाधा अपनी समझता है तो यह जानता है कि यह मेरा दुश्मन है। किसीका कोई दुश्मन नहीं है। इसी प्रकार मित्र भी किसीका कोई नहीं है। अपना सद्विचार ही अपना मित्र बनता है और अपना खोटा विचार ही अपना दुश्मन बनता है। इस संसारमें पुण्योदय पाकर ऊधम मचानेसे कुछ लाभ न मिलेगा। यह पुण्य बना रहा तो रहेगा और खोटा परिणाम करेगा तो मिट

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जायगा । पुण्यका फल तो सब चाहते हैं पर पुण्य कोई नहीं करना चाहते हैं और पापोंके फलसे सब दूर होना चाहते हैं और पाप कर रहे हैं । यहां जो कुछ सम्पत्ति मिली है वह आपके हाथ पैरोंके कमाने से नहीं मिली है । आपका उदय अच्छा है तो सब मिलेगा । उदय क्या अच्छा है कि पूर्वजन्ममें अपने सुकृत किए, धर्म कार्य किए, उदारताकी, इसलिए पुण्य बंधा । तो तुमको कमाने वाला पुण्यकर्म है और पुण्यकर्मके बनाने वाले आप हैं । सम्पत्तिके कमाने वाले आप नहीं हैं । पुण्यकर्मके बना सकने वाले आप हैं और सम्पत्तिके कमाने वाला पुण्य है । तो जिसकी यह चाह है कि मेरे बहुत सम्पदा हो तो उसका यह कर्त्तव्य है कि सम्पदापर दृष्टि न डाले किन्तु अपने धर्मपर पुण्यपर त्याग पर दृष्टि दे तो उसका परिणाम निर्मल होगा । देखो यह गजबका मोह है कि जगतके जितने भी जीव हैं—वे सब समान हैं, सबका स्वरूप बराबर है ना ? अब घरमें जो आपके चार जीव आगए बताओ वे भी दुनियांके सभी जीवोंके बराबर है कि नहीं ? बराबर हैं । आपके वे कुछ लगते हैं क्या ? कुछ नहीं लगते । मानलो सो मानलो पर लगते कुछ नहीं हैं । जैसे जगतके और जीव हैं तैसे ही घरमें बसने वाले चार जीव हैं । कोई फर्क नहीं है । जितने भिन्न और जीव हैं उतने ही भिन्न तुम्हारे घरके जीव हैं । आपकी आत्माका उनकी आत्माके साथ कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं है जो कि यह कहा जा सके कि ये मेरे कुछ हैं । हैं नहीं । मगर आप धन कमाते हैं, परिश्रम करते हैं, उन घरके चार जीवोंमें लगे हैं, उनमें ही अपना जीवन बर्बाद कर देंगे, मगर जो चारके अलावा और जीव हैं उनका क्या कुछ सम्बंध है, हिस्सा है ? अगर मोह न हो तो यह विवेक हो कि मैं अनेक उपाय करके जो कमाता हूं उसका आधा तो कुटुम्ब के लिए है और आधा जगतके और जीवोंके लिए है । इतनी बात यदि पैदा हो तो समझो कि हमारा मोह मिटा यदि यह प्रेक्टिकल प्रयोग है तो समझो कि मोह मिटा, नहीं तो कौन उसमें बुद्धिमानी है कि श्रम करते हो कमाते हो और उन चारमें लगाते हो तो यह विवेक नहीं है । मोह है, आसक्ति है और इस मोहका फल ससारमें भ्रमण करना है, तो शुद्ध जीवोंका स्वरूप बता रहे हैं कि जिसमें संकल्प विकल्प भी नहीं हैं, ऐसा शुद्ध ज्ञान मात्र मैं हूं । मेरा स्वरूप तो निर्विकल्प है, निर्विकल्प परमात्मस्वरूपसे यह बिल्कुल विपरीत चीज है संकल्प और विकल्प । सो यह सब जीवोंमें विकार है । यह मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा अपना शुद्ध आत्मा मानो । कैसे मानोगे ? निर्विकल्प समाधिमें ठहर करके मानों, और तरहसे मानना झूठी बात है । जैसे हरिहरदास सेठकी कथा है । वह सम्यग्दर्शनकी बात बोल रहा है, चार सेठानियां तो कह रही हैं कि सब कथा सच है और छोटी सेठानी कहती है झूठ । राजा सुन लेता है और बुलाकर छोटी रानीसे पूछता है कि क्यों झूठ है ? छोटी रानीने गहने फेंककर एक साड़ी पहिनकर जंगलको चल दी और बोली कि सच तो यह है और बाकी तो सब गप्पे हैं । तो शुद्ध आत्माका हित कैसे बने ? जब तक अपने विकल्प न हटें, और अपनेमें यह ज्ञानज्योतिकी झलक न आए तब तक नहीं मान सकते कि ओह मेरे असली आत्माका स्वरूप यह है । मैं घर वाला हूं, मैं परिवार वाला हूं, ये सब झूठी कल्पनाएं हैं । जीव तो केवल ज्ञान-स्वरूप है । तो मोहमें लगे रहो पर मोहमें मिलेगा कुछ नहीं । और कुछ ज्ञान मार्गमें लगे रहे, कुछ धर्ममें लगे रहे तो यह आपका लौकिक वैभव कुछ घटेगा नहीं बल्कि बढ़ेगा । धर्ममें प्रीति रहेगी तो लौकिक वैभवमें वृद्धि निश्चित है और मुक्तिका एक मार्ग भी मिल जायगा । तो ऐसा उपाय करो कि धर्ममें चित्त लगे । धर्ममें लगो, स्वाध्याय करो और बाह्य समागम तो विनाशीक है, असार हैं । अपना परिणाम तो ऐसा बने कि कोई यदि विवाद पैसोंके प्रति हो तो पैसोंका परित्याग कर दो । सार तो आत्माका आनन्द है । सो कुछ भी त्याग कर दिया, ज्ञान और आनन्द पा लिया तो इससे धर्ममें प्रीति अधिक बढ़ेगी । मन्दिरमें आए, एक मिनट दर्शन किया तो क्या है, उससे क्या फायदा है ? मंदिरमें दर्शन करनेसे मनमें ऐसी बात उपजे कि मेरेमें त्याग रहे, उदारता रहे जिससे कि ज्ञानमें लगें, धर्ममें लगें तो वह आपके लिए हितकर है । अगर तुम्हें अपना हित करना है तो घरके बच्चोंसे, घरके लोगोंसे तुम्हें हित नहीं मिलेगा यदि तुम्हारे अन्दर धर्म है तो तुम्हें सब कुछ मिलेगा । धर्मसे तुम्हें प्रेम होना चाहिए क्योंकि धर्मसे ही

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूरा पड़ेगा। धन वैभव व घरके प्राणियोंसे ही तुम्हारा पूरा न पड़ेगा। सो एक अपने शुद्ध आत्माको मानो और इस परमात्मस्वभावसे विपरीत जो इन्द्रियोंके विषय हैं उनको बाहरसे ही त्याग दो याने अपना ज्ञान ऐसा बनाओ कि मैं अकेला ही हूं, मेरा कोई नहीं है। मैं शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूं, ऐसा आपका परिणाम बने तो समझो कि आपने बहुत ऊंची बात प्राप्त करली, न ज्ञान प्राप्त किया, न अपने आत्मा पर दया किया, मोह रागद्वेषमें ही रमें रहना चाहा तो इसका फल कठिन है। इसे कहते हैं वीतराग निर्विकल्प समाधि। कोई पूछे कि निर्विकल्प समाधि कह दिया इतनेमें काम न निकलेगा क्या? कोई विकल्प नहीं है और समता परिणाम है सो उत्तर दिया है। यहां पर यह बताया है कि वीतराग बन गया तो निर्विकल्प समाधि हो गई। रागद्वेष होते हुए समता परिणाम नहीं हो सकते। दो भैया थे। उन दोनोंके एक-एक लड़का था। सो मान लो बड़े छोटे। सो बड़ा भाई बाजार अमरूद खरीदने गया। ले आया। तो सामनेसे वे दोनों लड़के आ रहे थे खुदका और भैय्याका। दाहिने हाथमें बड़ा अमरूद था और बायें हाथ में छोटा। वे दोनों भैया ऐसे आये कि बायें हाथकी तरफ़ खुदका लड़का और दायें हाथकी तरफ भैयाका लड़का। वे दोनों एक साथ अमरूद मांगने लगे सो उनको दायें हाथका बड़ा अमरूद अपने लड़कोंको व बायें हाथका छोटा अमरूद अपने भैयाके लड़केको दे दिया। यह हालत भैयाने देख ली। भैया बोला हमें न्यारा करदो। दोनों भैयाका परस्परमें बहुत प्रेम था पर उस तुच्छ कार्यसे उसका ध्यान बदल जाता है। छोटे भाईने कहा भैया न्यारा न होओ तुम सब धन ले लो, हमें कुछ न चाहिए। उस बड़े भाईने भी कहा कि हमें कुछ न चाहिए, हमें तो न्यारा होना है। धनकी वृत्ति नहीं थी फिर भी रागका कैसा कटुक फल मिला। कुछ हिम्मत करके देख लो कोई धेलाकी चीज अपने लड़केको दे दिया और दूसरेके लड़केको न दिया तो इससे कुछ लाभ नहीं हो जाता है। अपने लड़केको कम दिया, दूसरेके लड़केको ज्यादा दिया तो कोई बड़ी बात नहीं है, पर जो भीतरमें बात बसी है वही होगी। कहां तक ख्याल करें? बनावटी बात कहां तक बनावें। जो है सो होता है। जब तक वीतरागता नहीं आती तब तक निर्विकल्प समाधि नहीं बनती। किसीसे रागद्वेष नहीं, अपने ज्ञानस्वरूपको देख रहा है और ऐसा ही ज्ञानस्वरूप परमात्माका स्वरूप है सो अरहंतसिद्धमें दृष्टि दी तो यही ज्ञानपुञ्ज नजर आया और अपने आत्माके भीतर ज्ञानदृष्टि दी तो जानन स्वरूप नजर आया। उसको ही अपना स्वरूप मान लिया और जितने अपने विभाव हैं उन विभावोंका त्याग करो। जो जीव विभावी हैं वे अगर कहते हैं कि हमारी निर्विकार समाधि होगी तो वह गलत बात है। इसलिए निर्विकार समाधिसे पहिले वीतराग शब्द जोड़ दिया है। और दूसरी बात यह है कि बहुतसे साधु लोग २४ घन्टेमें समाधि लेते हैं, अपनेको गड्ढेमें बन्द करवा दिया और २४ घन्टेमें खुदवा लिया, उनमें निर्विकल्पता है। लेकिन लोगोंमें जो चित्त चल रहा है तो वह निर्विकल्प समाधि नहीं है। वीतराग निर्लेप, निर्दोष परमात्माका स्वरूप है और ऐसा ही शुद्ध प्रभुके समान हमारा स्वरूप है। कहां विकल्प फंसावें? लड़के जो हैं तो उनके भी भाग्य लगा है। किन्तु निरन्तर उनकी चिन्ता कर रहे हैं। उनका भाग्य होता तो आप रात दिन उनके पीछे परेशान क्यों रहते? उनका अच्छा भाग्य है इस लिए रात दिन परिश्रम करते हो, धर्ममें रहो, उमर बहुत हो गयी, अब थोड़ी उमर रह गयी तो अब तो धर्ममें प्रीति लगाओ। चिंता, विकल्प, मायाजालको छोड़ कर निर्विकल्पसमाधिमें रहकर अपने नित्यआनन्दस्वरूप एक स्वयं ज्ञानमय अपने उस शुद्ध आत्माको देखो। यह है तुम्हारा शुद्ध आत्माका स्वरूप बाकी इन्द्रियजन्य सुख दुःख निर्विकल्प विकल्प ये सब बेकार जानों ये मेरे स्वरूप नहीं हैं। ऐसा तुम अपने आपका अनुभव करके मानो, यदि ऐसा अनुभव हो गया तो बहुत सी चिंताएं दूर होंगी। सो भैया उपाय करके ज्ञानवृद्धि करो और धर्ममें लगो, मोह कम करो।

देहादेहहिं जो वसइ भेयाभेपणयेण।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुं किं अण्णे वहुएण ॥२६॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कहते हैं यह निज शुद्ध आत्मा या कारणपरमात्मा जिसकी नजर करने मात्रसे सारे संकट दूर होते हैं वह कहां रहता है ? इस बातको इस दोहामें कहा गया है। भेदनयसे तो यह परमात्मदेव इस शरीरमें बसता है और अभेदनयसे यह परमात्मा अपने स्वरूपमें रहता है। जैसे पूछा जाय कि बतलावो यह घड़ी कहां है ? तो भेदनयसे तो यह घड़ी मुट्ठीके अन्दर है और अभेदनयसे घड़ीमें घड़ी है, अपने आपमें है, हाथमें घड़ी नहीं है और भेदनयसे हाथमें घड़ी है, जैसे मानो तुमसे पूछा जाय कि तुम कहां रहते हो ? तो क्या उत्तर दोगे ? हम मुरेनामें रहते हैं। यह भेदनयका उत्तर है, हम घरमें रहते हैं यह भेदनयका उत्तर है और हम पतलून कोटमें रहते हैं यह भी भेदनयका उत्तर है और शरीरमें रहते हैं यह भी भेदनयका उत्तर है, पर हम अपने ज्ञानानन्दस्वरूपमें रहते हैं यह अभेदनयका उत्तर है। यह परमात्मा देहमें बसता है और देहमें नहीं बसता है। भेदनयका नाम है व्यवहारनय और अभेदनयका नाम है निश्चयनय। व्यवहारनय दो तरहके हैं (१) असद्भूतव्यवहार और (२) सद्व्यवहार। जिस आत्माके ज्ञान-दर्शन गुण है यह सद्भूत व्यवहार है और आत्माके शरीर है यह असद्भूत व्यवहार हैं, हैं तो नहीं भिन्न चीजें ? और आत्माके शरीर है यह है अनुपचारित असद्भूतव्यवहार क्योंकि आत्मा शरीरमें है ना ? अभी आपसे कहें कि शरीर तो वहीं बैठा रहने दो और आपकी आत्मा कुछ यहां खिसक आए तो क्या आ जायगा ? और आपका मकान है यह उपचारित असद्व्यवहार है। बिल्कुल झूठा. सम्बंध भी कुछ नहीं तो यह आत्मा देहमें बसता है यह है अनुपचरित असद्भूतव्यवहार, और शुद्ध निश्चयनयसे अपने देहसे भिन्न जो स्वात्मा है, निज आत्मद्रव्य है उसमें बसता है तो हे जीव ! तुम अपने स्वरूपमें बसने वाले अपने ज्ञानप्रकाशको देखो वही परमात्मा है। परमात्माका स्वरूप एक समवशरणको मनमें सोचकर उनकी गंधकुटीमें विराजमान एक मुद्राको देखकर कहते हैं कि हमने परमात्माको देख लिया। और कोई उस गंधकुटीमें विराजमान उस मुद्राके भीतर केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तशक्तिसम्पन्न एक आत्मद्रव्यको देखकर कहते हैं कि हमने परमात्माको देखा तो कोई ऐसे अनन्त विकाशका मूल आधारभूत चैतन्यशक्तिको ही मात्र उपयोगमें लेकर अन्य विकल्पोंसे हटकर उस भवमें स्थिर होकर जो निर्विकल्प चित् प्रकाश अनुभवमें आता है उसको देखकर कहते हैं कि हमने परमात्मको देख लिया। ये तीन भूमिकायें परमात्मामें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट रूपसे देखनेकी हैं। किसी भी चीजको जानो जब तक अपने ज्ञानमें न उतर जाय तब तक उसका जानना नहीं होता। ऐसे परमात्माको हम निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर भावोंका जैसा वह परमात्मदेव अपने स्वरूपमें है इसी प्रकार यह कारणपरमात्मदेव मेरे स्वरूपमें विराजमान है ? जो अपनेको छोटा अनुभव करे उससे छोटी ही बात प्रकट होगी और जो अपनेको महान् अनुभवता है उससे बड़ी बात ही प्रकट होगी। छोटे कुल वाले चूंकि अपनेमें छोटेपनका अनुभव करते हैं और अपनी छोटी अवस्थाको अनुभवते हुए भी अपनेको महान् माने तो उससे बड़ी बात प्रकट नहीं होती। जैसा मेरा महान् स्वरूप है उस रूप यदि मैं अपनेको अनुभऊं तो उससे उत्तम बात प्रकट होगी। जैसे जो अपनेको ऐसा मानता है कि मैं स्त्री हूं और उससे कहीं व्याख्यान देनेको कहें तो उसमें तो शब्द आयेंगे मैं गई, खाई, सुनी। ये स्त्रीलिङ्गके शब्द आयेंगे। शब्द बोलनेमें उसे ऐसा विश्वास है कि मैं स्त्री हूं। पुरुषको पकड़कर नाटकमें जब स्त्रीका पार्ट करवाया जाता है तो पहिले उसे बोलना सिखा देवेंगे तब बोल पायगा और उसमें भी मौके पर गया, चला आदि शब्द बोल देगा। जो अपनेको कुटुम्बका पालनहार हूं ऐसा भ्रम किए हुए है वह कुटुम्बके पालनेका श्रम करेगा। थक कर भी करेगा, अपने जीवनको आफतमें डालकर भी करेगा क्योंकि हम विश्वास ऐसा बनाए है कि वह अपनी स्वतंत्रताका अनुभव नहीं कर सकता। जो अपनेको ऐसा अनुभवता है कि मैं मनुष्य हूं तब वह मनुष्यके योग्य व्यवहार करेगा और जो इस मनुष्यदेहको भी पा करके ज्ञानबलसे अन्तरमें चैतन्यस्वभावमात्र मैं हूं, ऐसा तकेगा उसके शुद्धज्ञानवृत्तिकी बात जगने लगेगी। सम्यक्त्वमें यही होता है कि वह अन्तरमें अपनी प्रतीतिमें यह विश्वास बनाए हुए रहता है कि मैं एकस्वरूप एकाकी चैतन्यस्वभावमय चेतनसत् हूं, यह विश्वास मेरे अन्दरसे बनता नहीं है। इस कारण अनेक काम करके भी जितना रागांश है उतना तो उसका बंध है पर जितने सम्यक्त्वके

http://sahjanandvarnishastra.org/

कारण स्वरूपाचरण हैं उतना वह बंधसे रहित है, तो कल्याणके लिए दो बातोंका स्पष्ट निर्णय होना चाहिए और अन्तरका उत्कृष्ट निर्णय होना चाहिए कि मैं क्या हूं और मुझे वास्तवमें करना क्या है ? इन दो बातोंका स्पष्ट निर्णय हो तो फिर चाहे करनेमें गृहस्थीके भी काम रहे हों फ़िर भी वहां शांति व लाभ मिल सकता है क्योंकि विश्वास उसका यथार्थ बना हुआ है। श्री रामचन्द्र जी महाराज बलभद्र भाई लक्ष्मणके वियोगमें कितना परेशान रहे फिर भी विश्वासके रुपमें निजशुद्धज्ञायकस्वभावकी प्रतीति बनी थी। यद्यपि रागका इतना तीव्र उदय था कि अप्रत्याख्यानावरणके इस रागकी प्रीतिको व्यवहारिक रुप नहीं होने दिया फिर भी प्रतीति अंतः छिपी हुई प्रबला थी। इस कारण सुनते ही एकदम सुलझ गये। अपने आपको सोचो कि मैं क्या हूं ? मैं इतने बच्चों वाला हूं यह सोचना तो अपनेको खतरेमें डालना है, अपनेको पतनकी ओर ले जाना है। यह उपयोग और लौकिक व्यवस्थाके नाते हमारा पालन होता है, पर और तत्व जुदा है, कर्म जुदा है। जैसे जगतके अन्य जीव मेरे स्वरूपसे अत्यन्त भिन्न हैं इसी प्रकार घरमें पैदा हुए ये जीव भी मेरे स्वरूपसे उतने ही अत्यन्त भिन्न हैं। मैं तो इन सबसे न्यारा एक शुद्ध चैतन्यस्वभावमय हूं. प्रतीति अन्तरमें यह होनी चाहिए। यह बात नहीं है कि ऐसी प्रतीति साधुके जुम्मे है, यह तो आत्मासे सम्बन्ध रखने वाली बात है। घरमें रहते हुए भी बच्चोंको गोदमें लिए हुए भी प्रतीति बनाओ कि मैं तो सबसे न्यारा शुद्ध चैतन्यमात्र हूं। ऐसे प्रतीति और ऐसा उपयोग बनानेमें बड़ा पुरुषार्थ करना पडता है। बीचमें बाधक अनुमान होने व ले इन परपदार्थोंको पार करते हुए जाना पड़ता है। उपयोगमें अंतःस्वभावकी दृष्टि करके विश्राम करना होता है। हे जीव ! तू नित्यानन्दस्वरूप रागद्वेषरहित निर्विकल्प समाधिमें ठहर कर ऐसी भावना तो भी कि मैं अपने स्वरूपमें रहता हूं। देखो ध्यानके अभ्याससे समय जो पृथ्वीधारण अग्निधारण जलधारण और वायुधारण उपायसे ध्यान किया जाता है वह क्या है ? कोई ध्यानी ऐसा सोचे कि इस दुनियांके बीचमें जम्बुद्वीपके बराबर एक समुद्र है और उसमें मेरुपर्वतके बराबर एक कमल कर्णिका है उसमें सिंहासन है उसमें मैं आकार विराजमान हूं, ध्यान कर रहा हूं। यद्यपि ऐसा सोचते हुए जमीनकी सुधि भूल जाती है। शरीरकी भी सुधि भूलकर भाररहित बिल्कुल हल्का एक ज्ञानप्रकाशमात्र अपनेको तकता है फिर भी बतलावो क्या वहां समुद्र है ? क्या वहां सिंहासन है ? केवल ध्यानमें पृथ्वी, ध्यानमें पद्धतिको अपनाकर उपयोगमें वह बहुत सा लाभ ले चुका है। यह उपयोग वृक्षका तरह आपको मनमाना फल देने वाला है पर इस उपयोगसे विपत्तिकी ही भीख मांगी जाय तो विपत्ति मिलती है और समृद्धि मांगी जाय तो समृद्धि मिलती है। परपदार्थोंकी चिंता करके उनकी प्रतीक्षा करके जो चीज चाही जाती है वह विपत्तिकी भेंट चाही जा रही है। एक कोई मुसाफ़िर था। गर्मीके दिन थे। नीचे गर्मी ऊपर गर्मी, अब चलता हुआ यह देखता है कि कोई छायाका पेड़ हो, छायाका वृक्ष मिला, वह ठहर गया, वह था कल्पवृक्ष। उसे कुछ पता नहीं, सो सोचता है कि छाया तो मिल गयी, थोड़ी हवा चल जाय तो बड़ा अच्छा हो जाय। हवा चल गई। अब सोचता है कि हवा भी चलने लगी अगर थोड़ा जल मिल जाय तो अच्छा हो जाय। जलसे भरा लोटा भी आ गया। अब सोचता है कि पानी भी मिल गया यदि भोजनके लिए कुछ फल मिल जाते तो अच्छा था, फलोंसे सजा सजाया थाल भी आ गया। सोचा कि यहां कोई दिखता भी नहीं है, यह सब कैसे आ जाता है ? कोई भूत तो यहां नहीं रहता, सो भूत भी आ गया। सोचा कि मुझे खा न जाय तो खा भी गया। जैसा सोच तैसा मिलता है ना ? यही उपयोग है कल्पवृक्षका। भिन्न-भिन्न जो सोचो सो मिले ऐसी बात नहीं है पर जिस जातिकी बात सोचो उस जाति की बात मिलती है। हम परपदार्थोंकी बात सोचें, विपत्तिकी बात सोचें तो विपत्ति मिले और अपने स्वरूपकी बात, परमात्मस्वरूपकी बात सोचें तो आत्मा और परमात्मा मिलेगा। जो चाहो सो मिलेगा। वह आपके उपयोगके आधीन बात है। तब हमें क्या चाहना चाहिए ? शुद्धस्वरूपकी दृष्टि यथार्थ बातका ज्ञान। क्या घर आपका है ? आपका होता तो आपके साथ जाता। घरके सम्बन्धमें ऐसी धारणा न बनावो कि यह मेरा है। यह कुछ दिनके लिए है। यह छोड़कर जाना होगा, मेरा यह कुछ नहीं है, जैसी बात है तैसी समझकर चलो तो उसमें शांति मिलेगी अन्यथा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

शांति न मिलेगी। घरमें जरा भाई भाईमें, देवर जेठानीमें छोटी-छोटी बातोंमें विवाद हो जाता है, इतना धैर्य नहीं है कि जो कुछ मिला है वह पुण्यके प्रतापसे मिला है। सब कुछ पुण्यका प्रसाद है यह मेरी कुछ भावनाका प्रसाद नहीं है। पूर्वकृत भावनाका प्रसाद है। पूर्व समयमें पुण्यका कार्य किया था उसका प्रसाद है। अगर जाता है तो जाने दो इतना धैर्य नहीं हो पाता तो यह क्या है ? यह मूर्छाका परिणाम है। इतनी कठिन मूर्छा कि मेरा मात्र मैं ही हूं ऐसा समझे बिना ममता नहीं हट सकती और जब तक ममता न हटेगी लाखों यत्न करो वे सब फंसानेके ही यत्न होंगे, निकलनेके यत्न न होंगे। निकलनेका यत्न तो मेरा ज्ञानका मार्ग है, सो शुद्ध आत्मासे भिन्न रागादिक बातोंसे क्या लाभ है ? देहमें बसने वाले इस आत्मतत्त्वको निरखो। किसी मित्रसे आपकी मित्रता है और वह आपके पास बैठा हुआ है, बातचीत आपसमें चल रही है कोई समयमें मित्रके कोटपर कोई चींटी दीख जाती है तो उस चींटीको निकाल देते हैं। क्या आप कोटके प्रेमसे चींटी हटाते हैं ? आप तो मित्रके प्रेमसे चींटी हटाते हैं। तो इस देहमें बसने वाला जो आत्मतत्त्व है उसकी प्रीतिके कारण इस देहको भोजन देते हैं। यह ज्ञानी पुरुष प्रायः देहको प्रीतिके कारण देहको भोजन नहीं देता है। ज्ञानी पुरुष तो इस पुरुषदेहमें बसने वाले निज आत्मतत्त्वकी प्रीतिके कारण भोजन देते हैं। यह नरजीवन टिका रहे तो मैं अपने आत्मतत्त्वकी ओर उपासना कर लूं। अज्ञानी तो इस देहको ही सब कुछ समझकर भोजन देता है। ज्ञानी और अज्ञानीकी वृत्तिमें यही अन्तर है। ज्ञानी आत्मा कल्याणके लिए जीता है पर अज्ञानी आत्मा खानेके लिए जीता है। तो खूब खावो। यह भी खानेको मिले खूब विकल्प बनाकर मौज मानकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। एक कुत्ता और शेर दोनों जानवरोंको तो जानते होंगे ? कुत्ता कितना उपकारी जानवर है, वह रोटीके दो टुकड़ोंमें कितनी रात दिन सेवा करता है, बड़े विनयसे रहेगा, चोरोंसे रक्षा करेगा। और सिंहको देखो वह कितना उपकारी जीव है कि जिसके देखनेसे मनुष्य जान छोड़ता है, कहो वह शेर खा भी डाले। तो दोनों जानवरोंमें अच्छा कौन जानवर है, कुत्ता। क्योंकि कुत्ता बड़ा उपकारी है, विनयशील है। शेर तो दूसरोंकी जान भी खतम कर देता है। पर किसी मनुष्यकी अगर तारीफ करो। अगर कहो कि फलाने सेठ तो कुत्तेके समान है। वैसे कुत्ता बड़ा उपकारी जानवर होता है, इसमें प्रशंसा ही सेठकी हुई, पर सेठ खुश होंगे क्या ? नहीं। सेठ जी गाली देने लगेंगे। और अगर सेठ जी को यह कह दो कि सेठ जी तो शेरके समान है तो यद्यपि यह गाली हुई क्योंकि शेर बड़ा उपकारी होता है, दूसरोंकी जान भी लेता है पर सेठ जी उसे सुनकर खुश होंगे। और कुत्तेके समान कहनेमें कोई नहीं सुनना चाहता। वैसे कुत्ता बड़ा उपकारी है, रोटीके दो टुकड़ों पर बड़ा उपकार करता है पर उसकी उपमा कोई नहीं सुनना चाहते हैं। यह फर्क क्यों आ गया ? यह फर्क है विवेक और अविवेकका। कुत्तेमें अनेक गुण हैं पर एक अविवेक है। उसे लाठीसे मारा जाय तो वह लाठीको चबाने लगता है। वह समझता है कि लाठी ही मेरा दुश्मन है, वह यह नहीं समझता है कि मुझे मारने वाला मनुष्य है। और शेरको लाठीसे मारो, तलवारसे मारो तो वह तलवार और लाठीसे न बोलकर मनुष्य पर ही प्रहार करता है। क्योंकि उसके विवेक है, वह जानता है कि मेरा मारने वाला मनुष्य है। इसी प्रकारसे अविवेकी पुरुष यह सोचता है कि मेरे ऊपर संकट डालने वाले ये दूसरे हैं पर विवेकी पुरुष यह जानता है कि मेरे ऊपर सकट मेरे ही भावोंसे होते हैं। वे कर्म भी मेरे ही द्वारा उपार्जित है। इसलिए मेरे दुःखका कारण मैं ही बना करता हूं। दूसरे जीव मेरे दुःख के कारण नहीं हैं। कोई यह निश्चय कर ले कि मेरे अपराधसे ही मुझे दुःख होते हैं तो उसे इस जीवनमें बहुत शांति है। और अगर यह निश्चय है कि मुझे दुःख दूसरोंके द्वारा होते हैं तो अशांति है तो इसमें यह तात्पर्य बताया है कि देहमें बसता हुआ भी यह आत्मा निश्चयसे देहरूप नहीं होता है। ऐसा ही अपने अस्तित्वसे रचा गया यह निज शुद्ध आत्मतत्त्व उपादेय है।

जीवाजीवमएक्कु करि लक्खण भेएं भेउ।
जो परु सो भणमि मुणि आपा अप्पु अभेउ ॥३०॥

http://www.jainkosh.org
Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव और अजीवको एक न कर डालो, इसी बातको इस दोहेमें कह रहे हैं। जीव इस शरीरको लक्ष्यमें लेकर यही मानता है कि मैं यह शरीर ही जीव हूं तो इसका अर्थ है कि जीव और अजीवको एक न कर डालो। सो जीव और अजीवमें एक मत बनाओ। अपना ज्ञान जगाये रहो, लक्षणके भेदसे उनमें भेद है क्योंकि जीवका लक्षण तो रूप रस गंध स्पर्श रहित शुद्ध चैतन्य है और अजीवका स्वरूप जिसमें चेतन नहीं हैं सो अजीव है। कुन्दकुन्द स्वामीने भी बताया है कि जिसमें रूप नहीं, रस नहीं, गंध नहीं, स्पर्श नहीं किन्तु चेतना गुण है शब्द भी नहीं हैं और किसी चिन्हके द्वारा पहिचाना नहीं जाता, कोई एक निर्दिष्ट आकार नहीं। कोई जीवका निजी आकार है क्या? अगर जीवका निजी कोई आकार होता तो कल्पना करो कि सांप चींटी आदि जीवोंमें कैसे पहुंच जाय? जीवका निजी आकार कुछ नहीं है। वह तो जिस शरीरमें जाता है उस ही शरीर रूप हो जाता है। जैसा लम्बा चौड़ा शरीरका आकार हो वैसा ही लम्बा चौड़ा आकार उस जीवके आकारमें हो जाता है। बड़े शरीर वाला जीव मरकर छोटे शरीर वाले जीवमें जाय तो आत्माके प्रदेश संकुचित होकर उस शरीर प्रमाण हो जायेंगे। दो ही बातें कुन्द स्वामीने कहीं कि उसमें पुद्गलका कोई गुण नहीं, पर्याय नहीं और किसी चिन्हके द्वारा ज्ञानमें नहीं आता और निजी आकार भी जिसका कुछ नहीं है ऐसा तो जीवका लक्षण है और जीवके इस स्वरूपसे विपरीत जीवका लक्षण है। वे अजीव दो किस्मके हैं।

जीव सम्बन्धी सत और एक जीव सम्बन्ध रहित। जैसेके शरीर है, राग है, विकार है ये सब जीव सम्बन्धी अजीव हैं। जिसमें शुद्धचैतन्य नहीं है वह अजीव कहलाता है। देहका शुद्धचैतन्यस्वरूप है? नहीं है। देह का स्वभाव तो रस रूप गंध रहित है। तो वह पुद्गल नहीं हो सकता और रागादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन हैं फिर भी वे पुद्गलोंका निमित्त पाये बिना नहीं होते। इसलिए स्वभावसे तो उत्पन्न होता नहीं सो जीवको तो कहाये ही नहीं और उपाधिके सम्बन्धसे तो अजीव कहलाता है। देहका शुद्ध चैतन्यस्वरूप है? नहीं है। देहका स्वभाव तो रस रूप गंध रहित है तो वह पुद्गल नहीं हो सकता और रागादिक भाव यद्यपि जीवके परिणमन हैं फिर भी वे पुद्गलोंका निमित्त पाये बिना नहीं होते। इसलिए स्वभावसे तो उत्पन्न होता नहीं सो जीवसे तो कहाये ही नहीं और उपाधिके सम्बन्धसे तो अजीव कहलाया। शुद्ध चैतन्यस्वरूप जिसमें न पाया जाय उसे अजीव कहते हैं। शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अर्थ है कि जिसमें रागद्वेष नहीं मोह नहीं, कल्पनाएं नहीं, केवल अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव है। इतना ही मात्र जीवका लक्षण है और उसमें ही अपनी शरण माना है कि वह शुद्ध चैतन्यस्वरूप मेरे निगाहमें हो। यही धर्मका पालन है तो जीव सम्बन्धी अजीव क्या? शरीर और रागादिक भाव और अजीव सम्बन्ध अजीव क्या है? पुद्गलद्रव्य धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य इन ५ प्रकारके जीवद्रव्योंमें धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और आकाशद्रव्य तो एक ही एक हैं और कालद्रव्य अनगिनते हैं। लोकाकाशके एक-एक द्रव्यपर ठहरे हैं और पुद्गल-द्रव्य अनन्त हैं। एक छोटा तिनका या कंकड़ होवे तो सब अजीव हैं ही, पर मेरे लिए तो दुनियांमें जितने जीव हैं वे भी सब अजीव हैं। वे जीव मैं नहीं हूं। मुझमें जो रागादिक विकार उत्पन्न होते हैं वे विकार भी जीव नहीं हैं। मैं तो शुद्ध चेतनमात्र एक अचेतन सत् हूं। ऐसा अपने आपके आत्मामें विश्वास हो तो बहुत निकटमें ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। तो जीवके लक्षणसे अजीवका लक्षण न्यारा है। और अजीवसे न्यारा अपने जीवको पहिचान लिया तो समझो कि हमने सब कुछ पा लिया। मोहसे जिनमें कल्पनाएं कर लीं कि यह मेरा है, स्त्री है उनकी चाकरी भी अच्छी करली लेकिन लाभ कुछ नहीं मिलेगा। ज्योंके त्यों दीन गरीब भिखारी बने रहे, मर गए, नया जन्म पा लिया, सारी बातें मोह ही मोहकी करते रहे। जन्ममरणका यही चक्र चलता रहा इसलिए इस चेतनाको पहिचान कर मोहमें शिथिलता करना चाहिए। सो मोह शिथिल तभी हो सकता है जब यह समझमें आ जाय कि मै तो मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं, औरोंसे मेरा वास्ता नहीं है और जो पदार्थ मेरे साथ हैं वे साथ रहें किन्तु उनसे मेरा कुछ हित

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है हमारा हित तो अपने आपके शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी दृष्टिमें है वे मैं नहीं हूं। जिसमें माना कि यह मैं हूं तो उसमें वेदना होगी, मुक्ति नहीं हो सकती है। जैसे घरमें दो चार जीवोंको मान लिया कि ये मैं हूं तो उनके मोहमें आकर यह जीव केवल अपना श्रम ही श्रम करेगा। अपनेको शांतिमय नहीं रख सकता। शांतिका मार्ग है सर्वप्रथम मोहका छूटना। मोह छूटे ता शांति मिले।

अब कोई कहे कि मोह तो साधुके ही छूटता है गृहस्थके नहीं छूटता है तो यह बात बिल्कुल गलत है। मोह तो गृहस्थके भी छूटता है किन्तु मोह छोड़नेमें ज्ञानप्रकाश की ही जरुरत है। चारित्र और व्रत तप आदि ये न हों तो भी मोह छूट सकता है। मोह माने क्या है? परवस्तुमें एक कल्पना कर लेना कि यह मैं हूं अथवा यह मेरा है। बस यह बात छूट गई तो मोह छूट गया। मोह छुटाना तो सरल है। चाहे राग देरमें छूटें किन्तु मोह शीघ्र छूट सकता है। और यह एक ही मात्र उपायकी चीज है कि मोह तो नियमसे छोड़ दो। यह बात आप सब गृहस्थों से कही जा रही है। इसमें यह शंका न करो कि गृहस्थीमें मोह छूटा नहीं करता। मोह छोड़ दो तो धीरे-धीरे राग भी शिथिल हो जायगा। और जब जो हो सो हो पर मोह रंच भी न रहे। गृहस्थावस्थामें भी रहते हुए यह तो विश्वास बनाए रहो कि जितने परिग्रहके जीवोंका समागम हुआ है उनका सत् उनसे ही है और वे खुद अपने आपमें परिणमते रहते हैं। उनके साथ उनका भाग्य है। उनका सुख दु:ख वे अकेले ही भोगते हैं किस गतिसे आये हैं यह उनकी चीज है, जिस गतिसे जायेंगे। आपका किसी भी परजीवमें अधिकार नहीं है कि मैं इनका इस प्रकारका परिणाम बनाए हूं। स्त्रीका कषाय और प्रकारका, पुरुषका कषाय और प्रकारका, उनका ही कषाय नहीं मिल सकता। अपने ही परिणामोंके अनुकूल दूसरोंको नहीं परिणमा सकते फिर और जीवोंको तो परिणमाओगे ही क्या? तो तब मेरा कहीं कुछ नहीं है ऐसा ही विश्वास बना लो कि मैं सर्वपदार्थोंसे न्यारा केवल चेतन स्वभाव मात्र हूं। ये मुझमें जो रागादिक भाव होते हैं ये भी तो सदा नहीं रहते। होते हैं मिट जाते हैं और होते हैं अपनेको बर्बाद करनेके लिए होते हैं पर उपाधिका निमित्त पाकर होते हैं। इसलिए भैया इतनी हिम्मत अन्तरमें बनाओ कि अन्तर यह अनुभव करने लगे कि मेरा तो मात्र मैं ही हूं। मुझसे सभी भिन्न हैं। जो कुछ है वह मेरा नहीं है। रही सम्बंधकी बात। सो जब तक राग है तब तक सम्बंध है। मोह छूटना सच्चे ज्ञानपर निर्भर है। स्वरूप न्यारा है. मेरा स्वरूप न्यारा है और जितने भी परद्रव्य हैं उनका स्वरूप न्यारा है। इतनी बात समझलो तो इसीका नाम मोहका त्याग है। अगर यही बात नहीं बन सकती तो फिर कल्याणकी और क्या बात हो सकती है? ये तो रागादिक तत्त्व आत्मामें होते हैं फिर भी आत्माके स्वरूपसे भिन्न हैं। इस प्रकरणसे क्या जानना है कि शुद्ध लक्षणसे सत् जो शुद्ध आत्मस्वरूप है, वह ही उपादेय है। यह भेद विज्ञानमें बताया जा रहा है कि मैं वास्तवमें क्या हूं? यह जाने बिना धर्म नहीं हो सकेगा। किसे धर्म करना है? कहां धर्म हुआ करता है? इसका ही पता नहीं है तो धर्म क्या है? इसलिए मोक्षकी चाह करने वाले धर्ममें प्रगति चाहने वाले पुरुष सबसे पहिले यह निर्णय करें कि मैं क्या हूं? अच्छा मैं क्या हूं? इसके जाननेका एक उपाय बतलायें। अच्छा पहिले तुम यही बतलावो कि तुम सदा रहना चाहते हो या चाहते हो कि मैं किसी दिन बिल्कुल मिट जाऊं, नष्ट हो जाऊं? बतलावो क्या चाहते हो? अगर धनी हो तो यह जानते हो कि मैं सदा धनी रहा हूं। अगर तुम्हारा सत् है, अस्तित्व है तो यह चाहते हो ना कि मेरा अस्तित्व सदा रहा है। जीवकी अंत: से यह चाह होती है कि मैं सदा रहा हूं, मिट न जाऊं। तो समझो कि जीव वही है जो सदा रहता हो मिटता नहीं है, बस एक पहिचान हाथमें ले लो। मैं वह हूं जिस रूपमें सदा रहा हूं, मैं मिटता नहीं हूं, बस इतना सा एक सूत्र बना लो अपनी हिन्दीमें। मैं वह हूं जो ध्रुव हूं। जो सदा रहा हूं। मैं मिटने वाला नहीं हूं। बस इस आधार पर अब सब चीजोंकी परीक्षा करलो। क्या यह धन वैभव मैं हूं? मैंने अभी क्या लक्षण बताया? जो मेरे साथ सदा रहता हो और मिटने वाला न हो। यह धन वैभव तो मिटने वाला है। नियमसे मिटेगा। आपकी जिन्दगीमें मिट जाय या आपकी जिन्दगी पूरी पूरी करके मरण हो जाय तब मिट जाय पर धन वैभवका प्रसंग

http://sahjanandvarnishastra.org/

नियमसे मिटने वाला है। वह बुद्धिवान् पुरुष है जो जानता है कि यह जायदादी छूट जायगी, तो वह अपने जीवन में ही छोड़नेका अभ्यास करता है।

वह मैं हूं जो सदा काल रहता हूं, ध्रुव हूं, सो जो शुद्ध लक्षण करके संयुक्त है, केवल चैतन्यमात्र है वह तो मैं आत्मा हूं और वह ही उपादेय है। मेरे अलावा और चीजें रहते हुए भी अंतरंगमें यह समझो कि ये सब हेय हैं। छूट जायेंगा और छोड़ने के योग्य हैं भेद विज्ञान असलमें किया जाता है स्वभावसे और अभावसे। यह बात जल्दी समझमें आ जायगी कि मकान मेरा नहीं है क्योंकि मकान दूसरी जगह खड़ा है, मैं इस जगह बैठा हूं। यह बात भी जल्दी समझमें आ जायगी कि यह शरीर मैं नहीं हूं। दूसरों को देखते है ना कि मर जाते हैं, शरीर को जलाते जाते हैं, तो मैं शरीर नहीं हूं, यह भेद विज्ञान भी सुगमतासे हो जाता है। और मैं रागादिक विकार नहीं हूं, यह भेद विज्ञान बडी कठिनाईसे होता है। यह जीव वास्तव में किसी परपदार्थमें राग नहीं करता चाहे मिथ्या दृष्टी क्यों न हो किन्तु परपदार्थोंके सम्बन्धमें जो उसने कल्पनाएं बनाई, राग बनाया, कुछ किया नहीं किन्तु परपदार्थोंका ख्याल करके राग भर बनाया है उस रागमें यह जीव मस्त है, परपदार्थोंमें यह जीव नहीं लगा है, यह निश्चयसे बात जानो। कोई भी जीव किसी पदार्थसे नहीं लगा है किन्तु परपदार्थोंके बारेमें जो विकल्प बनाया है, उन विकल्पोंमें राग किए हुए है। सो परपदार्थोंका छोड़ना क्या है? जो अपने आपमें विकल्प बनाया है उन रागोंको छोड़ना है। यह राग कैसे छूटें? मोह मिटने पर छूटेगा। मोह कैसे मिटेगा? सबका यथार्थ ज्ञान होने पर मोह मिटेगा। सबका यथार्थ ज्ञान कैसे होगा? उन सबके स्वरूपको समझनेमें उपयोग लगाओ तो मिटेगा। सबका स्वरूप कैसा है? सो देख लो, सब न्यारे हैं कि नहीं। तुम्हारे आधीन तो तुम्हारे बच्चेका भी परिणाम नहीं, ऊधम न करो। अगर ऐसा चित्तमें ख्याल सूझता रहता तो वह ऊधम करनेसे रुकता नहीं है।

आपका अधिकार तो जिसको आप अपना प्रेमी समझते हो उस पर भी नहीं है। वे अत्यन्त भिन्न हैं। रंच भी सम्बंध नहीं है। उनका परिणमन भी आपके हाथ नहीं है, आपका अन्य पदार्थोंमें सम्बध ही क्या होगा? सो किसी क्षण शुद्ध हृदय करके असार और असरण पदार्थोंका विकल्प त्याग करके अपने आपके शुद्ध ज्ञानके होनेका दर्शन करो तो यही शांतिका उपाय है ऐसी श्रद्धाके रखते हुए गृहस्थोचित कार्य करो, धन कमालो मगर कमानेका टाइम रखो कि १० बजेसे ४ बजे तक। जितना समय आप उचित समझते हो व्यापारमें उतना समय रखो, पर २४ घटे तो न फंसे रहो। यदि २४ घटे विकल्पोंमें ही उपयोग लगाया तो फिर मरण तो होगा ही। मरणके बाद फिर क्या हाथ आयगा? जैसा बनना होगा वैसा बनना पड़ेगा। और धर्ममें समय लगावो तो कुछ हाथ भी लगेगा। धर्म में चाहे दो तीन घटेका ही समय लगावो मगर वह समय सुव्यवस्थित रूपसे लगाना चाहिए। धर्मके समयमें धनका परिवारका, किसीका भी विकल्प न रखो। धर्म करना है, मुझे अपने उत्थानका कार्य करना है, मुझे केवल निजी-ज्ञान रसका पान करना है विषय, विकल्प चाह आदिक जो विकार हैं वो उन विकारोंको अपनेमें नहीं आने देना है, सो यह हिम्मत तभी बन पायगी जब यह ज्ञान हो जायगा कि मैं मात्र शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूं, इसमें कोई दूसरी चीज नहीं। इसी तरह पालन पोषणका काम हो तो समय निश्चित रखो, प्रयोजन यह है कि धर्मका समय निश्चत रखो और उसमें कुछ विकल्प जाल न लाकरके एक क्षणसे धर्म कार्य करो। उस धर्मके कार्यमें कई बातें लगा लो तो आपका मन लगेगा। थोड़ा देवदर्शनमें और देवभक्तिमें जरा मन लगावो। अब वह ही समय पूजनका है, वह ही समय दर्शनका है पूजन करने वाले जोर जोरसे पढ़ते हैं तो इसका अर्थ है कि दर्शन करने वालों पर दया नहीं रख रहे हैं। आप सोचें कि जिसमें इतना प्रेम नहीं है कि दर्शन करने वाले भी आ रहे हैं इनका भी उपयोग शुद्ध रहे और प्रभुके दर्शनका लाभ उठायें, इतनी दया जब अपने धर्मात्मा जनोंपर नहीं है तो हमें बतलावो कि चिल्लानेसे भगवान्के पास शब्द नहीं पहुंच जायेंगे। पूजा तो अपने भावोंकी चीज है। इसी तरह जब दर्शन करने वाले भी जब धीरे-धीरे दर्शन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पाठ पढ़ने हैं तो वे अपना पूरा नियम बनाएं। सो प्रभुके गुणोंका स्मरण करके उनके स्वरूपसे अपने स्वरूपकी तुलना करो पर विकल्प छोड़कर केवलज्ञान प्रकाश स्वरूपको जानो सो दर्शन है। गुरुवोंकी उपासना करो, गुरुवोंका सत्संग करो। उनसे कोई शिक्षा लो, यह गुरु उपासना है। याने कोई प्रकारका अपने धर्मका पालन करो, स्वाध्याय करो, एकचित्त होकर किसी एक ग्रन्थका विधिपूर्वक क्रमसे स्वाध्याय करो। समझमें आये तो अपनी नोटबुकमें नोट कर लो।

कोई विवेक ज्ञान बल मिले तब समझ लो और संयम करो। जो सुगमतासे घर पर खानेको मिलना या उसपर संतोष रहे और अपने आपमें इच्छा न बनाओ कि मैं भी कोई भोग भोगूं यही संयम है। और कोई इच्छा होती हो तो तुरंत उसके खिलाफ बन जावो। खीर खानेकी इच्छा हुई तो खीरका त्याग है। इसी प्रकार अपने मनका नियंत्रण करनेकी कोशिश करो और गृहस्थके सबसे बड़े तप दो ही हैं कि जो पुण्योदयसे मिला उसमें ही दान पुण्य कर लो, अपने खाने पीनेका विभाग रखो, कर्ज लेकर न खावो स्वादके लोभमें आकर खर्च मत बढ़ावो। सात्विक रहन सहनमें रहो। ज्यादा पैसा है तो परोपकार करो। जो जो तुम्हें मिला है उसमें यह विश्वास रखो कि ये सब मिट जाने वाली चीजें हैं. ये ही तो बड़े तप हैं। एक कर्तव्य है दानका। अपने कुटुम्ब पर जितना खर्च होता है कमसे कम उतना खर्च तो दुनियांके और सब जीवोंमें करो। सारा श्रम केवल माने हुए घरके चार जीवों पर होता है तो यह मोह नहीं है तो और क्या है? और जीवोंको भी तो देखो, सबका स्वरूप एक है तो इसी प्रकार अपनी शक्ति माफिक धर्मकाम करते हुए अपने इस जीवनको धर्मयुक्त बनाओ।

हम आप जितने भी जीव हैं उन सबकी एक ही अभिलाषा है कि समस्त दुःखोंसे छूट जावें। तो हम दुःखों से छूटना चाहते हैं तो दुःखोंको ही तो जान लें कि दुःख क्या है? कोई पुरुष दुःखको ही सुख मान ले तो फिर उससे छूटनेकी इच्छा क्यों करेगा? इसलिए दुःख क्या है इतनी पहिचान भली प्रकारसे समझ लेना चाहिए। दुःख क्या है, जिसमें क्षोभ हो वह दुःख। अब क्षोभ उपसर्गके समय भी होता है। कोई कभी विषयोंमें बाधा डाले उसमें भी होता है। सो ये सब बातें दुःख हैं तो दुनिया जानती है कि अगर किसी प्रकारके विषयोंके भोगनेका संकट किया है तो वहां भी क्षोभ होता है और किसी विषयको भोग रहे हो तो वहां भी क्षोभ होता है। बढ़िया भोजन जिसे बर्फी पेड़ा कह लो। अब भी पेड़ा बढ़िया भोजन तो है नहीं। कहीं सुना है कि कोई रबड़ी खोवा नहीं बना सकता है, यह सरकार प्रतिबंध लगावेगी। जीवोंकी आदत है कि स्वादके लिए स्वादिष्ट चीजोंको भी खराब कर दे।

यदि साग है तो उसमें नमक मिर्च डालकर खाते हैं, दाल जो होती है उसका छिलका बड़ा स्वास्थ्यप्रद होता है पर स्वादके लिए उसे कूटकर छिलका निकालकर खाते हैं। अच्छा ये जो स्वादके लिए पेड़ा बर्फी लाते हैं वे भी आनन्दसे नहीं खाते हैं, उनके खानेमें भी क्षोभ होता है। कोई मनुष्य इन्हें शांतिसे नहीं खा सकता है। शांति हो तो वहां प्रवृत्तिका काम ही क्या है। क्षोभ होता है विषयोंकी भक्तिमें भी क्षोभ होता है और विषय न मिलें और इच्छा बनी हो तो वहां भी मोक्ष होता है। जहां जहां क्षोभ है वहां वहां दुःख है। हमें दुःखोंसे छूटना है तो हमारा भाव यह होना चाहिए कि मुझे इन परसे छूटना है। चाह विषयोंकी हो, इज्जतकी हो, प्रतिष्ठाकी हो, चार लोगों में हम भले जचे, हमारी इज्जत हो इन सबसे छूटना है। इस प्रकारकी भावना हो। गृहस्थावस्थामें भी रहकर सच्ची बात तो जानना चाहिए जितनी पूरी बातें साधु जानते हैं। हम बराबर शुद्धचारित्र गृहस्थावस्थामें नहीं पाल सकते हैं मगर इतनी बात जाननेमे आ जाये कि मैं एक शुद्ध जानन हूं। जानना तो ज्ञान गुणका काम है। ज्ञान हममें भी है, साधुमें भी है। ज्ञानसे हम पूरा सही जानकर और जितने ख्याल हैं उन सब ख्यालोंको गलत मानकर हमें दुःखोंसे छूटना है। तो दुःख क्या है? किसी भी पदार्थका ख्याल हो रहा हो तो वह दुःखोंमें शामिल है। हम क्यों ५० पदार्थोंमें से ४० को छोड़कर १० का ख्याल करते हैं? ख्याल करते हो तो ५० का करो। नहीं करना है तो एकका भी न करो। जगत्के अनन्तजीवोंमें से तुम घरके १०–५ जीवोंका ही ख्याल क्यों करो? ख्याल करते हो तो सबका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करो और नहीं करते हो तो एकका भी न करो। जो यह ख्याल होता है यह साबित करता है कि खनके अन्दर राग है, इच्छा है, मोह है तो जब तक परवस्तुवोंका हमें ख्याल है, किन्हीं बाह्य पदार्थोंकी हमें इच्छा है तब तक हम दुःखी हैं। हमें दुःखोंसे छूटना है इसका अर्थ यह है कि हमें शरीरादिक बाह्य पदार्थोंकी अभिलाषासे छूटना है। जो बाह्य पदार्थोंकी अभिलाषा करता है उस जीवको कहते हैं बहिरात्मा और जो जीव अंतरंगमें बाह्य पदार्थोंकी रुचि नहीं करता है किन्तु अपने ज्ञानस्वभावकी रुचि करता है उसको कहते हैं अंतरात्मा और जो अपने ज्ञानस्वभावकी आराधना करके उपासना करके परम हो जाता है, पूर्व विकाश वाला हो जाता है, समस्त विश्वका ज्ञाता हो जाता है उसे कहते हैं परमात्मा। जीव तीन प्रकारके होते हैं। एक हो गया बहिरात्मा, एक हो गया अंतरात्मा और एक हो गया परमात्मा। बहिरात्मा वह है जिसकी रुचि बाहरमें भी होती है। कोई धर्मपर संकट नहीं है कदाचित् धर्मपर संकट आये तो घरकी भी आप परवाह न करके धर्मकी रक्षामें बैठ जाते हैं। अभी देख लो किसी साधुको आहार करानेकी इच्छा हुई तो खाना शुद्ध बनाते हैं और आहारको शुद्ध बनानेका भाव होता है उस समय यदि बच्चा भी रोता है तो यहीं कहते हैं अभी ठहर जावो आधा घंटा, एक घंटा। यह धर्मकी रुचिका द्योतक तो है पर कदाचित् एकदम धर्म पर पूर्ण सकट आ जाये और आपकी धन हानिकी भी बात आ जाय तो तन, मन, धन, सर्व कुछ धर्मके पीछे लगा देनेको तैयार हो जाते हो। इतना धर्मके नामपर अंतरंगमें साहस हो जाता है। और अपने अंतरंगमें ज्ञानस्वभावकी रुचि किए हुए हैं।

इस कारण वह विषयोंमें लग रहा है तो भी अंतरमें अरुचि है। उस अंतरणके विषयोंमें अरुचिके प्रसादसे यह जीव घरमें बसता हुआ भी अनेक कर्मोंको क्षय कर रहा है। उस गृहस्थकी बात कह रहे हैं जिसके ज्ञान जग गया है। वह ज्ञानी गृहस्थ घरमें रहता हुआ भी कर्मोंका क्षय अपनी योग्यता माफिक बराबर कर रहा है। जैसे कोई मुनीम दुकानका सर्व भार संभाल कर भी अंतरणमें उसे धनके प्रति यह विश्वास है कि यह मेरा नहीं है। वह जानता है कि यह सब धन सेठका है। यह धन मेरा नहीं है। इस प्रकार ज्ञानी गृहस्थ घरमें रहता हुआ भी यह जानता है कि यह धन वैभव सब कुछ मेरा नहीं है। मेरा तो मात्र ज्ञानानन्द स्वभावी मैं चेतन सत् हूं। ऐसी जिसकी दृष्टि होती है उसको अन्तरात्मा कहते हैं। जो भी समागम मिले हैं वे साथ तो जायेंगे नहीं। इतना तो सबका निर्णय है कि जिसे लाखोंकी सम्पदा मिली है उसमेंसे एक नया पैसा भी उसके साथ नहीं जायगा। जिसको जितना धन मिला है उसका एक नया पैसा भी साथ नहीं जायगा। गया हो किसीके साथ ता बतलाओ। आप लोगों में से किन्हींके बाबा गुजर गए, पिता गुजर गये, चाचा गुजर गये पर किसीको क्या देखा है कि वे साथमें एक नया पैसा भी ले गये हैं? कोई कहे कि मैं इसे श्रमसे कमाता हूं, इस पर तो मेरा पूरा अधिकार है, यह साथ क्यों नहीं जायगा? तो भाई किसीके साथ नहीं जायगा। जो चीज तुम्हारे साथ नहीं जायगी उन विषयोंको अभीसे समझ लो कि ये मेरे नहीं है, ये वियुक्त होंगे। ये मेरे साथ नहीं चलेंगे। ऐसे विश्वास समागमोंके सम्बन्धमें हो तो कितने ही कर्मोंका क्षय कर लिया। बात वही चल रही है। केवल भावोंका फेर है। मिथ्यादृष्टि भी घरमें रह रहे हों, सम्यग्दृष्टि भी घरमें रह रहे हों, खाना पीना भी साथ चल रहा हो पर अंतरमें इन दोनोंमें अर्थात् मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टिमें महान् अन्तर हो गया है। वह मुनीम दूसरे लोगोंका हिसाब बताता हुआ कहता है कि तुम पर मेरा इतना है। तुम्हारा हमारे पास इतना आया, इतना हमने जमा कर लिया, इतना हमारा तुम पर निकलता है, वचन बोल रहा है पर भीतरकी श्रद्धा और है। भीतरमें यह श्रद्धा है कि मेरा तो इसमें कुछ नहीं है। यह सब सेठका है। पर वचनोंसे बोल रहा है कि मेरा तुम पर इतना निकलता है। वचनोंसे ऐसा कहते हुए भी मुनीमकी श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष भी जिसने यह निर्णय किया है कि एक अणुमात्र भी मेरा नहीं है। मेरा निज स्वरूप ही मेरा है, वह घरमें रहता हुआ यह मेरी स्त्री है, यह मेरा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

घर है, यह मेरा वैभव है, यह मेरी दुकान है। इतनी बातें क्या कहनी नहीं पड़ती ? कहे बिना गुजारा नहीं चलता है पर कहते हुए भी यह श्रद्धा उस सम्यग्दृष्टिके बनी है कि मेरा कुछ नहीं है। जैसे आप मुसाफिरीमें दिल्ली गये। किसी धर्मशालामें एक कमरा मिल गया, आपके प्रेमियोंको भी अलग-अलग कमरे मिल गये। क्या आप उस समय यह नहीं कहते हैं कि यह मेरा कमरा है और यह कमरा आपका है अथवा यह मेरा कमरा है आप दूसरा कमरा ढूढ़ लें पर श्रद्धामें क्या बसा है कि मेरा तो कमरा है नहीं. कल चले जायेंगे। इसी प्रकार सम्यग्दृस्टि घरमें रहता हुआ भी चूंकि जान रहा है कि मेरी आत्माका तो मात्रमें ही आत्मा हूं, जो मेरे साथ सदासे है और सदा तक रहेगा।

इस मेरे स्वरूपके अतिरिक्त परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। जिसके ऐसा ज्ञान है ऐसा अंतरात्मा गृहस्थका क्या यह नहीं कहता है कि यह मेरा घर है दूसरेने घर खरीद लिया है, तो क्या वह रजिष्ट्री कराने नहीं जाता है ? वह यह भी कहता है कि बढ़िया मजबून बनाना जिसमें कोई कमी न रह जाय। होस हवाससे मैंने बेचा है, इसको अच्छी-अच्छी रजिस्ट्री लिख दो। यह सब कुछ करते हैं फिर भी उसकी श्रद्धा यह है कि मेरा कुछ नहीं है। और कभी-कभी अपनी वृत्तियोंमें उसे हंसी भी आ जाती है कि मैं प्रभुके समान अनन्त ऐश्वर्यका स्वामी होकर भी छोटे-छोटे वैभवोंमें कैसा लिप्त हो रहा हूं। ज्ञानी अंतरात्मा अपने श्रद्धानके कारण घरमें भी वह जलमें कमलकी भांति अलिप्त रहता है।

एक दृष्टांत दिया है वेश्याके प्रेमका। वेश्या जिस किसी मुसाफिरको, पुरुषको, वचनोंसे प्रेम दिखाती है पर वेश्याके अंतरंगमें क्या मुसाफिरके प्रति प्रेम है ? रंच भी प्रेम नहीं है। केवल पैसा ठगने के लिए वचन बोलना पड़ रहा है। पर अंतरंगमें प्रेम नहीं है। इसी तरह केवल पद्धतिको ही देखते हैं। यह ज्ञानी गृहस्थ भी सबसे प्रेम के वचन बोलता है किन्तु क्या भीतरमें किसीके प्रति अनुराग है ? नहीं। वह जानता है कि मेरा आत्माका तो मात्र मैं ही हूं। ऐसा ज्ञानी गृहस्थ जिसकी वृत्ति ऐसी है कि पुण्यके उदयके अनुसार आना है आयगा। उसमें ही मैं व्यवस्था बनाऊंगा। मैं उससे अधिककी चाह न करूंगा। मेरे पास जो धन है वह मेरी जरूरतसे ज्यादा है—ज्ञानी यह सोचता है। पर अज्ञानी यह सोचता है कि अभी मेरे पास धन इतना ही है अभी और धन आवे तब मेरा गुजारा चलेगा। किन्तु ज्ञानी सोचता है कि इतना धन भी मेरी आवश्यकतासे बहुत अधिक है। अच्छा हमें यह तो बता दो कि कितना धन हो तो गुजारा चलेगा ? कमेटी बनाकर प्रेसीडेन्ट चुनकर वोट लेकर यह निर्णय करलो कि गुजारा कितनेमें होता है। गुजारा एक गृहस्थका बढ़िया कितनेमें होता है, इसका निर्णय करलो। क्या निर्णय आप दे सकते हैं ? क्या ५० हजारकी जायदादमें गुजारा हो सकता है ? हमने बहुत कम सोचकर लगाया है। तो एक जो हजार-पति नहीं है, सैकड़ापति ही है और घरमें १०-५ प्राणी भी हैं तो उनका गुजारा कैसे चलता है ? उनका भी गुजारा हो रहा है ना ? ज्ञानी सोचता है कि जो मिला है वह भी जरूरतसे ज्यादा मिला है, क्योंकि ऐसा न सोचे तो कोई आकर दे देगा क्या ? जैसे लोग लक्ष्मीकी मूर्ति बनाते हैं और दोनों हाथोंसे रुपया टपकाते हैं ऐसा कोई नहीं है कि ऐसा करनेसे वह मूर्ति रुपया दे दे और न कोई ऐसा लक्ष्मी नामका देव है। इस लक्ष्मीकी पूजा कर लेनेसे उसकी उपासना कर लेनेसे क्या द्रव्य आ जायगा ? इस सनकमें रहने वाले लोगोंको देखा होगा कि गरीबसे गरीब रहे। यह तो अपने निर्मल परिणामोंका फल है। पूर्वमें निर्मल परिणाम किया, पुण्यका बंध हुआ उदय हुआ और सर्व समागम हुए। जो मिला है वह मेरे लिए बहुत ज्यादा हो गया है—ऐसा स्वभाव होगा तो सुख होगा, संतोष होगा। इन बातोंसे तरसते हैं कि मेरी इज्जत मेरी पोजीशन माफिक हो जाना चाहिए। अरे इतनी भी पोजीशनका माप भी अपनी कल्पनासे बड़ा लिया है। और पोजीशन मेरे अनुकूल बढ़ जाय यह अपने अधिकारकी बात नहीं है। हां ज्ञान बल बढ़ाकर पोजीशनका विकल्प मिटालो यह आपके अधिकारकी बात है। पर दुःखोंसे छूटना चाहते हो तो दुःखोंसे छुटाने वाला जो ज्ञान है उस ज्ञानको हम अपने अन्तरमें लायें तो दुःख छूट सकते हैं। संकटमोचन ज्ञानका तो आदर

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं करते और संकटोंका आश्रयभूत बाह्यपदार्थोंका आदर करें तो दुःख छूटेंगे या बढ़ेंगे। इसलिए अपनेको सुखी करना चाहते हैं तो अपनेको एकाकी मानकर अपने ज्ञानस्वभावकी रुचि करें और जो गृहस्थ है उन्हें अपने आप अवसरविधि मिलती है उस विधिमें गुजारा चलता है। ऐसा गृहस्थीमें रहकर भी संतोष कर सकें ऐसा अंतरंगज्ञान होता है। यह अंतरात्मा गृहस्थी जब वैराग्यमें बढ़ता है तब अपने समागमोंका त्याग करता है। गृहस्थ समागमका त्याग करना बहुत ऊंचा सगुन है क्योंकि ज्ञानदृष्टि साथ हो तो वह अनेक संकटोंसे छूटकर ज्ञानरसका पान व अलौकिक आनन्दको लेना चाहते हैं। आनन्द तो अपने ज्ञानमें है। बाह्यपदार्थोंमें आनन्द नहीं है। जब बाह्यपदार्थोंका समागम भी है तो उस समय भी आनन्द बाह्यपदार्थोंसे नहीं आ रहा है किन्तु अपने ज्ञानसे कल्पनाओंसे आ रहा है। नहीं तो कोई घर लखपति करोड़पति है तो उस घरके लोग क्यों दुःखी हैं, लाखों करोड़ोंका धन होकर भी वे दुःखी हैं, किलस रहे हैं, क्रोधमें भरे हैं। दिल नहीं थम सकता है। और बाजे लोग जो गरीब हैं और सुमतिसे रहते हैं तो उस सुमतिके कारण वे गरीब होकर भी सुखी हैं। दुःख और सुखका सम्बन्ध ज्ञानकी पद्धतिसे है। एक वृद्ध ब्राह्मण था, उसकी बुढ़िया स्त्री थी। एक छोटा बच्चा था और बच्चेकी स्त्री थी, चार लोग जा रहे थे। रास्तेमें एक जंगल मिला तो लौटते हुए मुसाफ़िर उनसे बोले कि अभी जंगल बहुत दूर है और वह जंगल मुलखना है उसमें एक राक्षस रहता है। वह पहिले प्रश्न करता है और जो प्रश्नका उत्तर नहीं दे पाता है उसे खा डालता है। प्रश्न करना केवल खानेका एक बहाना मात्र है। तो चारों लौटे नहीं, जंगलमें घुस गए। अब तो जंगलमें ही डेरा डाल दिया, रात्रिमें जागनेकी चारोंने ओसरी बांध ली। पहिले पहर बुड्ढा दूसरेमें बुढ़िया तीसरेमें लड़का और चौथे पहरमें बहू, इस तरहसे पेहरा देनेका निर्णय किया पहिले बुड्ढा पहरा देने लगा। राक्षस आता है और बुड्ढेसे प्रश्न करता है, एकोगोत्रे। सीधा अर्थ नहीं लगाना, वह कविता बनाता है गोत्रमें पुरुष वही एक है जो समस्त कुटुम्बका पोषण करे। उत्तर मिलते ही खाना तो दूर रहा और इनाम देकर चला गया। दूसरे समयमें बुढ़िया पहरा देने लगी, राक्षस आया और प्रश्न करता है सर्वस्य द्वे' तो उसकी कविता वह बुढ़िया बनाती है 'सर्वस्य द्वे सुमतिकुमति सम्पदापत्तिहेतु।' सब जीवोंकी ये दो बातें सम्पत्ति और विपत्तिके कारण हैं। कौनसी दो बातें? सुमति और कुमति। जहां सुमति तहं सम्पति नाना, जहां कुमति तहं विपत्ति निधाना। भैया यह परिग्रह कोई चीज नहीं है, मनुष्योंको तुच्छ समझकर उसे ठुकराना नहीं चाहिए। सुमतिपूर्वक रहना चाहिए। एक सादगी पुरुष जो होता है वह किसी परिग्रहकी कोई वांछा नहीं रखता है। वह जानता है कि जो परिग्रहकी वस्तुएं हैं उनमें सरकार दुगुना टैक्स लगायेगी। खैर न्यारा रहकर भी प्रीति हो, एकमें रहकर भी प्रीति हो जिसमें धर्म है, समता है, सुमति है वहां पर कोई आपदा नहीं है। अब वह राक्षस लड़केकी जब बारी आती है तो उससे प्रश्न करता है। 'वृद्धो यूना' लड़केने उत्तर दिया—सह परिचयात् त्यज्यते कामिनिभिः।

स्त्री हो युवती और पति हो बूढ़ा तो उस युवतीका कदाचित् किसी अन्य पुरुषसे अन्तरणसे प्रेम हो जाय तो वह वृद्ध पुरुषको योंही छोड़ देती है। उसे भी राक्षसने इनाम दिया। अब चौथी बार बहूने पहरा दिया, राक्षस आया उससे यह प्रश्न किया 'स्त्री पुंवच्च'? बहूने उत्तर दिया—प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम्। जिस घरमें स्त्री पुरुषकी तरह स्वच्छन्द अर्थात् चताचाली हो जाती है वह घर नष्ट हो जाता है, उसे भी राक्षस इनाम देकर चला गया। तो देखो ज्ञानमें इतना बल है कि संकटोंके बीच भी रहकर सुखी है, और कोई मनुष्यके दुःखोंके साधन हैं भी कल्पना करके दुःखी बनते रहते हैं। ज्ञानमें ही सामर्थ्य है कि सुखी हो लें अथवा दुःखी हो लें। तो हमें सच्चे ज्ञानका अर्जन करना है। और इन बाह्य चिंताओंसे यह जगत रुलता फिरता है। अरे बाह्यपदार्थोंकी उपेक्षा करदो, उनको पुण्य पर छोड़ दो। जो होना होगा सो होगा। जो ज्ञानी पुरुष है, जो ज्ञानी गृहस्थ है वह भी छोड़ देता है। बहुतसे तो अभी मिलेंगे। डबरामें राजाराम है परवार जातिके नियम है कि दुकानमें ५०० रुपयाका जब बिक जाय तब दुकान बंद करके और अन्य काम करना, पूजन करना, स्वाध्याय करना आदि, दुकान पर बहुतसे ग्राहक ख

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहते हैं और वे विलम्ब करके बैठे रहते हैं। ५०० का सामान तीन चार घटेमें बिक जाय बस बंद कर दिया। इतनी उनकी ख्याति है कि थोड़ी ही देरमें ५०० का बिक जाता है। बस वे दुकान बंद करके पूजा स्वाध्याय आदि करने चले जाते हैं। तो पुण्य पर छोड़ा कि नहीं छोड़ा ? तो इन बाह्य बातोंको पुण्यपर छोड़ो, अपने हितकी बातको अपने ज्ञान पर छोड़ो। पदार्थोंसे न्यारा और अपने गुणोंसे तन्मयको सिद्ध कहते हैं। याने मोहमें जीव अपनेको और अजीवमें मिला हुआ कर देता है। वह मिला हुआ कल्पनामें न रहे तो सिद्धआत्माका ज्ञान होता है अर्थात् मैं खालिस आत्मा इसके साथ कुछ भी संयोग लगा हो उसको न देखकर केवल अपने आपके सत्यके कारण जो मैं हूं मुझमें है, केवल उसको निहारना सो सिद्ध आत्मा कहलाता है। वह सिद्ध आत्मा कैसा है ? उसका वर्णन इस दोहेमें किया जा रहा है:—

अमणु अणिदिय णाणमउ मुत्ति विरहिउ चिमित्तु।
अप्पा इंदिय विसउ णवि ललवणु एहु विसन्तु ॥३१॥

कहते हैं कि यह आत्मा मनरहित है, मन जुदा चीज है और यह मैं आत्मा जुदा पदार्थ हूं। मन दो प्रकार के होते हैं। एक द्रव्यमन और दूसरा भावमन। द्रव्यमन तो पौद्गलिक है। जैसे ये पंचेन्द्रियां बनी हैं तो ये इन्द्रियां पौद्गलिक हैं, पौद्गलिक परमाणुवोंसे रची हुई हैं। इसी प्रकार मनको कहते हैं अंतःकरण अर्थात् अंतरंगकी इन्द्रियां। पंचेन्द्रियको कहते हैं बाह्यकरण और मनको कहते हैं अंतःकरण। दू सरी मनमें सात इन्द्रियां हैं जो आत्मामें दिख नहीं सकती हैं किन्तु अन्तरकी इन्द्रियां हैं, उनका निमित्त है द्रव्यमन और जैसे इन बाहरी इन्द्रियोंके निमित्तसे हम ज्ञान किया करते हैं, आंखोंके निमित्तसे इस रूपका ज्ञान करते हैं, कर्णके निमित्तसे हम शब्दोंका ज्ञान करते हैं, घ्राण के निमितसे हम गंधका ज्ञान करते हैं, रसनाके निमित्तसे हम रसका और समूचे शरीर स्पर्शनके निमित्तसे स्पर्शनका ज्ञान करते हैं। तो इन इन्द्रियोंके निमित्तसे जो ज्ञान होता है वे भावेन्द्रियां कहलाती हैं। इसी प्रकार इस द्रव्यमनके निमित्तसे जो कल्पना बनती है चिंतन चलता है, विचारधारायें हुआ करती हैं वे सब कहलाते हैं भाव मन। यह मैं आत्मा इन द्रव्येन्द्रियोंसे परे हूं, भावेन्द्रियोंसे परे हूं, द्रव्यमनसे परे हूं और भावमनसे भी परे हूं। मनका काम है विकल्पजालोंको बनाना, किन्तु मेरा स्वरूप है परमज्ञानस्वभावका। मेरे स्वरूपमें विकल्प जाल नहीं है और पौद्गलिक यह मन भी मेरा नहीं है। मैं मनरहित मात्र चैतन्यस्वरूप हूं। मनका काम है विकल्पजाल बुनना। विषयोंके साधनों में उपयोग लगाना। विषयोंके साधनोंकी संचयबुद्धि करना—ये सब मनके काम है पर मैं स्वतः सिद्ध हूं, स्वतंत्र हूं। मेरा कार्य है ज्ञाता दृष्टा रहना। मैं मनरहित हूं और इन्द्रिय समूहसे भी रहित हूं, अत्यन्त अतीन्द्रिय हूं। यह आत्मा अतीन्द्रिय है। उससे उल्टा ये इन्द्रिय लग गयी हैं। क्लेश कभी होते हैं तो उल्टे संगसे होते हैं, इस चेतनका सम्बंध किसी दूसरे पदार्थोंसे तो होता नहीं है इसका सम्बंध चेतनसे रहता है और अचेतन तो इसके उल्टा चीज है। उस अचेतनके संगसे उपाधिसे जो विचार बनता है वह भी अचेतन विचार बनता है। मैं आत्मा इन्द्रियोंसे परे हूं। बतलावो पिता पुत्रकी आत्मासे प्रेम करता है या पुत्रके शरीरसे प्रेम करता है ? यदि पिता पुत्रकी आत्मासे प्रेम करता हो तो जिस प्रकारसे आत्माको भुला सकते हो उसी प्रकारका यत्न यहां पिता करता। पुत्रकी आत्माका भला कैसे हो सकता है ? उसे बचपनसे धर्म ज्ञानमें लगावे, अध्यात्मज्ञानमें लगावे और उसको साधु जनोंका सत्संग अथवा धार्मिक योजनाओंमें लगाना इससे पुत्रकी आत्माका भला है। पर मा व पिताकी इच्छा इसके विपरीत रहती है कि यह कमाने लायक बने, इसकी शादी करदें और इसकी संतानोंकी परम्परा चले। पुत्रकी आत्मासे तो प्यार यहां किसीको नहीं है। तो क्या पुत्रके शरीरसे प्रेम है ? शरीरसे प्रेम होता तो पुत्रका आत्मा खोटे परिणाम वाला बन जाय, खोटे आचार वाला बन जाय तब वह शरीर नहीं रुचता अथवा मृत्यु होनेके बाद इस शरीरको जला देनेके यत्नमें क्यों रहते ? शरीरसे भी प्रेम नहीं। तब फिर किससे प्रेम है ? न आत्मासे प्रेम है, न शरीरसे प्रेम है फिर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रेम रहा अपने कषायोंसे। दूसरोंसे प्रेम नहीं है किसीका। प्रत्येक व्यक्तिका अपने कषायोंसे प्रेम हुआ करता है। छोटे बच्चेको हाथमें लेकर ऊंचे उठाते हैं खिलानेके लिए ना? ऊंचे उठाया फिर गोंच लिया। बच्चा ऊंचा उठता है, गिरता है तो डरके मारे मुंह बा देता है और खिलाने वाले समझते हैं कि इसे आनन्द आ रहा है, हंसी आ रही है। उसके दुःखोंको तो नहीं गिना किन्तु अपने कषायोंको गिना। कोई किसीसे प्रेम तीन कालमें कर ही नहीं सकता। जो प्रेम करते हैं वे अपने विचारोंसे, कषायोंसे, अपनी वासनासे प्रेम करते हैं। इस जीवसे प्रीति हो रही है तो अपने इन्द्रियज्ञानसे प्रीति हो रही है, पर न मैं ये इन्द्रिय हूं, न इन्द्रिय ज्ञान हूं। मैं तो इन्द्रियोंसे परे केवल ज्ञानमय पदार्थ हूं। मेरा स्वरूप क्या है? केवलज्ञान प्रकाश। मुझमें पत्थर लोटे नहीं पड़े हुए हैं। रूप रस आदि नहीं भरा हुआ है। मैं आकाशकी तरह अमूर्त एकचेतन पदार्थ हूं। आकाश तो असीम है प्रदेशोंसे किन्तु यह आत्मा प्रदेशोंसे सीमा सहित है। जितना बड़ा आपका देह है उतनेमें आपका आत्मा विस्तृत है। पर इस ही आत्माको स्वभावदृष्टि से देखें तो स्वभावमें न सीमा है न असीमा है। वह तो एक चैतन्यस्वरूप है। स्वभावकी लम्बाई चौड़ाई नहीं होती। पदार्थोंमें लम्बाई चौड़ाई होती है, जब हम अपने आत्माको पदार्थ और द्रव्यके रूपमें देखते हैं तो इसका विस्तार है, सीमा है पर आत्माके स्वभावको देखते हैं तो उसके सीमा नहीं है। मनुष्यसे पूछें कि यह कितना बड़ा होता है तो बता देगा कि ५-७ फुटका लम्बा। और पूछें कि इस जीवको जो क्रोध आ रहा है वह कितना बड़ा है? तो क्रोधके बारेमें नहीं कह सकते कि यह ५ फुटका क्रोध है, ७ फुटका क्रोध है। अभी तो विचारकी बात कह रहे हैं पर जो ज्ञानस्वभाव है उसको लख करके क्या कोई कह सकता है कि यह कितना बड़ा है? स्वभावमें लम्बाई चौड़ाई नहीं होती है। पदार्थोंकी लम्बाई चौड़ाई है पर आत्मामें लम्बाई चौड़ाई है क्या? यह तो इतना लम्बा चौड़ा है, इसमें किस प्रकारकी आदत पड़ गई है? इसमें वैराग्यकी, रागकी जो आदत पड़ गई है उस आदतमें लम्बाई चौड़ाई होती है क्या? आत्माका स्वरूप होता है विस्तार नहीं होता है। तो इस आत्माके स्वरूप पर दृष्टि देकर और फिर जो स्वरूप ज्ञात हो उसको व्यक्तिका रूप देना वही ब्रह्मवेदांत कहलाता है। जैसे स्यादवादमें यह कहते हैं कि द्रव्यदृष्टि से आत्माकी सीमा क्षेत्रसे सीमा है पर भावदृष्टिसे आत्मामें सीमा नहीं है। जैसे पहिले लोकमें व्यक्तिगत स्वरूप न्यारा न्यारा है पर इसमें जो जैनत्व है अथवा जो जाति है उसकी सीमा क्या है? मेरी आत्माका जो स्वरूप है उसे स्वरूपदृष्टिसे लख सकते हैं पर और उपायोंसे आत्माको नहीं लखा जा सकता है। यह आत्मा ज्ञानसे रचा हुआ है। जैसे अपने आपको बच्चों वाला समझोगे तो बच्चोंकी फिकर करना ही पड़ेगा। अपनेको इन्सान समझोगे तो समाज और देशमें इन्सानियतके काम करना ही पड़ेगा। और कोई अपने अंतःमर्मको पहिचान कर ज्ञानस्वरूप देखेगा तो वह केवल जाननेका ही काम करेगा, उसके अन्य प्रवृत्ति न होगी। जब केवल जाननेका ही काम होता है तब ज्ञानका अनुभव होता है और ज्ञानके अनुभवका ही नाम आत्माका अनुभव है। इस प्रकार अपने आपको केवलज्ञानस्वरूप ही सोचकर अनुभव करो। परिवारके ख्यालमें, मोहमें, पालनपोषणमें ही सारा समय लगाये रहे तो उससे क्या लाभ? अपने सही स्वरूपके विचारने में भी समय देना चाहिए या नहीं? तो अपने आपके स्वरूपके अनुभवमें कितने मिनट देना चाहते हो? ५ मिनट सही। तो ५ मिनटमें ऐसी तैयारी रखो कि केवल हमें केवल आत्मा ही जाननेमें आये तो हमें जाननेका काम मंजूर है, और कोई पदार्थ मेरे जानने में न आये। ५ मिनटको घरका धनका, इज्जतका, किसीका भी ख्याल न रखो, सबका ख्याल छोड़ दो, कहीं ५ मिनटमें वे सब नष्ट हो जायेंगे, सब मिल जायेंगे पर ५ मिनटका टाइम जरुर अपने आत्मानुभवमें दो। किसी बाह्य पदार्थका चिंतन उस समय न हो। अपने इस जीवनमें ही देख लो, कभी किसी भयंकर रोगसे ग्रस्थ थे, मुश्किलसे बच गये। कभी कोई हिन्दु मुसलमानके दंगेमें फंस गया होगा, कोई किसी समय बड़े तेज बुखारसे पीड़ित हो गया होगा, किसी समय घरके लोगोंने भी जीनेकी आशाको छोड़ दिया होगा। उस समय यदि हम गुजर गये होते तो हमारे लिए आज यहां कुछ न होता। आज देवयोगसे यह मनुष्यभव मिला है, क्या हम पशु पक्षी कीड़े मकोड़ोंके भवमें न थे? यदि हम मनुष्य न होते, किसी पशु पक्षीके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जन्ममें होते तो मेरे लिए ये समागम कुछ न थे, जिनकी चितामें आज हम परेशान होते हैं वे मेरे लिए कुछ न थे। और मरणके बाद ये सब मेरे लिए कुछ नहीं हैं। और जो कुछ है अपना ज्ञान बल बढ़ाकर देखो। लाभ तो सदुपयोग करनेसे होगा। सदुपयोगसे ही आत्मलाभकी बात हो सकती है। इन समागमोंमें पड़े रहनेसे तो वियोग होगा ही।

एक देश था, उसमें राजा बननेकी पद्धति प्रतिवर्षकी थी। मंत्रिमंडल किसीको राजा बना देता था और एक वर्ष बाद चूंकि यह देशमें रहेगा तो इसकी बेइज्जतीसे देशकी बेइज्जती होगी। राजाको एक वर्ष गुजरनेके बाद यहां लोग पैन्सन दे देते हैं चार पांच हजार रुपया, या हजार रुपया जिससे ठाठसे रहे। वहां पैन्सन देनेकी बात न थी किन्तु एक वर्षके बाद राजाको भयंकर जंगलमें छोड़ देनेका नियम था। ऐसा इसलिए होता कि कोई देखे नहीं तो राष्ट्रपतिकी बेइज्जती न होगी। एक बार एक समझदार राजा बना उसने सोचा कि मैं एक वर्षके लिए राजा हूं सो जो चाहूं वह कर सकता हूं। सो जिस जंगलमें छोड़ देना था उसमें बहुतसा प्लाट तैयार किया, बैल हो गये, खेत हो गये। वर्ष गुजरा और राजा जंगलमें छोड़ दिया गया जो अब वहां जाकर राजा आरामसे रहने लगा। इसी तरह यह कुछ वर्षका नर जन्म मिला है, इसके बाद क्या गति होगी कि ८४ लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा। जो विवेकी मनुष्य है वह क्या करेगा ? जब तक मनुष्य है, मन श्रेष्ठ है तब तक जो चाहे सो कर सकते हैं। और करना क्या है ? केवल शुद्ध भाव बनाना है। परवस्तुवोंमें तो यह आत्मा परिणमन कर नहीं सकता। हाथसे यह चश्माघर उठाया तो यह आत्माने नहीं उठाया, जीवने नहीं उठाया। बहुतसे लोगोंकी समझमें तो यह है कि वाह मैंने ही तो उठाया। मैं तो एक जीव हूं. जिसका स्वरूप ज्ञान है, आकाशकी तरह अमूर्त है। अमूर्त आत्मा किसी पुद्गलको छू नहीं सकता है। तो यह मैं जीव इस चश्माघरको पकड़ सकता हूं क्या ? जरा जीवके स्वरूप पर दृष्टि दो। जीव तो ज्ञान और आनन्द स्वरूप है पर जीवके रहे बिना यह चश्माघर उठाया धरा नहीं जा सकता है। फिर बात क्या है ? यह जीव मलीन हैं, इसमें उपाधि लगी है, इसमें विकार उत्पन्न होता है। इस हालतमें भी जीवने इच्छा उत्पन्न की कि उठाकर रखदें। उठाकर रख नहीं सकता। किन्तु जीवने तो अन्दरमें एक इच्छा उत्पन्नकी। अब आगे देखो कैसे काम बढ़ता है ? उस जीवकी इच्छाके निमित्तसे जीवके प्रदेशोंमें कम्पन हुआ और जीवके इस कम्पनके निमित्तसे शरीरमें रहने वाला ;जो ध्रुव है उस ध्रुवमें कम्पन हुआ। जिस तरहकी इच्छाकी उस तरहका कम्पन हुआ। और उसके हीं अनुकूल वायु कम्पन हुआ। उस वायुके संचालनके निमित्तसे ये हाथ पैर चलने लगे। सो इसने इच्छाकी कि मैं चश्माके घरको उठाऊं तो वैसा ही इसमें कम्पन हुआ, वैसे ही शरीरकी हवा चली और वैसे ही ये अंगुलियां सिमटीं अब उन सिमटी हुई अगुलियोंके बीचमें यह चश्माघर है। जब निमित्तनैमित्तिक प्रसंगसे अंगुली चलीं तो उसके बीचमें फंसा हुआ यह चश्माघर भी चल पड़ा, हाथ मैंने नहीं चलाया। यह तो कितने ही निमित्तोंके सम्बन्धसे चल उठा है। एक रेलगाड़ी जिसमें १२ डिब्बे लगे हैं, इंजन चलता है तो लोग यह कहते हैं कि इंजन १२ डिब्बों को खींच रहा है। इंजन तो केवल पासके डिब्बेको खींच रहा है। उस डिब्बेका सम्बन्ध है सो अगले डिब्बेका निमित्त पाकर अन्य डिब्बे भी साथमें खिंच रहे हैं, पहिले डिब्बेका सम्बन्ध है दूसरेसे। इस प्रकारसे एक दूसरे डिब्बेका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। इस प्रकारकी परम्परा बढ़ती चली जायगी। हो रहा है सब काम। इंजनमें भी देखो एक-एक पुर्जा अपना अपना काम कर रहा है। एक पूर्जा काम करता है। उसका निमित्त पाकर दूसरा पुर्जा काम करता है। एक पुर्जेका निमित्त पाकर डंडा चला, फिर उससे फ़सी हुई पांत चली, फ़िर उससे फंसा हुआ पहिया चला। तो प्रत्येक पुर्जा केवल अपना काम कर रहा है। किसी एक पुर्जेका निमित्त पाकर दूसरा पुर्जा क्रियाशील हो जाता है।

लोग कहते हैं कि यह गाड़ी ड्राइवर चला रहा है। अरे रेलगाड़ीको ड्राइवर नहीं चला रहा है। वह तो हैंडिल तकको नहीं पकड़े हुए है। वह तो केवल इच्छा कर रहा है, उसकी इच्छासे योग हो रहा है, उस योगसे देह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वायु चली, फिर उसके अंगका निमित्त पाकर स्टेरियल चला, फिर उसके निमित्तसे और कुछ चला। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थका भिन्न-भिन्न काम हो रहा है। ऐसे होते हुए कामको देखकर अज्ञानी कह उठते हैं कि इसने अमुकको यों परिणमाया है पर ज्ञानी जिसका प्रत्येक पदार्थका स्वरूप नजरमें है वह कहता है कि कोई पदार्थ किसी पदार्थका कुछ नहीं करता है। वस्तुस्वरूपकी स्वतंत्रताकी यह दृष्टि संसारके संकटोंसे उबारनेमें समर्थ है। अपने लोग रोज चर्चा कर लेते हैं, सुनते हैं सम्भव है कि इसको प्रभावमें न लायें, पर कोई समझदार अन्य जन इस चर्चाको सुनकर एक नई दृष्टि प्राप्त करते व आनन्द पाया करते हैं। हमारा यह कहना और सुनना तोतेके आदतकी भांति न रहे और उसको अपने विचारमें कुछ क्षण उतारें, कुछ क्षण सबको भूल जायें तो आपको सुख होगा। पापके उदयमें कौन दूसरा मदद कर देगा? कोई कठिन रोग हो जाय तो घरके सब लोग क्या दर्दको बांट लेंगे? अपनी दया करके कुछ क्षण तो सर्वसंकल्प विकल्पको छोड़कर केवल ज्ञानमात्र अपने स्वरूपको निहारो। ऐसा काम इस जीवनमें करो कि यह नरजीवन व्यर्थ न जाय। जो जानन है सो मैं हूं इतना ही सोचकर रह जायें और उस जाननस्वरूपके चिंतन में लग जायें तो उस जाननस्वरूपके अनुभवमें विलक्षण आनन्दका अनुभव होगा। जैसे अपनेको विचारते हो ना कि मैं बच्चों वाला हूं, मैं मुनीमका काम करने वाला हूं तो कुछ तो अपनेको माननेकी आदत है ना? अपनेको केवल जाननमात्र मानने लगो। जिस क्षण ऐसा जाननमात्र मैं हूं इतना ही दृष्टिमें रहेगा उस क्षण ज्ञानका अनुभव है, आनन्दका अनुभव है, आत्माका अनुभव है। इस आत्माको ज्ञानमात्र स्वरूपकी दृष्टिसे सोचो तो यह आत्मा ग्रहणमें आ सकता है, अन्य उपायोंसे यह आत्मा ग्रहणमें नहीं आ सकता है। एक सत्यका आग्रह करना है, अन्यको नहीं जानना है। इस आग्रहसे इस ज्ञानका अनुभव अवश्य होगा पर इतना करनेकी भावना ही न हो तो भाव कैसे बनेगा? एक गृहस्थ पुरुष था तो एक दिन शास्त्रसभामें बाहरसे आया। पंडितजी बोले आज शास्त्रमें देरसे आये हो तो कहा, पंडितजी हमारा एक छोटा मुन्ना है १२ वर्षका सो आज अड़ पकड़ गया कि हम भी शास्त्र सुनने चलेंगे तो न आने दिया। फिर क्या किया? हमने समझा बुझाकर पैसा देकर उसको सिनेमा भेज दिया, तब मैं आया। अरे बच्चेको आने देते, उससे भला होता। बोले हम तो शास्त्रोंके पक्के श्रोता हैं, कहीं ऐसा न हो कि बच्चे शास्त्र सुनें और घरसे चल दें। सम्भव है कि शास्त्र सुननेसे वे बच्चे घर छोड़ दें। तो हम आप निरतर अपने रंगमें रंगे रहते हैं, उन घरके बच्चों पर दया नहीं किया करते हैं। आप धन वैभवमें बड़े होना चाहते हैं तो उससे लाभ क्या है? कुछ भी तो लाभ नहीं है। लाभ तो इसमें है कि सब कुछ छोड़ दें। सब कुछ त्याग करदें, केवल अपने जानन-स्वरूपके चिंतनमें रह जायें, इस ही उपायसे आत्माका दर्शन होगा।

उस शुद्ध आत्माका यहां वर्णन हो रहा है जिस शुद्ध आत्माकी दृष्टिमें सम्यक्त्व होता है। जिस शुद्ध आत्माकी दृष्टिकी स्थिरतामें चारित्र परिपूर्ण होता है और सहजानन्द प्रकट होता है उस शुद्ध आत्माकी बात यहां कही जा रही है। यह शुद्ध आत्मा कहीं अन्यत्र न दिखे किन्तु अपने आपको ही इस रूपमें विचारे कि यह मैं सबसे निराला केवल चैतन्यस्वभाव मात्र हूं। इस प्रकार अपनेको निरखे तो उस निरखसे खुद समझमें आये कि यह कितनाशुद्ध आत्मा है, यह ज्ञानसे रचा हुआ है अर्थात् केवल ज्ञानका जो पिंड है वह आत्मा है। यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाली मूर्तिसे रहित है, यह अमूर्त है। अमूर्त जितने भी पदार्थ होते हैं उनमें स्पर्श, रूप, रस, गंध नहीं हुआ करता है इस मूर्तिसे रहित होनेके कारण यह आत्ममूर्ति विपरीत है और केवल शुद्ध चेतनामें तन्मय है। जो शुद्ध चेतनामें तन्मय है, जो शुद्ध चेतना अन्य किसी द्रव्यमें नहीं पायी जाती, केवल आत्मपदार्थमें ही होती है, ऐसी शुद्ध चेतनासे निस्पन्न होनेके कारण यह आत्मा चिन्मात्र है। यह अपने आत्माका वर्णन है। यह मैं आत्मा मनसे परे हूं और इन्द्रियोंसे भी परे हूं। केवल ज्ञानस्वरूप कर रचा हुआ हूं, मैं आत्मा अमूर्त हूं, चैतन्यमात्र हूं, यह इन्द्रियोंके विषयमें नहीं आता। वीतराग स्वसम्वेदन ज्ञानसे ही ग्रहणमें आता है। किसी भी इन्द्रिय या मनकी गतिमें हम

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्माको जान सकें ऐसा नहीं होता। इन्द्रियोंके द्वारा तो यह आत्मा किसी भी प्रकार जाननेमें नहीं आता। हां मनके द्वारा इस आत्माकी चर्चा हो सकती है। मगर यथार्थ शुद्ध जैसा आत्मस्वरूप है वैसा ग्रहण केवल वीतराग स्वसंवेदन ज्ञानसे ही होता है, यह निश्चय है। इस गाथासे हमें यह शिक्षा मिलती है कि यद्यपि यह मैं विकारमें हूं, बिगाड़में हूं, शुद्ध हूं, उपाधि सहित हूं, कर्म सहित हूं, नाना प्रकारके वैभव भी उमड़ते हैं किन्तु इस मुझ आत्माका जो सहजस्वभाव है वह भी मुझमें अनादिसे अनन्त काल तक एकस्वरूप रहने वाला नित्य है। हम न तो उपाधिपर दृष्टि दें, न शरीर पर दृष्टि दें। हैं ये सब चीजें, रहें किन्तु इनकी दृष्टिसे मेरी आत्माका हित नहीं हैं। इस कारण न शरीर पर दृष्टि दें, न कर्मोंपर दृष्टि दें और कर्मोंके कारण होने वाले रागादिक विकारों पर भी दृष्टि न दें, किन्तु अपने आपमें नित्यप्रकाशमान् जो एक चैतन्यशक्ति है, जिस शक्तिके आधार पर शुद्ध अशुद्ध सभी काम चल रहे हैं उस शक्ति पर दृष्टि देकर, मैं इस चैतन्य शक्तिमात्र हूं ऐसी रुचि करो, यही शुद्ध आत्मतत्व उपादेय है। अब यह बतलाते हैं कि जो संसार, शरीर और भोगोंसे विरक्त होकर शुद्ध आत्माका ध्यान करता है उसकी संसार बेल नष्ट हो जाती है।

भवतणु भोयविरत्तु मणु जो अप्पा झाएइ।
तासु गुरुक्की वेल्लडी संसारिणि तुट्टेइ ॥३२॥

जो आत्मा संसार शरीर और भोगसे विरक्त चित रहता है वह संसारकी बेलको तोड़ देता है। ससार क्या है? अपने आपमें उत्पन्न होने वाली जो इच्छा है, विकार वह सब संसार है। संसारसे बाहर नहीं है किन्तु अपने आपमें जो गड़बड़ी उत्पन्न होती है, स्वभावसे विपरीत स्वभाव रहता है उस भावको संसार कहते हैं। अपने आपके विकार परिणामोंसे विरक्त होनेको संसारसे विरक्त कहा जाता है। सबसे बड़ी परेशानी जीवको यह है कि जो इसमें विकार होते हैं उनको अपनाता तो है ही, पर साथ ही विकारोंको अपनानेमें अपनी बुद्धिमानी मानता है। ज्ञानीपुरुष तो अपने सभी विचारोंसे ज्ञान किया करता है। जो भी विचार उत्पन्न होते हैं वे सब अज्ञानकी कोटिमें हैं। ज्ञानी तो वह है जिसकी केवल जाननवृत्ति रहती है। उसके साथ रागद्वेषादिक भावोंकी तरंग नहीं उठती है किन्तु अज्ञानी जो कुछ सोचता है उसे ही विवेक मानता है। अपनी गल्तीको गल्ती मान सकनेकी क्षमता अज्ञानी जीवमें नहीं हुआ करती है, ज्ञानी पुरुष तो विनाशीक पदार्थोंमें कार्य करके भी सामयिक, स्वाध्याय, चर्चा, वंदना, पूजन सब कुछ करते हुए भी यह समझता है कि यह मेरे ज्ञानका शुद्ध ज्ञान नहीं है, इन सबसे भी छुटकारा हो और केवल जाननस्वरूपके जाननेमें ही रहें ऐसी निर्विकल्प स्थिति होनी चाहिए। ज्ञानीको ये सारी बातें जिन्हें लोग विवेक कहते हैं अज्ञान जंचता है और अज्ञानीको वे गलत बातें भी गलत नहीं जंचती हैं। उन सब बातोंको अज्ञानी विवेक बनाता है। और परवस्तुवोंके सम्बंधमें बहुत सोच विचार करता है, बहुत विचार कर चुकनेके बाद वह यह संतोष करता है कि मैं बहुत विचार कर चुकनेके बाद यह काम कर रहा। यह अवश्य बुद्धिमानीका काम है किन्तु एक समता परिणाम वाले केवल जाननके कामको तो ज्ञान कहते हैं और बाकी जितने भी ख्याल हमारे रागद्वेषकी कड़िका में बसे हुए हैं वह सब अज्ञान कहा जाता है। अपने विकल्पोंसे विरक्त होनेसे संसारसे विरक्त होना कहा जाता है। मैं जो सोचता हूं यह न सोचना पड़े। मैं जो विचारता हूं और समझता हूं कि मैं ठीक कर रहा हूं वह सब संसारका काम है, अज्ञानका काम है, मेरे स्वभाव की वृत्ति नहीं है। इस प्रकार यह ज्ञानी संत संसारमें मूर्छित हुए चित्तको लौटाता है, अपके आपने जाननमात्र स्वरूपके ज्ञानसे उत्पन्न हुआ जो वीतराग परमानन्द स्वरूप है, इसके स्वादसे लिप्त होता है, यह ज्ञानी इस शरीरको भी नहीं चाहता है जिस शरीरमें यह बस रहा है, यह एक बंधन है, शरीर मिलता रहे यही तो संसारमें रुलना कहा जाता है। शरीरमें रहते हुए भी शरीरसे न्यारा हूं। केवल निजज्ञान स्वभाव मात्र हूं। ऐसे श्रद्धानके कारण वह अपने विचारोंसे भी विरक्त रहता है, शरीरसे विरक्त रहता है। शरीर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जड़ है, मैं चेतन हूं, शरीर मुझसे भिन्न है, मैं अपने आपमें अभेद इस शरीरके कारण मेरा हित नहीं है बल्कि अहित हो रहा है। शरीरमें बस रहा है सो शरीरका पालन भी कर रहा हूं। शरीरका पोषण भी करता है, शरीरकी सफाई भी कर लेता है, फिर इन सबमें अनुराग ज्ञानी जीवको नहीं है, जैसे पड़ौसीके घरमें आग लगी हो तो वह दूसरा पड़ौसी पुरुष सर्व प्रयत्न करके पड़ौसीके घरकी आग बुझाता है। इस वास्ते अंतरमें यह आशय पड़ा हुआ है कि इसके घरकी आग बढ़कर मेरे घरमें लगी तो मेरा घर नष्ट हो जायगा। इसी प्रकार शरीर एक पड़ौसी है, शरीरमें आग लग गयी, क्षुधाके वेदनाके रोगमें आपत्तियां आ गयीं, तो यह आत्मा पड़ौसी शरीरकी वेदनासे मिटा है किस लिए कि कहीं शरीरकी वेदना बढ़ करके मेरे आत्मामें अज्ञानभावका कारण न बन जाय। कहीं मैं इस शरीकी पड़ी हुई वेदनामे विह्वल होकर अपने ज्ञानको न खो दूं इस कारण जब पड़ौसमें आग लगी है तो इसको बुझा लूं इस कारण आहार करता है पर फिर भी शरीरसे विरक्त है। और यह ज्ञानी सत भोगोंसे भी विरक्त है। भोग पचेन्द्रियका विषय कहलाते हैं कर्णेन्द्रियका विषय है राग रागनीयुक्त गायनका सुनना। सुहावने शब्दोंका सुनना कर्णेन्द्रियका विषय है, खूब सुनो राग रागनीकी तान पर। इन सब कर्णेन्द्रियके विषयके भोगोंसे इस मुझ आत्माको लाभ क्या मिलेगा? यह दुर्लभ नरजीवन ही गवाया जा रहा है।

एक कविने एक सभाका चित्र खींचा। लोग बैठे हैं, सभा भरी है, उसमें गाने वाली वेश्या है। तबला बजाने वाले भी अच्छा तबला बजा रहे हैं, मजीरा बजाने वाले भी अच्छा बजा रहे। वेश्या भी हाथ पसार-पसार कर गाना गा रही है। ऐसी स्थितिका एक पद्य बनाया है। मिर्दङ्ग कहता है धिक है, धिक है। धिक बोलता है ना मजीरा कहता है किनको किनको तो वेश्या हाथ पसार कर कहती इनको, इनको, इनको। यह एक कविका खींचा हुआ चित्र है। तो क्या है कर्णेन्द्रियके विषयभोगमें केवल समय गंवाया जा रहा है। नेत्रइन्द्रियका विषय है सुन्दर रूप देखना, खेल तमासे देखना। जो सुहा जाय ऐसे पदार्थोंको देखना। कितने ही दफे हवाई जहाज देखा हो और उसमें कितनी ही बार बैठा हो और ऊपरसे उड़ता हुआ जाय तो निगाह कर ही आती है। यह नेत्रइन्द्रियका विषय है। सामनेसे कोई निकल रहा हो, कुछ प्रयोजन नहीं है, फिर भी उत्सुकता होती है। क्या है? कौन है। नेत्रइन्द्रिय के विषयके साधनेमें आत्माको मिलता क्या है? बल्कि उपयोग बढ़ानेमें प्रबल इन्द्रिय है तो यह नेत्र इन्द्रिय है। पहिले नेत्रेन्द्रियसे देखा जाता है। विकारकी शुरुवात देखनेसे होती है। पहिले देखा फिर गुना, विचारा मनमें एक शल्य बनाली और आगे बढ़े तो इन्द्रियोंमें विकार प्रारम्भ कराने वाला नेत्रेन्द्रिय है और झगड़ेको बढ़ाने वाला यह मुख है। झगड़ा मुखसे ही बढ़ता है। अदृष्ट बोल दिया लो कलह होने लगी। तो ये दो इन्द्रियां बड़ी आफतजन्य रहती हैं और इनका काम इसका स्वाद लेना है। खानेके लिए यह कैसा विकल्प मचाता है। यह तो है रसना इन्द्रिय और नेत्रेन्द्रिय बड़ी कठिन इन्द्रिय है। लेकिन घबड़ानेकी बात नहीं है कर्मोंने तो दोनों इन्द्रियोंके ढक्कन लगा दिया। मुखका ढक्कन दोनों ओठ हैं और आंखोंका ढक्कन है पलक और इन्द्रियोंमें ढक्कन न मिलेगा। कानमें क्या है किसी समय तेज आवाज आ रही है चाहें कि कानोंको ढक लें और आवाज न मिले सो नहीं हो सकता है। नाकके ढक्कन कहां है? इस शरीरके ढक्कन कहां है। दो इन्द्रियोंके ढक्कन लगा है। हम लोगों पर दया करके इन नाम कर्मोंने ढक्कन बना दिया। मुख हम ढक लें ओठ चिपका लें। फिर क्या रस लेंगे और क्या बात बोलेंगे? सब झगड़ा मिट गया। तो नेत्रेन्द्रियके विषयमें इस जीवको क्या लाभ मिलता है? ये सब व्यर्थके विषय हैं। सिनेमा देख लिया, कौतूल देख लिया। किसीकी लड़ाई हो रही है तो उसको भी देखनेकी इच्छा हो जाती है? कैसे लड़ाई करते हैं? उनमें लड़ाई कम होने लगे तो क्यों कम होने लगी? जब लड़ाई तेज होती है तो बोलते हैं हां ठीक है। क्यों क्या देखनेको मन चाहता है? इससे इस जीवको लाभ क्या मिलता है? घ्राणेन्द्रियके विषयसे क्या फायदा मिलता है? सूंघ लिया इत्र तो क्या परिणाम निकलता है? इत्रोंके सूंघनेके फलमें कितने ही नासिकाके रोग हो जाते हैं। और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्या है ? सूंघ लिया तो क्या है ? दुर्गन्ध आती है तो आये । बचाव करता है । नाकको जबरदस्ती बंद करता है । जोर-जोरसे दौड़ता है, यह गंधका वातावरण यह सब क्या है ? घ्राणेन्द्रियका विषय । इसमें समता नहीं हैं । सुगंध आती हो तो हर्ष न मानो । यह सुगंध एक पुद्गल चीज है । दुर्गन्ध होना कोई अशुचि पदार्थ दिखता हो तो भी विशाद न मानो । यह जगह ऐसी है, इस पदार्थका स्वरूप ऐसा है केवल जान जाय, यह धैर्य नहीं हो पाता क्योंकि भोगोंमें रुचि है । उसी प्रकार रसना इन्द्रियकी बात है । स्वाद लेकर खाना खा लिया । स्वादिष्ट चीजको छिपकर खाना, चोरीसे खाना उसका निरंतर ध्यान रखना । और जैसा रखना चाहता हैं वैसा साधन न मिले तो खेद हो जाता है । यह सब क्या है ? यह रसना इन्द्रियका विषय है किन्तु घाटी नीचे माटी । एक खुली घाटी है, उसके नीचे जो उतरें तो क्या स्वाद आता हैं ? माटी हो गई । रसका सुख क्षणिक है । एक सेकेन्डका भी तो रसनाका सुख नहीं है । इस पर विजय प्राप्त कर पाते हैं तो बड़ा आडम्बर और संचय करना पड़ता है ।

बड़ेका बड़प्पन इसीमें है कि सर्वसाधन मिले हैं फिर भी सात्विक रहन सहन और सात्विक भोजन करे । स्वादिष्ट भोजन क्या लड्डू पेड़ा, बर्फी, रबड़ी आदि है ? इनके खानेसे तो स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है. रोग बढ़ता है, वायु बढ़ती है । यह मनुष्य स्वादका प्यासा है । कितनी तरहके भोजन बनाता है और खाता है, समय गवाता है ! स्पर्शनका सुख । उसके सम्बंधमें भी ये ही सब बातें जान लो । इन इन्द्रियोंके सुखको जितना बढ़ाकर मनुष्य भोगता है उतना बढ़ाकर पशु भी नहीं भोगते हैं । यद्यपि पशुवोंके भी ५ इन्द्रियां हैं । मगर मनुष्यके भोगने की पद्धति विशेष है । पशुवोंको जैसी घास मिल गयी खा लिया पर यह तो जो चीजें खानेकी हैं ही नहीं ऐसी चीजों को भी खूब मसाले डालकर, हींग तेल डालकर मीठा डालकर खाता है । उसमें खुद स्वाद नहीं है इसलिए मसाले मीठा आदि डालकर खाने लगे । मांस कोई खानेकी चीज है क्या ? देखनेसे ग्लानि लगे, कच्चा खा न सके, स्वाद भी उसमें कोई नहीं ? यदि स्वाद होता तो तेल मसालोंकी उसमें अधिकता क्यों करते ? तो रसनाका विषय इतना बढ़ गया है और इन्द्रियोंको देख लो घ्राणको देखलो । किसी गाय बैल, भैंस, घोड़ा आदिको देखा है ना, वे क्या कोई सुगंधकी चीज बनाते हैं ? ये कलायें मनुष्य ही करता है ? कितनी ही तरहके सेन्ट बनाये, कितनी हो तरहके सुगंधित इत्रादि बनाए ये घ्राणेन्द्रियके विषय हैं । सुन्दर चित्र बनाना, रूप बनाना और उसको निहारना यह कला पशुवोंमें है क्या ? पक्षियोंमें है क्या ? इसमें भी मनुष्य बढ़ा चढ़ा है । ऐसी ही शब्द राग रागनियोंकी बात है । इन सब भोगोंमें यह मनुष्य बहुत बढ़ा है किन्तु इस मनुष्यमें ही ऐसी शक्ति है कि उन भोगोंसे बिल्कुल विरक्त हो सकते हैं । यों संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त हुए जो पुरुष शुद्ध आत्माका ध्यान करता है अर्थात् केवल, खालिस, प्योर, मात्र ओनली, निज सत्वका ही ध्यान करता है उस पुरुषके संसारकी बेल चूर्ण-चूर्ण हो जाती है । संसार उसका नष्ट हो जाता है । हम किसको देखें, किसे जानें ? किसकी शरण गहें ? किसके निकट बसें कि हम पूर्ण सुखी हो जाएं ? मेरे सर्वसंकट टल जायें ऐसा है कुछ ? वह है अपने आपमें अपनी सत्ताके कारण जो आकृतिम शुद्ध स्वरूप है, वह ही परमात्म तत्त्व है कि जिसके देखनेसे, जिसका आश्रय लेनेसे ये कर्म स्वयंमेव सब टर जाते हैं । देखो अपने उद्धार का उपाय और अपने आपका परमशरण खुदमें ही विराजमान यह ज्ञानमय प्रभु है जिसके देखनेसे सारे संकट टल जाते हैं, सारे संकटोंसे मुक्ति हो जाती है और जिससे न देखते बना उसे सारे संसारमें रुलना ही बना रहेगा । अपने आपमें बसा हुआ यह सहजचैतन्यस्वरूप परमात्मदेव यह व्रत लिए हुए है कि रे उपयोग तेरा भला करनेके लिए अनादिकालसे लगा हुआ हूं तू मेरी ओर तनिक तो देखले फिर तेरा उद्धार करनेके लिए मेरा बस चल सकेगा । यदि तू रंच भी मेरी ओर नहीं देखता तो तेरे उद्धारके लिए मेरा बस नहीं है । ऐसा इस शुद्धआत्माका जो ध्यान करता है उसकी संसाररूपी बेल सब टूट जाती है । सद् सद् चूर्ण हो जाता, तब जिस निज परमात्माके ध्यानसे यह संसार की बेल नहीं होती है वह निज परमात्मा ही उपादेय है । इस परमात्मतत्त्वकी भावना करना चाहिए । यही सर्व

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपदेशोंका सार है। जैसे कलेवा साथ हो तो मुसाफिरी करनेमें जब भूख लगी पल्ला खोला और खा लिया, कोई देर नहीं। इस प्रकार इस निज परमात्मतत्त्वका परिचय पास हो तो जब आपको संकट आयें, कोई विपदा सताए झट इन्द्रियोंको बंद करके भीतरके ज्ञानपटलको खोलकर दर्शन करले तो झट संकट टल जायेंगे। हमारा शरण आत्मा है उसको देख जरूर लेना चाहिए। इस ही निजपरमात्माका वर्णन परमात्मप्रकाश ग्रंथमें है। अब इस देह देवालयमें जो परमात्मा बसता है वह ही शुद्ध निश्चयनयसे परमात्मा है इस बातका निरुपण करते हैं।

देहादेवलि जो वसइ देउ अणाइ अणंतु।
केवलणाण फुरंत तणु सो परमप्पु णिभंतु ॥३३॥

देहरूपी देवालयमें जो अनादि अनन्त देव बस रहा हैं वह ही तो केवल ज्ञानादि अनन्त देवताओंका स्वामी परमात्मा है, ऐसा तुम भ्रमरहित होकर जानो। अपने आत्माकी शक्तिपर विश्वास हो और अपने आत्माके सहज-स्वरूपका परिचय होना यह बड़े उत्तम होनहारसे मिलता है। यह व्यवहारसे देहरूपी देवालयमें बस रहा है फ़िर भी निश्चयसे देखो तो यह देहसे भिन्न है। देह तो मूर्तिक है देह तो अपवित्र है किन्तु यह आत्मा न मूर्तिक है और न अपवित्र है। यद्यपि देह आराधनेके योग्य नहीं है तो भी स्वयं परमात्मा आराध्य देव है, पूज्य हैं। इस देहकी और अपने आत्माकी विशेषता बतला रहे हैं कि देह तो बचने योग्य नहीं है किन्तु यह आत्मा बचने योग्य है। यह जीव उपयोगको जब अपने स्वरूपमें ले जाता है और अपने स्वरूपका चिंतन करता है तब वह आत्मा शांतिका मार्ग पाता है और अपने आपके घरको छोड़कर बाहरी पदार्थोंमें रुचि करता है तब यह जीव संसारमें गोते खाता हैं। यद्यपि देह तो अंतकर सहित है।

इस शरीरकी उत्पत्ति है, इस शरीरका विनाश है। किन्तु आत्माका न आदि है और न अंत है। कारण आत्मा तो जो एक है वही एक है किन्तु यह शरीर अनेक परमाणुवोंके पिंडका बना हुआ है। देह और आत्मामें प्रकट बहुत अन्तर है। शुद्ध द्रव्यदृष्टिसे देखो तो आत्मामें न आदि है और न अत है। यद्यपि यह देह जड़ है तो भी यह आत्मा केवलज्ञान शरीरी है। ज्ञान शरीर है। ज्ञान ही जिसका शरीर है, ज्ञान ही जिसका स्वरूप है। ऐसा यह अमूर्त आत्मा देहमें है। पंचेन्द्रियको बसमें करके इनका व्यापार बंद करके ज्ञानोपयोगसे अपने आपको सोचो कि यह आत्मा जो देहसे भिन्न है वह है किस रूप? तो ध्यान देकर निरखो तो निरखनेमें आयगा कि केवलज्ञान शरीर है इसका। ज्ञान ही स्वरूप है इसका। इसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श नहीं है। यह आत्मा पत्थर रोड़ोंकी तरह कोई पिंड रूप नहीं है किन्तु यह मात्र केवलज्ञान शरीरी है। ऐसा लक्षण करके सहित यह परमात्मा होता है। यह निःसंदेह जानो जो देहमें बसता हुआ भी असूची नहीं है, रूपवान् नहीं है, आदि अंत कर सहित नहीं है। देहके किसी पदार्थ को नहीं छूता है वह ही शुद्ध आत्मा है। हम किस पदार्थको जाना करें कि हमारा कल्याण हो? इस लोकमें यह धन वैभव परिवार, दुकान ये सब दृश्यमान मायामय चीजें हैं। इनकी चिंतामें इनके चिंतनमें इस आत्माको लाभ कुछ नहीं है, प्रत्युत हानि है। कौनसा तत्त्व ऐसा है कि जिसके जाननेसे हम आप शांत हो सकते हैं? बहुत अनुभव किया होगा घर बार, मित्रजन इनके नेहमें दृष्टिमें आत्माने शांति नहीं पायी है। लाभकी बात नहीं पायी है। केवल अपनी कल्पनासे मौज मान लिया, मैं इतने परिवार वाला हूं, बच्चों वाला हूं, स्त्री वाला हूं, धन वाला हूं, यह केवल कल्पनासे मौज मानी जा रहा है। श्रावकाचारमें एक स्मृत नवनीतकी कथा है। एक पुरुष गरीब भिखारी श्रावकोंके यहां छाछ पीने गया। छाछ पीकर जो मूछपर हाथ फेरा तो देखा कि घी सा गाढ़ा लग गया है। उसने सोचा कि ऐसी छाछ बीसो जगह यदि हम घर घर पीवें और मूछपर हाथ फेरें तो घी जुड़ता रहे। कुछ वर्षोंमें बहुत घी जुड़ जायगा। सो जगह-जगह वही श्रावकोंके यहां मट्ठा पीवे और और मूछों पर हाथ फेरे और डबलियामें जोड़ता जाय। दो तीन वर्षमें डेढ़ सेर घी तैयार हो गया। वह भिखारी अपने फूसकी झोपड़ीमें जाड़ेके दिनोंमें आग ताप

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रहा था, ऊपर डबली लटकती थी। वह कल्पना करता है कलके दिन यह १॥ सेर घी बेचूंगा। आठ, दस रुपयेका हो जायगा। फिर इससे खोन्चाकी सामग्री खरीदूंगा। जब बीस, पचास रुपया हो जायेंगे तब बकरी ले लूंगा, फिर गाय, भैंस ले लूंगा, बैल ले लूंगा, फिर खेती करुंगा, फिर जमीन खरीद लूंगा, फिर मैं पूंजीपति कहलाऊंगा, शादी कर लूंगा, बच्चे होंगे, बच्चे आकर कहेंगे कि दद्दा रोटी खाने चलो तो कहेंगे कि अभी नहीं चलते हैं, दूसरी बार फिर बच्चा आयेगा कहेगा कि दद्दा चलो, मां ने रोटी खानेको बुलाया है तो कहेंगे कि अभी नहीं जायेंगे। तीसरी बार सोचा कि बच्चा कह रहा है चलो दद्दा रोटी खाने, अम्माने बुलाया है तो लात फटकार बोला कि अबे कह दिया कि अभी नहीं जायेंगे। ऊपर जो डबलिया रखी थी उसमें लात लग जानेसे वह आगमें गिर गयी घी जल गया झोंपड़ी जल गई। अब बाहर निकल कर वह कहता है कि अरे दौड़ो मेरा मकान जल गया, मेरी स्त्री जल गई, मेरे पुत्र जल गये, मेरे गाय बैल भैंस जल गये, मेरी सारी सम्पत्ति जल गयी। बाहरके लोग सोचते हैं कि कल तक तो इसके पास कुछ न था, भीख मांगता था आज यह कहता है कि मेरा मकान जल गया, मेरी सम्पत्ति जल गयी, मेरी स्त्री पुत्र जल गये। सब लोग उसे समझाते हैं। एक सेठ जी समझाने लगे, अरे तेरे पास कुछ था तो नहीं, क्यों बक रहा है ? उसने अपना किस्सा सुनाया। सेठने कहा कि तूने केवल कल्पना ही तो किया था, आया गया तो कुछ नहीं। सो एक पंडितजी खड़े थे वह बोला सेठ जी ऐसे ही तो कल्पनाएं आप भी कर रहे हैं। तुम्हारी आत्मामें कुछ आता जाता तो नहीं। कल्पना कर लिया कि लाखोंका वैभव है। तुम्हारा आत्मा तो अकेला है कि नहीं है ? उस आत्मामें एक नया पैसा भी तो नहीं आता है। इस आत्माका कोई मित्र नहीं है, कोई साथी नहीं है। मोह एक प्रबल संकट है। यह मोह न होता तो यह आत्मा शुद्ध आनन्दका भोक्ता होता। सर्वविश्वका ज्ञाता बनता, परमात्मा हो जाता। इस जीवके धैर्य नहीं है। जहां समागम है वहां नियमसे वियोग जरुर हो गए। अज्ञानमें क्या तत्व रखा है ? मोहमें क्या बात लूट लोगे ? यह मोह ही प्रबल संकट है। यह मोह ही एक विकार ऐसा है जो इस जीवको अपवित्र बनाए हुए है। संसारमें रुलाने वाले इस मोहको हटाओ और अपने आपके अन्तरमें अपने शुद्धस्वरूपको देखो। यह सहजपरमात्मा आपमें अनादि अनन्त विराजमान है। इस मेरे आत्माको कोई कमी नहीं है। इसमें ज्ञानकी कमी है, न आनन्दकी कमी है। इसका तो स्वरूप ही ज्ञान और आनन्द है। आत्मा और क्या है ? जिसे लोग कहते हैं कि यह तो एक हवा है, रहे रहे न रहे न रहे। यह हवा भी नहीं है। यह हवासे भी सूक्ष्म है। यह है ज्ञान और आनन्द भाव है, जिस ज्ञान और आनन्दके लिए यह ज्ञानानन्दी तरस रहा है, बाहरमें खोज रहा है, दर दर भटक रहा है वह ज्ञानानंदी यह स्वयं है। पर स्वयंका विश्वास नहीं है इसलिए बाहर भटकता है। अपने आपमें अपने आपको नहीं देखना चाहता है। जैसे किसीसे कोई कह दे कि तेरा कान कौवा ले गया है, वह जो उड़ रहा है। वह कौवा की ओर दौड़ता है। वह लड़का रोने लगता है और बेतहास दौड़ता है। रोता है, चिल्लाता है, मेरा कान कौवा लिए जा रहा है। कोई कहे अरे कहां दौड़ रहा है ? तो कहेगा अरे बातें करनेकी फुरसत नहीं है। मेरा कान कौवा लिए जा रहा है उसे छुड़ाना है। अरे सुन तो जरा, अपना कान टटोल तेरे पास है कि नहीं। अरे क्या टटोलें, हमसे बड़े आदमीने कहा है कि तेरा कान कौवा लिए जा रहा है। अरे कहां ले गया ? तेरे हाथ है, तू कान टटोल ले, कान भी तेरे निकट ही है। तू देख तो सही। जब हाथसे टटोलता है तो देखता है अरे कान मिल गया है। कौवा नहीं ले गया है। इसी प्रकारसे ये जीव ज्ञान और आनन्दके लिए विषयोंमें पड़े हुए हैं, बाह्यपदार्थोंमें दौड़ लगा रहे हैं, ऋषि संत समझाते हैं, अरे कहां दौड़ लगाते हो ? कहां बाहरमें अपना ज्ञान और आनन्द ढूंढ़ते हो ?

विषयोंमें, परिवारमें, मित्रजनोंमें कहीं ज्ञान और आनन्द नहीं है। नहीं नहीं हमारे पिता दादा बता गए, समझा गए हैं, कैसे नहीं है भोगोंमें परिवारमें आनन्द ? फिर बारबार ऋषि संत समझाते, अरे देख लो ना, बाहरमें कहीं भी तो आनन्द नहीं है। एक पाव सेकेन्ड तो इन सबको भुलाकर अपने आपको देखो तो सही कि तेरे ज्ञान और आनन्द है कि नहीं ? तेरा ज्ञान और आनन्द तेरे पास है, तेरे ज्ञान और आनन्द तुझमें ही तो बतला रहे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। अपने ज्ञान और आनन्दस्वरूपको टटोलनेमें सेकेण्डका हजारवां हिस्सा भी तो नहीं लगता। देखो तो सही। कुछ समझमें आ जाय और एक साथ सबको भूल जावो तो कुछ क्षणके लिए औरोंको छोड़कर अपने आपके ज्ञानानन्द-स्वरूपको निहारो तो वह ज्ञान और आनन्द मिल जायगा। और वह अब सोचता है कि किस ज्ञानानन्दकी तलाशमें अब तक भटकता चला आया हूं। वह मिलता है अपने ही पास। जैसे कोई सर्राफ़ अपने दाहिने हाथकी मुट्ठीमें कोई सोनेकी मुदरी रख ले और लोगोंसे बातोंमें लग जाय तो कुछ देरमें उसे ध्यान होता है कि सब चीजें सम्हाल-कर रख ली है पर एक मुदरी नहीं मिलती है। वह सब जगह ढूंढता फिरता है। यद्यपि मनुष्यका दाहिना हाथ ज्यादह चला करता है, मगर ऐसी बुद्धि मारी गयी कि मुंदरीकी ममतामें दरी उठाता है तो बांये हाथसे, इसके नीचे तो मुंदरी नहीं है, संदूक खोलता है तो बायें हाथसे, कहीं संदूकमें तो नहीं रख दिया? तड़फता था, विह्वल होता था ख्याल आ गया, यह मुट्ठी क्यों बंधी है? खोलकर देखें तो। अब खोलकर देखा तो वह मुंदरी मिल गयी। कहां कहां खुदको भूलकर खोजा, यही तो अपना शरण है, अपने आपमें है। और खोजता कहां है? दुनियां भरके विषयसाधनोंमें। धन पाया है लाखोंकी सम्पदा पाई है, उसीको ही अपना सब कुछ मान लिया और अपने आपको न कुछ मान लिया। अकिंचन् मान लो अपनेको. हो भी अकिंचन्। आपकी आत्मामें तो भींतका चूना तक भी नहीं लगा है और न एक नया पैसा भी चिपका है। केवलज्ञान और आनन्दस्वरूप हूं, और रूप मैं नहीं हूं, अपने ही स्वरूप हूं। यदि ऐसी ही अपनी दृष्टि जगे तो यह आपका सच्चा बड़प्पन है। और वैभवकी ओर दृष्टि जाय, तृष्णा में चित्त बसे, असार प्रकट जड़ वैभवकी रुचि करे तो यह बड़ेका बड़प्पन नहीं है। यह तो एक सिनेमा है, लोग चलते हैं फिरते हैं, परस्पर बोलते हैं, चिल्लाते हैं, हंसते हैं। यह गया वह गया, कहां गया? इन समागमोंमें विश्वास न रखकर अपने आपको अकिंचन् मानो। मेरे पास कुछ भी नहीं है, मेरे पास कहीं कुछ भी नहीं है। मैं तो एक अकेला ही हूं। रही सुख दुःखकी बात। सुख धनसे नहीं होता है। धन बढ़ जानेसे विकल्प बढ़ जाता है। और कोई कल्पना बना ली जाती है कि कभी तो बड़ा टोटा पड़ जाय तो टोटेको सम्हालना कठिन हो जाता है, कभी कल्पनाके अनुसार लाभ न मिले तो विह्वलता हो जाती है। आप चाहे सैंकड़ों मन चांदी खरीदकर रख लें और यह कहीं सुन लिया कि इस खरीदके ऊपर १० रुपया सैंकड़ा चांदीका भाव तेज हो गया है तो इसमें हजारों लाखोंका मुनाफा सोच लिया। खुश हो रहे हैं। और दो तीन दिनके बादमें सुननेमें आ जाय कि दाम १५ रुपया सैंकड़ा घट गये हैं तो फिर दुःखोंका क्या ठिकाना? वह सोच रहा है कि २५ रुपया सैंकड़ाका टोटा पड़ गया है, चीज तो रखी है, खैर व्यापारकी चीजको तो जाने दो। जो गहने घरमें बनवा रखे हैं, जिनका कभी बेचनेका विचार न होगा, रखे हैं किन्तु भाव तेज सुनकर तो कुछ ऐसा गौरव मानते हैं कि अब क्या है? अब तो लखपति हो गये। अभी तक ५० हजार थे अब लाख हो गए। और अगर साढ़े बासठका हुकुम आ जाय तो गणित लग जायगी कि अब तो २५ हजार ही रह गये हैं। गहना बेचना है नहीं, किन्तु शान शौकतके लिए रखे हैं। उसमें भी नफा टोटेका हिसाब लगाकर हर्ष विषाद, माना करते हैं। धन पाकर कोई शांत हुआ हो तो बतलावो? धन पाकर कोई शांत नहीं हुआ है। इसका दृष्टान्त हम बता सकते हैं, पर धन पाकर कोई शांत हो गया हो तो इसका एक भी दृष्टान्त नहीं। क्यों न रहेगा कि आखिर धन पाया है तो उसमें आगेकी इच्छा होती है व जो धन पाया है उसकी ही रक्षा करनेका यत्न होता है और यह सब अपने अधिकारकी बात है नहीं। होना होता है तो होता है और नहीं होना होता है तो नहीं होता है। तो धन पाकर शांतिका मार्ग नहीं मिलता है। इस परिस्थितिमें भी अपनेको ऐसा ध्यानमें लावो कि मैं अकिंचन् हूं। मेरा कहीं कुछ नहीं है, मैं तो केवल ज्ञानस्वरूप हूं, अमूर्त हूं। इस ध्यानसे शांतिका मार्ग मिलेगा। और इतना उच्च धर्म ध्यान करने वाला पुरुष पुण्यका हीन नहीं हुआ करता है। यह वैभव पुण्यका फल है। यह जोड़ेसे नहीं जुड़ता, यह हटानेसे नहीं हटता। उदय है तो पासमें है, उदय नहीं है तो नहीं है। एक लौकिक कथानक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि ब्रह्मा जी एक लड़केकी तकदीर बना रहे थे। तकदीरमें लिख रहे थे इसकी तकदीरमें ५ रुपया और एक काला घोड़ा रहेगा और लड़केको करोड़पतिके घरमें पैदा किया। एक साधु निकला बोला महाराज क्या कर रहे हो? कहा तकदीर बना रहे हैं? कितनी बना रहे हो? ५ रुपया और एक घोड़ा। पैदा किसके यहां करोगे? करोड़पतिके यहां, मानलो बिड़लाके यहां अथवा टाटाके यहां। कहा अरे अन्याय न करो करोड़पतिके यहां पैदा कर रहे हो और केवल ५ रुपया व एक काला घोड़ा। अरे इतनी ही तकदीर बनाना हो तो किसी गरीबके घर पैदा करना था। बोले तुम्हें क्या मतलब? हमें जो करना होगा करेंगे। साधु बोला जो लिखते हो लिखो पर हम तुम्हारे लिखेको मेट देंगे। अब दोनोंकी ठन गई ब्रह्माकी और साधुकी। ब्रह्माने तकदीर लिखकर करोड़पतिके यहां पैदा कर दिया। उस करोड़पतिका सारा वैभव नष्ट हो गया बिक गया, छितर बितर हो गया, और एक झोंपड़ीमें रहने लगे। केवल ५ रुपया और एक काला घोड़ा उसके पास रह गया। जब १२-१४ वर्षका हुआ तब साधुको याद आया। उसकी तलाशमें निकला। गरीबका कौन पता बतलाये। चला पता, लगाते लगाते पता लग गया। वहां पहुंच गया, उस लड़केने साधुका सत्कार किया। साधु बोला, बेटा! जो हम कहेंगे सो तुम करोगे? बोला हां महाराज हम करेंगे। साधु बोले तुम्हारे पास क्या है? बोला ये ५ रुपये और एक काला घोड़ा। अच्छा इस घोड़े को बेच दो। १०० रुपयेमें बिक गया। अब १०५ रुपये हो गये। इतनेमें आटा, शक्कर, घी मंगावो, मगा लिया, बटिया बन गई। गांव भरको जिमा दो, जिमा दिया। दिन गुजर गया। रात्रिमें ब्रह्मा फिर चिंता करते हैं कि ५ रुपये और एक काले घोड़ेका बचन दिया है वह तो देना ही होगा। दूसरे दिन ५ रुपये और काला घोड़ा भेज दिया। दूसरे दिन फिर साधुने कहा बेटा तुम्हारे पास क्या है? बोला ५ रुपये और एक काला घोड़ा। अच्छा तो घोड़ेको बेच दो। १०० रुपयेमें बिक गया। १०५ रुपये हो गये। वही काम किया। सामान खरीदा और गांव भरको खिलाया। इस तरहसे कई दिन गुजर गये। अब ब्रह्मा सोचते हैं कि बड़ी आफत आयी। ५ रुपये तो जहांसे चाहें दे देंगे पर काला घोड़ा रोज-रोज कहांसे भेजेंगे? अब ब्रह्मा साधुसे हाथ जोड़कर कहने लगे, महाराज अब कष्ट न दो। जो कहोगे करूंगा। हमने इसकी तकदीरमें वही करोड़पतिका वैभव फिर लिखा। तो प्रयोजन यह है कि जिस क्षण पदार्थोंकी चितामें रात दिन रहते हैं और इस अपने चैतन्यप्रभुकी सुधि खो बैठते हैं ऐसी जिन्दगी बिताकर लाभ क्या मिलेगा सो बतलावो? इस जिन्दगीमें कोई सार नहीं है। धन वैभवको तो पुण्यके भरोसे पर छोड़ दो। उदय ठीक है तो आपका थोड़ेसे ही काम बन जायगा और यदि उदय ठीक नहीं है तो आप कितने ही बहाने करें, कितनी ही चिंताए करें, कितना ही आत्मकल्याणका प्रयत्न करें, काम न बनेगा। इसीसे ही पुण्यवानोंकी शोभा है। जड़ वैभव की तृष्णा बनी रहती है तो इससे पुण्यवानोंकी शोभा नहीं है। देखा होगा आपने बड़े बड़े पुण्यवानोंको। उनका काम उनके ही पुण्यसे चल रहा है। और ये पुण्यवंत सेठ किसी सत्संगमें बैठे हैं और किसीकी सेवा कर रहे हैं, अपने ही धर्म कार्योंमें दत्तचित्त हैं। सब लोग देख रहे हैं। ऐसी स्थितिमें पुण्यवानोंकी कितनी शोभा बढ़ती है। शोभा तो धर्मसे है, तृष्णाओंसे शोभा नहीं है। इस कारण बाह्य पदार्थोंमें तृष्णाको त्यागकर उदयके अनुकूल जो कुछ मिला है उसको भी अपनी जरुरतसे कई गुना मानकर उस ओरसे निर्विकल्प हो और आत्महितके लिए अपने आत्मस्वरूपका श्रद्धान करो, ज्ञान करो और अपने आपके आत्माका ही रमण करो। यह विधि अपने उद्धारकी हैं बाकी तो इन भोगोंकी तृष्णामें लाभकी आशा तो दूर है किन्तु हानि ही हानि पावोगे। इस जीवनमें क्लेश, मरने पर क्लेश और जिस जीवनको पावोगे उसमें भी क्लेश, सो यह होता है इसकी ज्ञान दृष्टि रहे और अपने आत्महितकी कोशिश करो। यह होगा ज्ञानार्जनसे। सो ज्ञानी पुरुषकी सेवा सत्संगमें रहते हुए अपने ही शुद्ध ज्ञानका अर्जन करलो तो साथी और शरण यही सत्य ज्ञान होगा। अन्यको शरण सोचना धोखा है। उससे कोई लाभ न होगा। किसकी शरण देखो? अपने आपमें बसे हुए अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्य धन जो निज प्रभु है उसकी शरण गहो, वहां ही तुम्हें आत्महित मिलेगा, शांति मिलेगी। इस मोह पर दृढ़ प्रहार करो कि यह टूट जाय और अपने आत्माके ज्ञानप्रकाशका अनुभव हो जाय।

http://sahjanandvarnishastra.org/

बहिरात्मा उसे कहते हैं जो बाहरी पदार्थोंको अपना आत्मा समझें। बहिरात्मा कहो या मिथ्यादृष्टि कहो सारा संसार बहिरात्मासे भरा हुआ है। मनुष्यकी सख्या बहुत बड़ी है और सबकी छोटी है। मनुष्यगतिसे ज्यादा हैं नरकगतिके जीव, और नरकगतिसे ज्यादा हैं जीव देवगतिमें और देवगतिसे भी ज्यादा जीव हैं तिर्यञ्चोंमें भी ५ हैं ना। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पचेन्द्रिय जितने पचेन्द्रिय तिर्यञ्च हैं उससे ज्यादा चार इन्द्रियमें हैं उससे ज्यादा तीन इन्द्रियमें, उससे ज्यादा दो इन्द्रियमें और उसमें ज्यादा एकेन्द्रियमें और ऐकेन्द्रियमें भी ५ भेद है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति। इनमें सबसे ज्यादा अग्नि, उससे ज्यादा पृथ्वी, फिर जल, फिर वायु और सबसे अधिक है वनस्पति। वनस्पति जीव भी दो तरहके होते हैं। एक प्रत्येक और एक साधारण। प्रत्येकसे अनन्तगुणा साधारणमें जीव होते हैं। चाहे साधारण कहो, चाहे निगोद कहो दोनोंका एक अर्थ होता है। तो कितने हैं निगोदिया जीव ? जैसे आलू, मूली, रताल कंद आदि होते हैं तो एक सूईके अग्रभाग पर जितना कंद आया उतने टुकड़ेमें अनन्ते निगोदिया जीव होते हैं। फिर समूचा देख लो। ये तो हैं निगोदिया जीव जो वनस्पतिके सहारे रहते हैं और सूक्ष्म निगोदिया जीव उससे भी अधिक हैं। वे कहां रहते हैं ? सब जगह। लोकमें जितना आकाश है सर्वत्र भरे हुए हैं। वे सब जीव बहिरात्मा हैं, अन्तरात्माकी क्या गिनती। अंतरात्मा किसे कहते हैं ? जो अन्तरमें अपने आपके स्वरूपमें आत्माका अनुभव करे कि यह मैं हूं। केवल ज्ञानदर्शन मात्र चैतन्यस्वभावी यह मैं हूं। ऐसा अन्तरमें जिसने आत्माको माना है उन्हें कहते हैं अतरात्मा। और परमात्मा किसे कहें ? जो अंतरात्मा साधना के बलसे चार घातिया कर्मोंका नाश कर चुकते हैं, केवलज्ञानदर्शन अनन्त आनन्द, अनन्तशक्तिका जिनके पूर्ण विकास हो जाता है ऐसे सर्वज्ञदेवको परमात्मा कहते हैं। सो बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा इन तीनोंका जानना सुगम है पर आत्माका जानना कठिन है। आत्माका वह सामान्यस्वरूप जो बहिरात्मामें भी है, अतरात्मामें भी है और परमात्मामें भी है तीनोंमें जो आत्माका सहजचैतन्यस्वरूप है उस स्वरूपका नाम हैं आत्मा। इसीको कहते हैं कारण-परमात्मा। इस ही का नाम है समयसार। इस जीवमें बहिरात्माका तो खूब परिचय किया और कुछ चर्चासे अंत-रात्माको भी जाना और परमात्माको भी जाना, पर परमात्मास्वरूप जो तीनों अवस्थावोंमें रहता है उस परमात्म-स्वरूपको न जाना। जब तक आत्मस्वरूप जाननेमें न आयगा तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। एक दृष्टान्त लो, जिस दृष्टान्तसे यह सुगमतया समझमें आयगा कि सर्वआत्मावोंमें सामान्यस्वरूपका नाम आता है कारणपरमात्मा है। जैसे मनुष्यत्व कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई वैश्य है और कोई शूद्र है। मान लो ४ प्रकारकी जातियोंमें बंटे हुए मनुष्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनसे बढ़कर चलें तो प्रत्येक मनुष्य एक एक व्यक्ति है। उन सब व्यक्तियोंमें जो मनुष्यत्व पाया जाता है वह सब एक स्वरूप है। जैसे कभी बुलावो कि ब्राह्मण आए तो ब्राह्मण ही आ गया। क्षत्रियको बुलावो तो क्षत्रिय आ गया। परन्तु मनुष्य आये तो कोई आ सकता है। उसमें विशेषता नहीं की जा सकती है कि तुम आये तुम क्यों न आये ? जैसे हजारों मनुष्य हैं, पर उन हजारों मनुष्योंमें पाया जाने वाला जो मनुष्यत्व है, वह एक स्वरूप है। और भी दृष्टांत लो। बालक जवान और बूढ़ा, तीन दशाएं होती है। तो आपने बालक बहुत देखे होंगे ? क्यों ना ? जवान भी देखे होंगे और बूढ़े भी देखे होंगे, पर मनुष्य न देखा होगा। आप कहेंगे देखा तो है। नाम लेकर बता दोगे। यह फलाने भाई हैं, ये फलाने हैं। यह जवान है, यह बूढ़ा है। पर मनुष्य देखा हो तो बतलावो। तुमने तो बालकको बताया, जवाबको बताया और बूढ़ेको बताया पर मनुष्य तो नहीं बताया। बालक, जवान और बूढ़े देखनेमें आये पर मनुष्य नहीं देखनेमें आये। मनुष्य जाने जाते हैं ज्ञानबलसे। यह मनुष्य सामान्य जो बालक बना, वही जवान बना और वही बूढ़ा बना। तो सब अवस्थावोंका जो आधारभूत हैं, जिसकी ये तीन परिणतियां होतीं हैं ऐसा जो कुछ ज्ञानमें जंचा इसका नाम मनुष्य है। इसी तरह बहिरात्मा अतरात्मा और परमात्मा तीनोंका खूब स्वरूप समझो तो आत्मा परिचयमें आये। परमात्मा कौन है तो जो आत्मस्वरूप, जो चैतन्य-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वभाव बहिरात्माका जो नाटक करता था, कभी अंतरात्मा बना और कभी परमात्मा बना। जिस स्वरूपके आधार में अनेक परिणतियां होती हैं वह मनुष्य ही आत्मा कहलाता है। उसको ही परमात्मा कहते हैं। उसको ही कारण-परमात्मा कहते हैं। कारणपरमात्माको लक्ष्यमें लेनेके लिए आचार्य महाराज ग्रन्थोंमें उपदेश देते हैं। ये मायामय समागम सब कुछ मिल गए, परिवार मिल गया, धन मिल गया, मोहीजन मिल गए, सब कुछ मिल गया मगर शरण सहाई कोई न हो सका इस आत्माका। स्वरूप इजाजत ही नहीं देता कि एक आत्माका कोई दूसरा आत्मा शरण बन जाय ऐसा कोई स्वरूप इजाजत ही नहीं देता। ऐसा हो ही नहीं सकता है। सबका जुदा-जुदा परिणमन है और अपने-अपने परिणमनसे परिणमते रहते हैं कोई दूसरा साथी नहीं है। मान लो कभी कोई गुजर गया तो घरके लोग रोते हैं ना? और बाहरी रिश्तेदार फेरा करने आते हैं। तो रिश्तेदार भी स्टेशनसे उतर कर रोते हुए आते हैं। महिलाएं तो विशेषकर। चाहे रेलमें बैठे हुए ताश खेलते हुए गप्पे करते हुए आये हों मगर घर रोते हुए आयेंगे। जब उनका रोना सुना तो घरके लोग और तेज रोने लगे। तो बतलावो रिश्तेदार क्या उसके दुखके साथी हो गये। अगर कोई रिश्तेदार अंतरंगसे दुःखी होवे तो भी दुःख नहीं बटा लेंगे किन्तु रिश्तेदारोंने भी एक दुःख मोल ले लिया। उसका दुःख तो ज्योंका त्यों है उसके दुःखको कोई बांट नहीं सकता। पर रिश्तेदारोंने अगर दुःख किया तो और दुःख मोल ले लिया। जैसे किसी इष्ट पुत्रकी कठिन बीमारीको देखकर मां भी बीमार हो जाय तो मां को पुत्र की बीमारीने नहीं बीमार बनाया किन्तु मां ने स्वयं मोह करके बीमारी मोल ले लिया। दूसरोंका दुःख कोई बांटता नहीं है। गुरुजी सुनाते थे कि खुरईमें श्रीमत सेठ रहते थे, वे बड़े तेज पुरुष थे। दो शादियां शायद हो गई थीं तीसरी फिर हुई। बहुवोंने, नौकरानियोंने सेठानीको समझा दिया कि सेठानीजी सेठजी बड़े तेज मिजाज हैं सो बड़ा ध्यान रखना। उनका आर्डर तुरंत निभाना। एक बार सेठजी का सिरदर्द हुआ। सेठने खबर दी कि सेठानीको भेजो दवा दारु करे। सेठानी दवा देने गई। दुःखी होनेका रोग बनाकर सेठानी गई, विह्वल होने लगी और अपने पलंग पर पड़ गई और बड़ा कष्ट बताने लगी। सेठानी तो सेठकी नई बहु थी, अपने सिर दर्दको भूलकर खुद सेठानीके पास पहुंचे। सेठने पूछा क्या तबियत खराब है? क्या दर्द करता है? सेठानीने कहा कि जबसे मैंने आपके सिरमें दर्दका समाचार सुना तबसे मैं विह्वल हो रही थी। इस समय मेरी तबियत खराब है, बात न करो। यह एक लटका सेठानीने सेठको दिखाया। तबसे सेठने फिर कभी मिजाज नहीं दिखाया। तो कोई किसीके सुख दुःखको नहीं बांट लेता है। घरके दस आदमी सुखसे रहते हैं तो कोई किसीके सुखको नहीं बांट लेता है। सब जीव अकेले हैं, किसी जीवका कोई साथी नहीं है, अकेले ही सब काम भोगते हैं, अकेले ही सब कषाय करते हैं। कर्म बंध होता है तो अकेले ही होता है। कोई किसीका साथी नहीं है। साथी होना तो दूर रहा, बिगाड़ न हो उनके निमित्तसे तो यह ही गनीमत है, पर ऐसा होता नहीं है। बतलावो संसारमें अनन्ते जीव हैं उनमेंसे इन चार घरके आदमियोंका कौनसा ऐसा स्वरूप है जिससे आप यह निरख सकें कि ये मेरे कुछ लगते हैं। कोई डिस्टेक्सन भी नहीं है, न कोई विशेषता है, सब जीव एक प्रकारके हैं, फिर उन घरके चार जीवोंमें जो मोह किया राग बना इसका फल कौन भोगेगा? सो सत्य तो वे ऋषि संत ही बतला रहे हैं कि तुम अपने सहजस्वरूपको निरखो। बहिरात्माकी अवस्थामें भी वही है अंतरात्माकी अवस्थामें भी वही है और परमात्माकी अवस्थामें भी वही है। तो उस अपने आत्मस्वरूपको पहिचानो। ऐसा ही परमात्मा, शुद्धात्मा, निज आत्मा या परम ब्रह्मदेहमें बसता हुआ भी देहको छूता नहीं है। और देहसे यह आत्मा छुवा जाता नहीं है, इसका वर्णन ३४वीं गाथामें कहा है।

देह वसंतुवि णवि छिवइ णियमं देहु वि जो जि।
देह छिप्पइ जो वि णवि मुणि परमप्पउं सो जि ॥३४॥

जो देहमें बसता हुआ भी देहको छूता नहीं है और देहके द्वारा छुवा जाता नहीं है उसको तुम परमात्मा

http://sahjanandvarnishastra.org/

जानो। जैसे गेहूंके कोरेमें या मन भर कोई लोहेका पिंड है, उस लोहेके पिंडके बीच आकाश रह रहा है पर आकाश को लोहा नहीं छू रहा है और न लोहेको आकाश ही छू रहा है। यहीं हम आप आकाशमें बैठे है, पर आकाशको हम आप छू नहीं रहे हैं। आकाशमें हाथ रखे हैं पर आकाशसे हम आप छुवे हुए नहीं है। इस तरहसे बढ़कर बात देखो। यह ज्ञानानन्द भावमात्र आत्मा इस देहमें बस रहा है और निमित्तनैमित्तिक बंधन भी लगा है। आकाशमें और हाथमें बंधन तो नहीं है। यहांसे हाथको उठाकर यहां कर लिया तो आकाश भी साथमें भागता, फिर ऐसा तो नहीं है। मगर देहमें और आत्मामें एक बंधन भी है कि आपका देह वहाँसे उठकर यहां आ जाय तो आत्मा भी आ जायगा। ऐसा बंधन भी है पर देह आत्माको छुवे हुए नहीं है और आत्मा देहसे छुवा हुआ नहीं है। जो आत्मा ज्ञानभावमात्र है उसको तुम परमात्मा जानो। यह देह कैसे बना है ? जो पहिले उपार्जित कर्म थे। उन कर्मोंके द्वारा यह देह बना हुआ है। यह सब आटोमेटिक काम हो रहा है। यह समझमें आ जाय तो वस्तुकी व्यवस्था बता सकते हैं। पर कोई किसी परद्रव्यको करदे, ऐसी धारणा बनाए तो वस्तुकी व्यवस्था नहीं बताई जा सकती है।

यह देह पहिले उपार्जित किए हुए क्षुद्र कर्मोंके निमित्तसे बना हुआ है। वे कर्म कैसे उपार्जित किये थे, क्रोध, मान, माया लोभ जो अपने स्वरूपके विभावपरिणाम हैं इन विभावपरिणामोंके कारण वे कर्म उपर्जित हुए थे। कहां तो मुझ शुद्ध आत्माका एकमात्र चैतन्यस्वरूप और कहां उस स्वरूपके विपरीत क्रोध, मान, माया, लोभों की अवस्था, कितना महान् अन्तर है ? कोई उच्च कुलमें पैदा हुआ मनुष्य कुछ नीच सावद्य काम करनेमें उतारु होता है तो लोग समझाते हैं कि जरा अपने पुरुषोंकी तो बात देखो। वहां तो तुम्हारा ऐसा उच्चकुल और कहां तुम्हारी मांस भक्षण रूप प्रवृत्ति ? आश्चर्य बताते हैं। इसी प्रकार यह भी महान् आश्चर्य है। कहा तो यह शुद्ध आनन्दस्वरूप ज्ञान और आनन्दरस कर परिपूर्ण और कहां ये क्रोध, मान माया, लोभ, कषाय, ये बिल्कुल विपरीत हैं, ऐसे विपरीत विभावोंसे कर्मबंध हुआ था। जैसा कर्मबंध होना था उसके अनुसार अब यह नवीन शरीर रचा गया है। इस देहमें यह आत्मा बस रहा है। निश्चयसे तो आत्मा अपने स्वरूपमें बस रहा है। देहमें नहीं बस रहा है। जैसे एक दृष्टान्त लो। एक घड़ेमें आपने दही भर दिया। तुम सोचो कि यह दही किसमें रह रहा है ? क्या उत्तर दोगे ? निश्चयसे तो दही दहीमें रह रहा है। घड़ेमें दही नही है। चाहे घड़ेको फोड़कर खपरियोंमें देख लो। घड़ेमें दही नहीं रह रहा है, दहीमें दही है। इसी प्रकार आत्माकी बात है। आत्मा कहां रह रहा है ? आत्मा, आत्मामें रह रहा है, आत्मा शरीरमें नहीं रहा है। पर जैसे दही मिट्टीके घड़ेमें व्यवहारसे रह रहा है इसी प्रकार आत्मा देह में व्यवहारसे रह रहा है और वह असद्भूत व्यवहार है। लेकिन सम्बन्ध है इसलिए अनुपचारित असद्भूत व्यवहार है। जैसे कहते हैं कि यह मेरा शरीर है। यह बात झूठ है कि सत्य है ? किस नयकी बात है अनुपचारित असद्भूत व्यवहारकी बात है और कहे कि यह घर मेरा है तो यह कितना झूठ है ? और मेरी जितनी बात है यह झूठ है, उससे कम झूठ है कि ज्यादा ? यह मिट्टीका मकान मेरा है, यह बात कहना झूठ है कि नहीं ? इसे उपचारित असद्भूत बोलते हैं। यह आत्मा देहमें बस रहा है सो यह बात झूठ नहीं है। सम्बन्ध है लेकिन फिर भी भिन्न-भिन्न वस्तुवें हैं। इस कारण यह असद्भूत व्यवहारसे रहा है, पर निश्चयसे देखो तो यह देहको छूता नहीं है और यह देहके द्वारा छुवा नहीं जाता है। तब सर्वविकल्प हटाकर इस देहका भान न रहकर केवल ज्ञानस्वरूप अपने आपका उपयोग रहता है तब यह कितना हल्का हो जाता है ? मानो यह जमीन पर भी नहीं बैठा है। अत्यन्त हल्का भार-रहित अनुभवमें आता है। ऐसे अपने इस शुद्ध आत्माके ज्ञान बिना लाखोंकी भी सम्पदा जुड़ जाय तो बेकाम है, बेकार है। शांति देनेमें समर्थ नहीं है। रईसोंका दुःख रईस जानें और आजके जमानेमें तो कहना ही क्या है ? नींद नहीं आती है। सर्वसाधन हो गए, ठंडे कमरे हैं, ठंडे नहीं हैं तो मशीनसे ठंडे कर लिये। मकानमें पहरेदार भी खड़े हैं। मन्त्री लोग जी हजूरी कर रहे है पर वह धनिक पुरुष अन्तरमें बेचैन हो रहा है। उसके दिलको पकड़कर आप-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

रेशन कौन कर सकता है ? वह धनिक बड़ा दुःखी है। शांति तो जब अपने अखण्ड चैतन्यस्वरूपका उपयोग हो तब हो सकती है। जैसे मनुष्य-मनुष्य सब एक तरहसे पैदा होते हैं। एक तरहसे मरते हैं। मनुष्य मनुष्यका सुख दुःख भी सब एक तरहसे चलता है। जातिभेद हो जानेसे जैसे कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई हिन्दू है। पर जाति भेद होनेमें यह नहीं हुआ कि कोई और ढंगसे पैदा हो, कोई और ढंगसे मरता हो। सुख दुःख भी सब एक ही ढंग से होते हैं। सबकी एक विधि है। सुख दुःखमें मृत्युविधानमें फर्क नहीं है। विशेषकी बात अलग है। इष्ट चीज न मिलनेसे दुःख है। यही बात मुसलमानोंमें वही बात हिन्दुवोंमें है। मृत्यु विधान सबका एक है। सब एकस्वरूपमें उत्पन्न हुए हैं। यों उत्पन्न होनेमें क्या हुआ ? कोई जल्दी उत्पन्न हुआ, कोई देरमें, इस भेदकी बात नहीं कह रहे हैं। मृत्युविधि एक है। इसी प्रकार जो जीव संकटोंसे छूटेंगे, सत्य सुख होगा उनका एक ही प्रकार है कि वे अपने आत्मा के शुद्धस्वरूपको जान लें और इस शुद्धस्वरूपमें रम जायें। कोई भी आत्मा हो जो भी संकटोंसे मुक्त होगा वह इस ही उपायसे मुक्त होगा और कोई दूसरा उपाय नहीं है। ऐसे तुम अपने परमात्माको जानो। अर्थात् वीतराग निर्विकल्प समाधिमें स्थित होकर अनुभव करो। इस दोहे में यह बात कह रहे हैं कि ममत्व परिणममें स्थित जीवोंसे जो शुद्ध आत्मा हेय है याने छोड़े हुए है, ममतासे ग्रस्त जीव अर्थात् पहिले गुणस्थान वाले जीव मिथ्यादृष्टि शुद्धआत्मा को छोड़े हुए है पर जिस देहमें ममत्वका परिणम नहीं रहा, भेदविज्ञान हो गया ऐसे ज्ञानी जीवोंका यह शुद्ध आत्मा महाद्वीप है। तुमको सब प्रयत्न करके आखिर एक चीज क्या जानना है ? अपने आत्माका सहज जाननस्वरूप जानना है। इस अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञान न हो तो आप धर्मके नामपर कितने ही व्रत करलें, क्रिया कर लें, विधान कर लें, भक्ति कर लें, वे सब फल न देंगे। उल्टा ही काम कहलायगा। अपना ज्ञान अगर सही है तो थोड़े व्रत हों, थोड़ा तप हो थोड़ी साधना हो, सब सही है।

ये जो डेगची होती हैं, जिनमें साग छौंकते हैं, पतेला कहते हैं। भगोना भी बोलते हैं। भगोना इसलिए बोलते हैं कि भगोना। उसको टालो तो मुश्किलसे सरकता है सो भगोना। जो भागे नहीं सो भगोना, हम पतली की बात कह रहे हैं भगोना की नहीं। पतेली जिसमें साग आदि छोंका जाय पतेली में नीचे तली नही होती है गोल होती है। अगर सबके नीचे पतेली औंधी रख दो तो ऊपर कैसे रक्खो ? औंधी ही रखना पड़ेगा। ४-६-१० कितने भी रखो औंधी ही रखना पड़ेगा और पहिले सीधी रख दो तो सब सीधी ही रखना पड़ेगा इसी प्रकारसे आत्माका ज्ञान जब सही है तो जितने भी व्रत तप आत्मामें धरोगे वे सब सीधे आयेंगे। तो पहिले ज्ञान ही मिथ्यात्वका है तो जितने ही जप तप करोगे तो वे सब मिथ्या हो जायेंगे। इसलिए आत्मज्ञान सही होना धर्मके लिए सर्वप्रथम आवश्यक है। जगतके जीवोंने अब तक बहुत बहुत परिणितियोंका ज्ञान और किया वह भी द्रव्यसर्वस्वके रूपसे ज्ञान किया किन्तु अपने आपमे नित्य प्रकाशमान शुद्ध आत्माका ज्ञान न किया और इसी कारण यह जीव संसारमें रुलता रहा है। संसारसे छूटनेका उपाय कितना सुगम है, कितना स्वाधीन है कि अपनी ओर जरा दृष्टिकी कि लो सर्वसंकट समाप्त हो जाते हैं। इस शुद्धआत्माको कोई भी देखले, शुद्धात्मत्वका ज्ञान अनुपम आनन्द उत्पन्न करता हुआ होता है। जो समता परिणममें रहने वाले योगी हैं उन योगियोंमें शुद्धआत्माके दर्शन से उत्पन्न होने वाले आनन्द का विशेषकर अनुभव है। यह शुद्धआत्माका ज्ञान आनन्दको पैदा करता हुआ प्रकट होता है।

जो समभाव परिट्ठियइ जोइह कोई फुरेइ।
परमाणँद जणँतु फुडुँ सो परमप्पु हवेइ ॥३५॥

यह परमात्मा उनको दृष्ट होता है जिनको जीवन और मरण आदिमें समता परिणाम हो। कोई अलौकिक निधि है यह जिसके देख लेने पर मरणकी भी यह उपेक्षा कर जाता है। मरण आता हो तो आगे यदि मैं अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपको उपयोगमे लिए हुए हूं तो चाहे मरण आये उस समय भी समाधि परिणममें रहूं, मृत्यु होनेका फल तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्तम है। मरणका भय उन्हें होता है जिन्हें इन समागमोंमें लोभ है, तृष्णा है, रुचि है, मेरा इस जगत्में कहीं कुछ नहीं है, मेरा तो मात्र यह मैं आत्मा हूं और यह शुद्धआत्मा मेरे उपयोगमें रहे ऐसी स्थितिमें मैं इस दुनियांको छोड़कर किसी भी दुनियांमें चला जाऊं तो मेरी हानि नहीं है। विकल्प करते हो, राग और द्वेषकी परिणतियां बनी हों तो चाहे डाक्टरोंके बीचमें हो, लड़का लड़कियोंके बीचमें हो तो भी हानि ही हानि है। ये लोग क्या साथ दे देंगे? इसलिए ज्ञानी संतोंका ऐसा दृढ़ चित्त रहता है कि समता परिणममें रहूं। मेरा कुछ भी बना रहे अथवा न रहे, कुछ भी हुआ करे उसमें मेरा लाभ है। जीवन और मरण इन दोनोंमें जरा सोचो कि अनर्थ कार्य कौन है? जन्म है अनर्थ कार्य कि मरण है? मरणके बाद मुक्ति होती है और मलिन जीवसे संसारकी गतियां होती हैं। पर जीवनके बाद मुक्ति किसमें हुई? निर्विकल्पका पूर्वरूप जन्म है कि मरण है? जब आयुकर्मका क्षय होता है तो वह जीव मुक्ति को प्राप्त होता है। आयुकर्मका क्षय कहो या मरण कहो, एक ही बात है। अरहंत भगवान्के मरणका नाम पंडित-पंडितमरण है। मरण शब्द को लोग असगुन बताते हैं। भगवान्के मरणका नाम मरण नहीं कहा उसको निर्वाण कहते है, किन्तु मरणका नाम यही है ना, आयुका विनाश। आयुका विनाश अरहंत भगवान्के भी होता है। सभी कर्मोंका विनाश मरणके बादमें होता है पर जन्मके बाद किसीका निर्वाण होता है? दूसरी बात यह है कि जन्मका समय कोई समता परिणमको लिए हुए नही होता पर मरणके समयमें समतापरिणाम हो सकता है, और समतापरिणाम जिस स्थितिमें रहता है वह तो है उपादेय और जिसके समतापरिणाम नहीं रहता है वह है अनुपादेय। जन्मके समयमें समतापरिणाम किसीमें हो, पुराणोंमें पाया हो या कहीं समझा हो तो बतलावो। जन्ममें समतापरिणाम होता ही नहीं है। चाहे तीर्थंकरका भी जन्म हो मगर जन्मके समय भी तीर्थंकरके भी समताआत्मसमाधि परिणाम नहीं होता है। मरणके समयमें ही समाधिपरिणाम होता है। समाधिमरण तो लोग कहा करते हैं पर समाधि जन्म भी कोई कहता है क्या? अच्छा जन्म और मरणमें से भला कौन है? मरण। मगर ये मोही लोग इस मरणसे भय खाया करते हैं, सो भय खानेकी चीज मरण नहीं है। भय जो उत्पन्न होता है जीवके वह मोह रागद्वेषके कारण होता है। कोई भी पुरुष मर रहा हो ऐसे मरणके समय उसके घरमें राग नहीं है, परिवारमें राग नहीं है, किसीका विकल्प नहीं है और अपने एक शुद्ध ज्ञानस्वरूपको ही तक रहा है तो उसको कोई संकट नहीं। साधुजन जीवन और मरण, इनमें समतापरिणाम रखते हैं। लोभ और अलोभमें भी जिन योगियोंमें समतापरिणाम होता है उन योगियोंमें परम शुद्ध आनन्द उत्पन्न करते हुए यह शुद्धआत्मा प्रकट होता है। एक जगती की टीकामें दृष्टांत दिया है कि नई बहूके जब उसके गर्भ रहा और गर्भका दिन पूर्ण हुआ तो सास से कहती है सासजी जब बच्चा हो तब मुझे जगा लेना। ऐसा न हो कि मेरे सोतेमें ही बच्चा हो जाय तो सास जवाब देती है कि बहु डर मत। बच्चा पैदा होगा तो तुझे जगाता हुआ पैदा होगा यह कारणपरमात्मा शुद्धआत्मा जिनको दृष्ट होता है, उनके उपयोगमें प्रकट होता है। प्रभुके दर्शन हो चुके, उनका चिन्ह क्या है? उनका चिन्ह है अनुपम अलौकिक शुद्धसहज आनन्दका अनुभवन। इन लौकिक भोगविषयोंके कल्पित सुखको छोड़कर वास्तविक आत्मीय सुखका अनुभव जिसे हुआ उसे प्रभुके साक्षात् दर्शन हुए समझना चाहिए। हम संकल्प विकल्प मचाया करते हैं और चाहते हैं कि मुझे प्रभुके दर्शन हों तो यह नहीं हो सकता है। परपदार्थोंकी रुचिपूर्वक बैठाले हुए आसन पर प्रभु विराजमान नहीं होता। जब आपके घर कोई मेहमान आफिसर आदि आते हैं तो आप अपने घरकी बहुत सफाई किया करते हैं। तो जब हम प्रभुको अपने हृदयमें विराजमान करना चाहते हैं तो प्रथम कर्त्तव्य तो हमारा यह है कि हम अपनी हृदय भूमिको हृदयआसनको स्वच्छ बनाए। हृदय की स्वच्छता यही है कि किसी परपदार्थोंमें राग द्वेष न बसे। लोग परिवारमें मौज मनाते हैं धन वैभवमें मौज मनाते हैं, हर्ष मनाते हैं पर ये सब खाक हैं, विनाशीक हैं भिन्न हैं, विकल्प उत्पन्न करनके कारण है। इन दृश्यमान् मायामय पदार्थोंसे इस मुझ आत्माका कभी भी हित नहीं होता है। ध्रुव तो यह बताओ कि मैं आनन्दस्वरूप हूं मुझमें मेरा सत्स्य स्वभाविक आनन्द प्रकट हो, मुझे इस आनन्दकी चाह है मैं अन्य मौजों को नहीं चाहता हूं। यह आनन्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निधान शुद्ध आत्मा, परमात्मदेव, कारणपरमात्मा समयसार हम आपमें नित्य विराजमान है। पर हम उसकी ओर दृष्टि न करें तो उस आनन्दनिधिका हमें अनुभव कैसे हो? हमारी इस ओर दृष्टि नहीं है। इसका कारण है कि अज्ञानवश इसने पंचेन्द्रियकी ओर, मनके विषयोंकी दृष्टि दी है, वे विषयोंका ही परिचय पाया करते हैं और उनका ही अनुभव किया करते हैं। पर जो नित्य व्यक्त है अंतरंगमे, अंतरंगमें प्रकाशमान् सदासत् यह शुद्ध प्रकाशमान् आत्मतत्त्व कहीं ढूंढा नहीं जाता है, कहीं पैदा नहीं करना है किन्तु अपने एक उपयोग नेत्रको निरखना है। यह निरखना जब होगा तब पंचेन्द्रियके भोगविषयोंमें रुचि न रहेगी। पंचेन्द्रियके विषयोंकी रुचि न रहे इसके लिए यत्न करना होगा वस्तुस्वरूपका यथार्थज्ञान करनेका। हम और आपकी यदि कुछ शरण है तो वह ज्ञानभाव शरण है। भटकते बहुत जिन्दगी तो हो चुकी है। कितना तो भटक चुके हैं। जन्मसे लेकर अब तक क्या क्या कल्पनाएं नहीं की हैं, किन-किन स्वप्नोंमें नहीं रहा हूं? इतना-इतना करनेके बाद भी आज पूछो तो शांति मुझमें नहीं आयी है, शांति यदि अपनेमें खोजें तो शायद हो मिलेगी। शांति नहीं पाई कुछ आनन्द नहीं पाया तो हम तो ज्योंके त्यों रह गये। अब रही सही जिन्दगी है। कुछ ही रही सही जिन्दगीमें कुछ अनोखा काम करनेकी सोचें जैसे काम करते आये हैं उन कामोंमें तो शांति और आनन्द अब तक नहीं मिला। अब तो कुछ विलक्षण काम करिये। लगातार ८—१० वर्ष तक जिस दुकानमें टोटा पडता है उसको बंद करके नया व्यापार करनेकी सोचते हैं। तो ४०—५० वर्ष तक रागद्वेषोंका रोजगार करते हो गये, टोटा ही टोटा, क्षोभ ही क्षोभ रहा, नुकसान ही होता चला आया, तो अब हमारा कर्तव्य है कि अपने खोटे रोजगारको बंद करके कोई अनोखा रोजगार करें। खोटा रोजगार है परदृष्टि, अनोखा रोजगार है निजदृष्टि। निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहीं लेश निदान। आप तो यह सोचते होंगे कि ऐसा साधु संत ही कर सकते होंगे, गृहस्थके बसकी बात नहीं है। पर विचारो यह कि आत्मस्वभावका स्पर्श होना, श्रद्धान् होना यह किस बल पर हुआ करता है? ज्ञान बल पर। जैसे हम अन्य-अन्य चीजोंको जाना करते हैं उनको न जानकर कुछ अन्तरमें ही अपने आपके जाननेमें लग जायें तो क्या हमें अन्य चीज जाननेमें न आ सकेंगी? आयेंगी। अन्तर इतना होगा कि चूंकि हमारी स्थिति गृहस्थीके वातावरण की है सो थोड़ी देर हम उपयोगका ज्ञानस्वभावका स्पर्श कर लेंगे, मगर स्थिरता नहीं आ सकती है। फिर विकल्प आ पड़ेंगे उन बाधक विकल्पोंको दूर करनेके लिए जिस तरहके ज्ञानानुभवका उत्कृष्ट आनन्द मैंने सदाकाल बर्ता उसको बर्तूं। इन भावोंसे गृहस्थीका त्याग किया जाता है। परिग्रहका सन्यास किया जाता है क्योंकि सन्यास अवस्थासे किसी परिग्रहमें यदि उसकी बुद्धि नहीं लगती है तो ऐसी स्थितिमें हम अपने शुद्ध ज्ञानके अनुभवमें स्थिर हो सकते हैं। चाहे एक तोला भर रसगुल्ला खा लें, चाहे पावभर रसगुल्ला खा लें एकसा स्वाद आता है। यह तो तोलाभर खाने वाले लोग जान जायेंगे। छक कर नहीं खा सके इतनी ही बात है और वह स्वाद आये बिना इस स्वादको निरन्तर लेते रहनेके लिए उत्सुकता कैसे आ गयी? गृहस्थावस्थामें भी ज्ञानानन्दका अनुभव होता है, यदि न हो ज्ञानानन्दका अनुभव तो श्रवण बननेके लिए, परमेष्ठित्व प्रकट करनेके लिए उसको उत्सुकता कैसे आ गयी? यह शुद्ध आत्मा समाधिभावमें स्थित ज्ञानी सन्तोंको एक अलौकिक आनन्द देते हुए प्रकट होता है। जिनका जीवन और मरणमें समतापरिणाम है, जिनका लाभ और अलाभमें समतापरिणाम है, जिनका सुख और दुःखमें समतापरिणाम है, आप बतलावो गृहस्थीमें कौनसा सुख भोगा? बीते हुए सुखको आप दुःख ही मान जायेंगे। पर आगामी काल तक भोगे जाने वाले सुखको दुःख मानना कठिन पड़ेगा। कितना कितना तो रोज खानेका सुख लूटा, परिवारमें राग करनेका सुख लूटा, पर आज आपसे पूछें कि बतलावो कितना सुख आपने लूटा? तो आपकी समझ जल्दी आ जायगी कि सुख नहीं लूटा वह दुःख ही था। जब आपके पिता लोग जीवित थे और कितने प्यारसे आपको देखते थे पर गुजरनेके बाद आप यह कह उठेंगे कि वह भी कुछ सुख न था, वह दुःख ही था। मोहसे उनके लाड़से समझकर मैं उनकी ओर झुक रहा था पर जब वियोग

http://sahjanandvarnishastra.org/

हुआ तो अनन्तगुणा कष्ट हुआ। यह सब सुख दुःख ही था। एक पिताकी बात क्या? और जितने भी आपको सुख हैं स्त्रीसुख विषयसुख, आज पूछा जाय तो उन भोगोंको भी आप दुःख मान जायेंगे। जैसे भोगे हुए सुखोंको आप दुःख मान सकते हैं इसी प्रकार भावी कालमें जिसकी आशा लगाये हैं ऐसे सुखको भी दुःख मान जायें तो समतापरिणाम में क्या रुचि हो सकती है? कौनसा सुख वास्तवमें है सो बतलावो। ये भोग सुख प्रथम तो कर्माधीन हैं, कर्मोंका अनुकूल उदय हो तो ये भोगोके सुख मिल सकते हैं। इतना ही नहीं उदय तुम्हारा ठीक है तो सुख मिल ही जाय। उदय है पर साथ ही ६ कर्मोंका भी समागम उचित मिला नहीं तो कितने ही कर्मोंके उदय योग्य साधनोंके न मिलने पर यों ही खिर जाया करते हैं। अभी कुछ गप्पोंमें सिलसिला यदि छोड़ा जाय तो नींद लेते होंगे तो उनकी भी नींद खतम हो जायगी और गप्पोके सुननेमें बड़ी सावधानीसे हाथ पैर कमरको ठीक सीधा करके सुनने लगेंगे। सम्भव है निद्रा कर्मोंके उदयमे भी चल रही हो, मगर ६ कर्मोंके साधनसे मौज मिल रही है। गप्पोंके सुननेमें मौज मिलता हो तो गप्पोंका काम खतम हो गया है। इसी तरह कितना ही उदय परिवर्तित हो जाता है तो साधन सब कुछ हो जाने पर आपको कल्पनाओंसे सुख मिल गया तो वह सुख क्षणमें खतम भी तो हो जाता है, और उस सुखके मिट जानेके बाद दो बातोंका पछतावा आता है कि लो बड़ी मुश्किलसे सुख मिला और वह भी खतम हो गया अथवा लो वह सुख नहीं था, बड़ा कष्ट था। मैंने अपनी बड़ी बर्बादी की, यों पछतावा होता है। यह सुख विनाशीक है। विनाशीक भी हो किन्तु आप कहेंगे कि जब तक सुख मिले हैं तब तक तो मौजसे सुख भोगेगे ना? तब तक भी मौज नहीं है। उन सुखोंके बीचमें अनेक दुःख आया करते हैं।

आपको अपने बच्चेकी शादी करनी है। एक सुखकी बात है ना? शादीके प्रसगमें महीना दो महीना तो लग ही जाते हैं तैयारी करनेमें, आमंत्रण पत्र छपानेमें। कहीं उन रिश्तेदारोंको मनाओ कहीं वे रूठ गये उनको मनावो। ये पंच रिश्तेदार लोग शादी ब्याह आदिके मौके पर जब कि भोज होता है तब बड़े दांव पंच करते हैं तो उस सुखके प्रसगमें भी यह बतलावो कि कितने दुःख भोग रहे हैं, यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ, इधर-उधर दौड़ रहे हैं, कितने-कितने दुःख आ रहे हैं। एक कल्पनासे मान लिया कि सुख है, पर वास्तविक सुख नहीं है। हुए हैं ये समागम, पर बच्चेकी शादी कर देनेके बाद आत्मामें वृद्धि क्या हो गई सो बतलावो। है यह काम गृहस्थीका पर श्रद्धाकी बात पूछ रहे हैं। कौनसा आत्महित होगा? इस प्रकारके अनेक दुःख देख लिये। अभी लड़केकी शादीसे यह इच्छा हुई कि मिष्ठान्न भोजन बनवाना चाहिए तो सामग्री जुटवायी, मिठाई बनाने वाले को मनाया, जब मिठाई बन रही है तो ऐसी जो प्रतीक्षा है, टाइम लग रहा है उसमें व्याकुलता मिष्टान्न पक गया। उसके बाद भी व्याकुलता, भोजन करते समय भी आकुलता, भोजन खाने पानेमे भी बेतहासा। उसको खाने पीने लग जाते हैं चाहे आप अपने बड़प्पन की वजहसे मुखको थोड़ासा चलायें जिससे कि लोग जानें कि ये बड़े पुरुष हैं, खाने पीनेके लोभी नहीं हैं पर खाते समय अन्दरमें जो चक्की चल रही है उसके भोगने वाले जानते हैं कि कितना विह्वल होकर सुखको भोगा करते है। कौन सा सुख है जो सुख कहा जाय? प्रारम्भमे दुःख, मध्यमे दुःख अन्तमें दुःख। जो ज्ञानी सत पुरुष हैं वे सुख और दुःख दोनोंको समान समझते हैं। शत्रु और मित्र दोनोंको समान समझते हैं। हे आत्मन् सर्वपदार्थोंसे निर्मल ज्ञानमात्र हे प्रभु! तेरा परिणमन क्या जगतके अन्य जीवोंके कारण हुआ करता है? नहीं। फिर जगतके अन्य जीव तेरे साथी कहां और मित्र कहां? जैसे तू अपने विषय कषायको चाहता है वैसे ही लोकमें विषय कषाय चहाने वाले ये प्राणी हैं। इस विचारसे यह समझमे आया कि देखो इनकी वजहसे हमारी इन विषयकषायोंसे बाधा हुई। तो वे क्रोधवश दुर्वचन बोलने लगे। पर सच तो बतलावो दुर्वचन बोलने वाला क्या किसीके परिणमनको कर रहा है? वह तो अपने कषायोंकी चेष्टा करके अपने आपमें समाप्त हो रहा है। तू भ्रम करता और शत्रु मान रहा है। इसी प्रकार क्या तुम्हारा कोई मित्र है? अपना स्वार्थ निकाला तो मित्र मानने लगे। नहीं तो कोई शत्रु मित्र नहीं है। सर्वजीवोंका स्वरूप एक समान है. ऐसा शत्रु मित्रका जिसके समताभाव जगा इस समतापरिणामके कारण शुद्ध आत्मा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का सच्चा विश्वास सच्चाज्ञान और उसमें ही रमण होता है। इसको ही रत्नत्रय कहते हैं। इसको ही निर्विकल्प समाधि कहते हैं। इसको ही वीतरागभाव कहते हैं। ऐसे पवित्र समतापरिणाममें ठहर कर परम योगियोंको कोई शुद्ध आत्मासे प्रकट करता हुआ व्यक्त होता है। उनके ज्ञानमें आता है। हे ज्ञानीसंत समझो वही परमात्मा है। वह परमात्मा मुझमें ही बसा है। उसके ज्ञान बलको देखकर तुम अपने संकटोंको मिटा लो बस यही बड़प्पन है और यही विवेक है।

प्रकरण चल रहा है शत्रु और मित्रका। जगतमें जितने भी जीव हैं वे सब अपने-अपने परिणामोंसे अपने कषायोंके अनुसार अपने साधनोंके पूर्तिकी चेष्टा करते हैं। उन जीवोंकी कोई चेष्टा यदि तुम्हें अपने कषायोंके प्रतिकूल मालूम पड़ जाय तो मानने पर वे जीव तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। जैसे इसके अपने विषयकषायोंकी रुचि है इस ही प्रकार सब जीवोंको, समारा प्राणियोंको अपने-अपने कषायोंकी रुचि है। तुम्हारा कोई शत्रु नहीं और किसीको शत्रु मानकर अपने विकल्प ही करोगे, कुछ भलाई न पावोगे। किसी जीवको यदि अपने पर शत्रुता जैसी चेष्टा हो गई है तो तुम उससे विलष्ट व्यवहार करके उस शत्रुताको तुड़ा सकते हो। जैसे कोई जगतमें मरा शत्रु नहीं है। इस ही प्रकार जगतमें कोई मेरा मित्र नहीं है। घरके लोग जो परस्पर प्रेम व्यवहारसे रहते हैं, वे लोग कहीं आप पर प्रेम नहीं करते हैं। उन्हें अपना विषय, अपनी साधना, अपना स्वार्थ है, उनकी पूर्ति आपके निमित्तसे होती है तो आपको स्नेहभाव दिखाते हैं, यह स्नेह परिणत उनका ही है, तुम्हारा नहीं है। एक चुटकुलेमें कहते हैं कि एक स्त्री अपने पतिसे बहुत कहती थी कि हमारा तुम पर इतना अनुराग है कि तुम न रहोगे तो हम जिन्दा न रह सकेंगी। भारी और-और बातें करे। एक दिन पुरुषने परीक्षा लेनेकी सोची। तो बहुत दिनोंसे श्वास रोकनेकी साधना सिद्ध किया कि श्वास रोकलें तो आपको यह पता पड़े कि यह मर गया। रात्रिके १० बजे के समय खीर हलुवा सब कुछ तैयार हो चुका, खानेकी देर थी। खानेके ही समय पुरुष श्वास लेकर मरने जैसी अपनी वृत्ति बना ली। अब स्त्री बुलाती है कि आवो भोजन करो तो वह देखती है कि ये तो मर गये। सोचा कि १० बजे रात्रिको मर गये हैं, तीन चार बजे दिनको मर जाते तो रात्रिभर रोना न पड़ता। ये खीर हलुवा आदि बनाया है, अगर अभीसे रोने लगी तो सारी रात रोना पड़ेगा और खीर हलुवा बेकार हो जायगा। ये मर गये हैं तो मर गए हैं पहिले भोजन करें। खूब छककर भोजन किया, रात्रिभर सोई, सुबह ५ बजेसे रोना शुरु किया, लोग जुड़ आये। वह मरे जैसा टांगें पसारकर पड़ा था, मरनेका रूपक बनाए हुए। जब उसे दरवाजेसे लोग निकालने लगे तो दरवाजा छोटा था। वह टांग पसारे था इस वजहसे न निकल सका। उसे औंधाया, फिर सीधा किया, अनेक उपायोंसे निकाला पर न निकला। कुछ लोगोंने कहा देर क्यों करते हो? कुल्हाड़ी और कुदाली लाकर दरवाजेको तोड़ दो। स्त्री कहती है पच लोगों अब हम ऐसी हो ही गये। अब दरवाजा न कटाओ इसमें ५००) लगेंगे। ये तो मर ही गये, आखिर जला ही दोगे, इनकी एक टांग कुल्हाड़ी से काट कर निकाल लो। कुछ युवक पार्टी थी, सुधारवादी, उनकी समझमें आया कि ठीक है, ये तो मर ही गए आखिर जला ही दिए जायेंगे कुल्हाड़ीसे टांग काट लो। वह तो बनावटी था ही। उसने समझ लिया कि अब ऐसे तो काम न चलेगा। जब काटने ही वाले थे तो उसने एड़ियाई ली जिन्दा होनेका रूपक बनाया। सब लोगोंने समझ लिया कि जिन्दा है, चले गए। यों देखलो, जगतमें जितने भी जीव हैं सब अपना-अपनी कषायसे अपनी अपनी चेष्टा करते हैं। कोई प्राणी मेरा चाहने वाला नहीं है। कौन मित्र है? और मित्र भी हो तो वह तब तक निमित्त है तुम्हारे सुखमें जब तक तुम्हारा पुण्यका उदय है। श्री कृष्ण नारायण जी का और बलभद्र जी का कितना प्रेम था? होता ही है नारायण और बलभद्रका परस्परमें प्रेम, पर जब आपत्ति आयी तो बलभद्रने परस्परमें क्या कर दिया जगतमें? यह तो सब लोग मानते हैं। सीताजी का और रामका कितना प्रेम था, पर हुआ क्या कि जीवन भर दुःख ही रहा। और वर्तमानमें भी देख लो परस्परमें प्रीति भी हो तो भी सुख अपने कर्मोंके आधीन है। अभी देख लो हमारे हितैषि ब्र० जयानन्द जी हर एक घरमें कह देते हैं कि लाल मिर्च न डालो, सुनने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाले लोग समझते हैं कि लालमिर्च डालो। कहते हैं भलेको मगर होता है उल्टा। जब उदय ही ऐसा है। फिर दुबारा कहते हैं क्या कहा ? लाल मिर्च-मिर्च। न डालो तो पहिले ही कह दिया। क्या कहा ? यह लाल मिर्च। एककी नहीं घर-घरकी बात है। उदय अनुकूल है तो दूसरे साधन हैं और उदय अनुकूल नहीं है तो कोई साधक नहीं है तो कोई साधक नहीं है। कौन आत्माका मित्र है ? कौन शत्रु है ? इस कारण वह ज्ञानी योगी सत जीवन मरण में लाभ अलाभमें, सुख दुःखमें, शत्रु मित्रमें समता भावसे पैदा है। इस कारण अपने शुद्ध आत्माका विश्वास मेरे ही ज्ञान और मेरे ही आचरणरूप भेदरत्नत्रयमें रहता है अर्थात् वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रहता है। ऐसे परमयोगियों को कौन स्फुरित होता है कौन प्रतीत होता है ? अपने ज्ञानमें आता है। क्या ? एक कारणपरमात्मा। विश्वासपूर्वक यदि कोई परमात्माकी ओर झुके और अपने उस शुद्धस्वरूपकी ओर झुके तो उसका यह यत्न निष्फल कभी न जायगा।

एक कथा लिखी थी कि एक ब्राह्मण पंडित था। उसकी गाय चरानेको ग्वाला रहता था। सो एक दिन पंडितने उस ग्वालेसे कहा कि आज एकादशी है, पावभर आटा ले जावो जंगलमें भगवान्का भोग लगाना। भगवान् को खिला देना और स्वयं खा लेना। ग्वालेने कहा इतनेमें क्या होगा ? पाव सेर हम खायेंगे, आधा सेर वे खायेंगे तो कमसे कम आधा सेर आटा दो तो आधा सेर आटा वह लेकर चला। जंगलमें ग्वालेने दो मोटे मोटे टिक्का बनाया। बनाकर बोला भगवान् आ जावो, अब तैयार हो गया। बहुत देर न लगाना, भूख लगी है. कुछ देर तक न आये तो भगवान् पर नाराज होने लगा, बोला भगवान् आप बड़े दुष्ट हो, हमको तो भूख लग रही है और तुम आते नहीं हो। तुम जब आवोगे तब हम खायेंगे। बहुतसे व्यंतरदेव रहते हैं। व्यंतर देव, देवरूपमें कपड़े पहिने हुए बंशी बजाते हुए आ गए। बोले हम भी खायेंगे। तो उसने कहा खावो पर ज्यादा न मिल सकेगा हिस्से भर मिलेगा। खाकर चल दिया। ग्वालेने कह दिया कि दूसरी बार देर न करना। कहा अच्छा देर न करेंगे, मगर हम दो आयेंगे। कहा चाहे जितने आना मिलेगा हिस्से भर ही। दूसरी बार फिर ब्राह्मणने आधा सेर आटा दिया। उसने तीन रोटियां बनाई। कहा आवो भगवान् वे आगये। उनको भी उनके हिस्से भर खिला दिया। इस बार देव बोले हम २५-३० आयेंगे। कहा चाहे जितने आना मिलेगा हिस्से भर ही। सो तीसरी बार ब्राह्मणने आधा सेर फिर दिया, ग्वाला कहता है कि तुम बार बार आधा सेर देते हो, इस बार २५-३० आवेंगे। ब्राह्मणने पूड़ियां बनवा दीं, एक सेर आटा भी दिया और ब्राह्मणने सोचा कि क्या मामला है ? ये कौन कहांसे आ जाते हैं ? वह एक पेडके नीचे छुपकर बैठ गया। सोचता है कि व्यंतर देवोंका कौतूहल क्या हो सकता है ? हमने तो ऐसा नहीं देखा। ग्वाला जब बाटियां बना चुका तो भगवान्को बुलाता है। जब देर हो गई तो आग्रह करके बैठ गया। देव आए २०-२५ और खाकर चले गये। तो सत्यका आग्रह करके जो बैठ जाय आप अपने पिताके भी सामने तो चाहे आपका पिता न सुने पर दूसरे सुनने वाले जरूर मिलेंगे। आपका सत्य आग्रह हो तो सर्वपदार्थोंके भावोंमें पदार्थोंमें जीवोंमें समतापरिणाम रखने वाले, आत्मस्वभावके श्रद्धान ज्ञान आचरणमें रहने वाले अर्थात् भेदरत्नत्रय रूप परिणमन करने वाले अर्थात् वीतराग निर्विकल्प समाधिमें ठहरने वाले योगी जनोंको निजपरमात्मा पर स्व शुद्ध आत्मा स्फुरित होता है प्रतीत होता है। क्या करता हुआ यह कारणपरमात्मा प्रकट होता है ? वीतराग सहज परमानन्दको उत्पन्न करता हुआ। आनन्दका निधान तो यह स्वय है किन्तु अपने आनन्द स्वभावका विश्वास नहीं करता। सो किसी परद्रव्यमें अपनी आशा बनाए है आनन्द पानेके लिए। सो जहां परदृष्ट है वहां विरुद्धानन्द है। आनन्द तो मिलेगा क्या, आनन्दमें बाधा आती है। अब भी जो परदृष्टिसे कुछ कुछ सुख माना जा रहा है वह अपने स्वभावके विरुदका फल है। वह अपने आनन्दस्वभावका रहा सहा प्रसाद हैं, जो थोड़ा बहुत सुख मिल रहा है। यह शुद्ध आत्मा रागद्वेषरहित नहीं किन्तु सब परद्रव्योंसे भिन्न केवल अपनेस्वरूप चतुष्टयात्मकसद्भूत यह आत्मा है। इस शुद्धआत्माकी दृष्टिमें न राग की दृष्टि है, न वीतरागकी दृष्टि है। कैसी भी स्थिति हो तो भी यह शुद्ध आत्मा निरखा जा रहा है। वीतराग

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थिति हो तो वहां भी यह शुद्ध आत्मा निरखा जा रहा है अर्थात् सब परसे भिन्न अपने स्वरूपास्तित्वसे निवृत्त यह शुद्ध आत्मा सर्वसमाधि परिणति योग्यतामें प्रकट दृष्ट होता है। कैसा भी हो ? और ग्रन्थोंमे अर्थात् आत्माके सहज॰ स्वरूपके अवलोकनमें उपयुक्त हो रहा है। इस व्यवहारसे मेरी स्थिति अलग रहती है। इस कारण उस योगीकी इस समाधिभावकी वजहसे कोई उत्कृष्ट आनन्द प्रकट होता है। जन्म लिया है, कुछ पढ़ लिख गये हैं बड़े हो गए, चतुर हो गये, अब भी बहुत आगे पढ़ रहे हैं। अमुक अमुक विषयका अध्ययन किया है, व्यावहारिक बड़ी बड़ी चतुराइयां भी जानते हैं। यह इतनी बड़ी प्रगति है। अध्यात्मदृष्टि कहते हैं कि तुमने अपने उपयोगको अपने केन्द्रसे हटकर इतना दूर जरूर फैला लिया इतना तो तब भी फैला था, जब तुम थोड़ा समझते थे। श्रद्धा भी पुष्ट थी। उपयोग इतना फैल गया है, तर्क वितर्क भी बहुत चलते हैं। यह उपयोग बहुत दूर भ्रम गया था। हां तो आत्मस्वभावके प्रसंगसे आत्माका स्पर्श हो सकता है। तो उन जीवोंके लिए यह बात नहीं कह रहे हैं किन्तु आत्मस्वभावसे बहुत हटकर बहुत बहुत लौकिक ज्ञानपटुतामें बढ़ गये हैं, तो क्या बढ़ गये हैं ? बढ़ नहीं गये हैं पर जितना बढ़ा प्रतीत हो रहा है उतना हटना है। लौकिक ज्ञानसे और ज्ञानोंसे चतुराई हो जाना है पर वास्तविक ज्ञान तो अध्यात्मसे मिलता है। अध्यात्मज्ञानमें हमको लगनेकी आवश्यकता है तब जाकर शांति प्राप्त कर सकते हैं देखिए चारों गतियों में भिन्न-भिन्न कषायोंकी मुख्यता रहा करती है। नरकगतिमें क्रोधकषायकी मुख्यता है। तिर्यञ्चगतिमें मायाकषाय की मुख्यता है, देव गतिमें लोभकषायकी मुख्यता है और मनुष्यगतिमें मानकषायकी मुख्यता है। मान, पर्यायबुद्धि अभिमान। मैं कुछ हूं. चारके बीचमें मुझे कुछ बनना है। अरे ये चारों भी माया जाल हैं, ये भी एक स्वप्न हैं। ये भी मिट जाने वाले हैं और यह चाहे करने वाले भी मिट जाने वाले हैं। सबसे बड़ा रोग हमारे आत्महितमें बाधक है तो यही अभिमान अहंकार पर्याय बुद्धि। धर्म मार्गमें समाजपद्धतियोंमें, परिवारकी योजनाओंमें प्रायः कोई बाधक आ पड़ता है तो भूलमें यह मान बैठा है। कोई आत्महित मिले और किसी प्रसंगमें आकर मान हट रहा हो, मान चूर हो रहा हो, मान न रहता हो तो वह मानहितैषी अपनी ओरसे मानको धूलमें मिला देनेका जोर लगाता है। मान हो रहा हो तो उसे धूलमें मिलता है। मुझे कुछ नहीं चाहिए यदि मैं मनुष्य ही न होता, किसी अन्यभवमें होता तो मेरे लिए ये प्रसंग क्या थे ? कुछ नहीं जैसे अनेक संकट ऐसे आये होंगे कि जिनमें मृत्युकी पूरी सम्भावना थी। यदि उस स्थितिमें ही गुजर जाते तब मेरे लिए ये प्रसंग क्या थे ? मेरे लिए ये प्रसंग कुछ न थे। जब किसी दोषीकी प्रशंसा करदी जाती है तो वह दोषी उठ खड़ा होता है। किसी क्लासमें किसी लड़केने कोई बदमाशीकी हो, कोई बेंत तोड़ डाला हो, जो कुछ किया हो और अध्यापक यदि उस कार्यकी तारीफ क्लास भरमें करने लगे, देखो तो कितना बढ़िया यह बेंत टूटा है, इसे तो चाकूसे भी ऐसा नहीं काटा जा सकता है ऐसी प्रशंसा कर दे तो वह दोषी स्वय उठ खड़ा होगा जिसने बेंत तोड़ा होगा। इसी तरहसे ये जगत्के जीव बसमें आया करते हैं। प्रशंसा कर दिया तो जिसके लिए प्रशंसा की, उसे क्या नफा हुआ ? नफा तो वह था कि मैं निर्विकल्प होता, ज्ञाता द्रष्टाकी स्थितिमें चलता पर प्रशंसा सुनकर क्षोभ आ गया, अपने आपको भूल गया। उस प्रशंसासे तो महान् विकार हो गया। हां कभी कोई प्रसंग ऐसा होता है कि प्रशंसामें जहां कि संभाल है ऐसा कुछ प्रसंग होता है। जैसे बहुत बड़ी पद्धतिसे किसी विषयमें झूठी या सच्ची कोई निन्दा फल गई, उससे शल्य रहा और ऐसा शल्य चुभ जाय जिससे मेरा जीवन भी कठिन हो जाय, ऐसी स्थितिमें तो प्रशंसा हितका कारण हो सकती है पर प्रायः प्रशंसा अहितका ही कारण होती है। जगत्में क्या चीज है ? दुर्लभ नरजीवन पाया हैं। इसमें अपने आपमें हम शांति पायें इसकी दृष्टि और करना है। रहा सहा जीवन कुछ स्वयं देनेमें समाप्त हो जायगा। तो देखो ये सब चीजें अध्रुव हैं। शरीर पाया, वह भी अध्रुव है. मन भी विनाशीक हैं, वचन भी विनाशीक है, धन पाया है वह भी विनाशीक है। ये तो सब नष्ट होंगे ही पर विनाशीक साधनोंमे कोई ऐसा उपयोग कर लिया जाय कि कोई अविनाशी लाभ हो सकता है, अर्थात् अव-नाशी लाभ मार्गमें लग सकते हैं तो यह बहुत बड़ी लाभकी बात है। यह व्यवहार धम है, हम सबको रमनेकी व्यवस्था बनाए रखना है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

जो व्रत तप आदि साधन हैं ये स्वयं निर्जराके निमित्त नहीं बन पाते हैं किन्तु व्रत तपके साधन विषय-कषायोंसे बचनेकी एक स्थिति बना देते हैं कि ये तीव्र विषयकषायोंमें न लग पायें। ऐसी तीव्र स्थितिमें यह जीव संभाले तो अपने मूल उद्देश्यमें सुगमता आ सकती है। ऐसे व्रतोंको धर्म कहते हैं। धर्म तो निश्चयसे आत्माके स्वभाव का नाम है। आत्माके स्वभावकी दृष्टि करनेका नाम धर्मका पालन है। और फिर इस धर्मके पालनेकी योग्यता इस ज्ञाननवृत्तिके प्रसादसे बनी रह सकती है। इस ही प्रवृत्तिको व्यवहारधर्म कहते हैं।

यह योगी आत्मा अनुष्ठानिष्ठ है। इसका व्यवहार अलग है। इसका कोई ऐसा विचित्र आनन्द उत्पन्न होता है कि जो आनन्द कर्मोंके क्षयका कारण बनता है। कर्मोंका क्षय आनन्दसे होगा, क्लेशोंसे कर्मोंका क्षय नहीं होता। सो हे प्रभाकर भट्टजी ऐसा कोई स्फुट होने वाला कारणपरमात्मा तत्व है उसको तुम उपमेय समझो। यह कारणपरमात्मा स्वयं वीतराग निर्विकल्पमें रत पुरुषोंके उपयोगमें रहता है। तो यह कारणपरमात्मतत्त्व अज्ञानी जीवोंको हेय हो रहा है। वह अज्ञानी उसका त्यागी हो रहा है। एक कथानक है, यों किम्बदन्ती है कि एक बार नारद घूमते हुए नरकमें गए तो वहां खड़े होनेकी जगह न थी, इतनी भीड़ थी। वहांसे झट स्वर्गमें पहुंचे तो वहां देखा कि विष्णु महाराज पलगापर लेटे हुए हैं और सब खाली पड़ा है। नारद बोले विष्णु तुम बहुत पक्षपाती हो, नरकमें इतने जीव भर दिए कि खड़े होनेकी जगह नहीं और यहां स्वर्गमें सब खाली पड़ा है तो विष्णुने कहा, जावो तुमको मैं पासपोर्ट देता हूं जितने जीव तुम स्वर्गमें ला सको ले आवो नारद पहुंचे। एक बूढ़े महाराज मिले, कहा— चलो तुम्हें स्वर्ग ले चलें। यह तो सभी जानते हैं कि बिना मरे कोई वहां जा नहीं सकता है, तो बूढ़ा बोला कि हमीं तुमको मिले स्वर्ग ले चलनेके लिए और किसीको ले जावो। इसी तरहसे ५ ७ से कहा सबने जवाब दिया। अंतमें नारदने यह निर्णय किया कि बूढ़ोंमें हमारी दाल न गलेगी, चलो जवानोंके पास चलें। ४-६ जवानोंके पास भी गए, नारद बोले चलो हम तुम्हें स्वर्ग ले चलें। जवान बोले कि अभी कच्ची गृहस्थी है, नई दुकान खोली है, नया नया काम शुरु किया है हम नहीं चलेंगे। खैर इन्होंने तो ठीक कहा। सोचा कि अब बालकोंके पास चलना चाहिए। एक १८ वर्षका बालक तिलक लगाए पाठ कर रहा था, माला फेर रहा था, उसको नारदने कहा तो वह चलनेको तैयार हो गया, लेकिन थोड़ा सा ख्याल आया कि अभी ४-६ महीना पहिले सगाई हुई थी, तीन दिन बादमें शादी है, कुछ रिश्तेदार भी आ गये हैं सो अभी नहीं चलूंगा। पर महाराज कृपा करके आप ५ वर्षके बादमें आना, जरुर चलेंगे। नारद ५ वर्षके बादमें आए। बोले चलो। उसके एक लड़का भी हो गया था। कहा महाराज लड़का हो गया है इसको पैरोंके बल खड़ा करदें फिर चलेंगे। लड़केको पैरोंके बल खड़ा होनेमें कितने साल लगेंगे? बीस साल सो अब २० सालको हमें छुट्टी दो। २० सालके बादमें जब नारद आये कहा चलो तो कहा महाराज लड़केकी शादी करदी है, नाती हो गया है नातीका सुख तो भोग लें, आप २० वर्षके बादमें आना तब जरुर चलेंगे। २० वर्षके बादमें फिर नारदजी आये बोले चलो स्वर्गमें अब तो वह वृद्ध हो गया, कहा महाराज नाती पुत्र कुपूत हो गए हैं। मैंने लाखोंका धन बड़े परिश्रमसे जोड़ रखा है इसकी कौन सभाल करे? आप इस भवमें तो दूसरे भवमें जरुर आना, मैं दयाकी भीख मांगकर कहता हूं कि जरुर आना, मैं चलूंगा। सो नारद वहां भी आये बोले चलो अब तो स्वर्ग। अपना फन उठाकर कहता है कि इस धनकी रक्षा करनेके लिए मैं यहां पैदा हुआ हूं पुत्र नाती कुपूत थे, कहीं कोई धन न उठा ले जाय। नारद बैंकुण्ठ पहुंचे, विष्णुसे बोले महाराज हम भी हैरान हो गये मनाते-मनाते। यहां कोई नहीं आना चाहता है। सो उपाधि ऐसी लगी है कि जीवके सुगमतामें विषय आये और परकारणपरमात्मा जो स्वयं शरणभूत है इसकी ओर दृष्टि रखो और ऐसा होना बड़ा कठिन लग रहा है। किन्तु यह साहस तो करना ही पड़ेगा यदि अपनेको सुखी होना है, किसी दूसरेके बलके भरोसे पर उत्थान नहीं होगा। सुख नहीं मिलेगा। अनन्तभावोंमें सब कुछ भोग भोगा, अनेक पराजय हुए, लेकिन लोगोंकी निगाहमें उल्लू जैसा ही बना रहा। गुरुजी कहा करते थे कि अगर दुनियांमें सुखी रहना है तो उल्लू बनकर रहो। चतुर बनकर रहे तो अनेक आपत्तियां आयेंगी। प्रयोजन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उनका यह था कि व्यवहारमें खटपटे करनेमें आपत्तियां ही आयेगी। सर्व अन्यकी आशा छोड़कर हमें रहना है, बाहरमें कहीं हमें लगन नहीं लगाना है, लगन इतना अन्तरमें होना चाहिए, चाहे मोज हो, चाहे क्लेश हो, पर स्थिति में इतनी आदत रहे, धुन रहे कि निसर्गतः हम वीतराग सर्वज्ञ परमात्मस्वरूपकी ओर झुकें। हमें अपने वीतराग सर्वज्ञके स्वरूपमें ही झुकना चाहिए। जैसे बालकको कोई पीटता है तो वह भागकर अपनी मां की गोदमें शरण पाता है। इसी प्रकार हम आप बालकों पर कोई उपद्रव ढायें तो हम भागकर अपनी अनुभूति और परमात्मतत्त्व मां की गोदमें जाकर बैठ जायें। यही हम आपका शरण है और यही हम आपकी शांतिका उपाय है।

प्रत्येक पदार्थ अपने शुद्ध अस्तित्वमें रहता है। शुद्ध अस्तित्वका अर्थ है कि केवल अपनी सत्तासे सत् है। कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थकी सत्ताको लेकर सत् नहीं हुआ। यह आत्मा भी शुद्ध अस्तित्वमें हैं अर्थात् केवल अपने अस्तित्वमें है। कर्मका या शरीरका अस्तित्व लेकर सत् नहीं है और जब इस कर्म और शरीरसे मिले हुई आत्मामें भी आत्मको आत्माके अस्तित्वसे देखा जाय तो यह आत्मा कर्म और शरीरसे बंधा है तो भी शरीरसे रहित और कर्मसे रहित यह आत्मा स्पष्ट प्रतीत होता है या शुद्ध आत्माका विरोधी है कर्म और शरीर सो इन कर्म और शरीरमें यद्यपि यह आत्मा बंध है तो भी निश्चयतया यह आत्मा शरीरसहित नहीं हुआ है। इस तत्त्वका वर्णन करते हैं तथा इस दोहेमें आचार्यदेव उपदिष्ट करते हैं—

कम्मणि बद्ध ुवि जोइ ा देहि वसतुवि जोजि।
हाइ ण सयलु कयावि फुडु मुणु परमप्पउ सो जि ॥३६॥

हे योगी ! यह आत्मा यद्यपि कर्मसे बंध है, देहमें रहता है, फिर भी कभी भी यह देहरूप नहीं होता है। जो देहमें रहकर भी देहरूप नहीं होता है ऐसा केवल चैतन्यस्वभावमय आत्मा है उसको ही परमात्मा जान। परमात्मा कोई अलगसे स्वतन्त्र सारे विश्वका अधिकारी नहीं है कि कोई हम आपको जैसा चाहे जब चाहे सुखी बना दे, दुःखी बना दे। इस स्वरूपतंत्र स्वतंत्र जगतमें ऐसा न हुआ, न होगा। परमात्मतत्त्वका अपने घटमें स्वरूप देखो तो सब ज्ञात होगा। जैसे इस प्रजातन्त्र राज्यमें कोई एक अपने ही कुटुम्बमें राजा बनता ही चला जाय ऐसा क्यों है ? इसी प्रकार इस स्वतंत्र जगतमें प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र सत् हैं और स्वतत्र सत् पदार्थोंका समूह ही लोक है। तो ऐसा क्यों हो जाय कि किसी एकको अधिकार हो कि जैसे चाहे जीवको सुख और दुःख दे, अनेक आत्माओंको बंधन में रहकर सुख और दुख भोगना पड़े ऐसा क्यों हो ?

परमात्मा क्या है ? इसका दर्शन अवश्य करणीय है। देखो भैय्या, आप लोग भी सब धर्मरुचिक हैं, विवेकी हैं, श्रद्धालु हैं प्रेमी हैं, प्रभुकी भक्तिके लिए सदा उद्यमशील रहते हैं। इतने बड़े महीनोंके बाद यह मंदिर बना। धर्मके लिए व्यय करना यह धर्मरुचिका द्योतक है। प्रभुके भक्त कितने ही अब भी हैं, लाखों रुपये व्यय करके विशाल मंदिर बनवाते हैं। एक ही पुरुष लाखों करोड़ों रुपये खर्च कर स्कूल, कालेज अनेक प्रकारकी संस्थायें बना देता है। यह सब कार्य धर्मरुचिका ही तो द्योतक है। अब भय्या सब ऐसी दृष्टि करें कि हमें तो प्रभुके दर्शन ही साक्षात् करना है। ऐसा प्रत्येक धर्मप्रेमी चाहता ही है। भक्तकी आशा रहती है कि इस प्रभुका मुझे दर्शन मिले किन्तु प्रभुके दर्शन पानेका उपाय लक्ष्यमें नहीं है। हम इन्द्रियोंको खोलकर और बड़ी उत्सुकतासे इन इन्द्रियकी ओर से निरखकर चाहते हैं कि प्रभुके दर्शन हों सो यों हमको प्रभुके दर्शन नहीं हो सकते। प्रभुके दर्शन करनेकी विधि निराली है। अपने आपकी भूमिकाको स्वच्छ बनानेसे ही प्रभुके दर्शन होते हैं। गंदे हृदयसे विषयकषायसे मलिन आत्मासे, परिवारके ममता वाले उपयोगसे प्रभुके दर्शन नहीं हो सकते हैं।

यद्यपि गृहस्थ अवस्थामें अनेक प्रकारका संयोग है। नाना समागम जुटा हुआ है। चित्तकी चंचलताके साधन हैं, अनेक उलझनोंसे सम्बंध इतना है कि उलझनोंके कार्य सामने आते हैं, किन्तु भय्या ! ज्ञानमें भी तो ऐसा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बल है, कितने ही झंझटोंमें फंसा हुआ मनुष्य हो, ज्ञानबलके द्वारा उन सब झंझटोंको एक साथ भूलकर, छोड़कर अपने आपमें एक क्षणको तो निर्दोष चैतन्यस्वभावी निजप्रभुके दर्शन कर सकता है। उत्तम गृहस्थ वही है, उसका जीवन सफल है, धन्य हैं ज्ञानी गृहस्थ कि प्राप्त सर्व समागमको भी एक साथ भूलकर इस देहमें बसने वाले, देहसे निराले शुद्ध ज्ञानभावात्मक स्वरूपके दर्शन कर लिया करते हैं। परमात्मा अपने आपमें ही दर्शन देता है। उसके दर्शनके पाने योग्य अपने उपयोग बनाने पड़ता है। हे योगी! देखो, इस देहमें बसता हुआ देहसे निराला एक ज्ञान-स्वरूपको देखो। इन कर्मोंमें बसते हुए कर्मसे निराले इस ज्ञानस्वरूप प्रभुको देखो। इन राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादि अनेक प्रकारके विकारोंमें उलझे हुए होने पर भी इन विकारोंसे रहित स्वभाव वाले शुद्ध ज्ञानस्वरूप में देखो यह ज्ञानानंदमात्र एक अमूर्तितत्त्व अनुभूत होगा। उस ही को तू परमात्मा जान। एक इस परमात्माको जाने बिना इस जीवमें अनंतकाल संसारमें जन्म मरणके दुःख उठाए। यह हजार लाखोंकी विभूति अपना क्या हित करेगी? इस जन्मके बाद फिर भी तो और जन्म लेने होंगे। अगर कोई जन्म बेतुका मिल गया, कीड़े मकोड़े वृक्ष आदिमें मिल गया तो फिर इसकी क्या पोजिशन रही? क्या बड़प्पन रहा? इन प्राप्त विभूतियोंको अपनेमें मिला मत दे। इसको जड़ ही जड़ निरख। इसमें रहकर इससे निराले, अपने ज्ञान ज्योतिमात्रको देख और तो क्या राग द्वेषमें रह कर भी राग द्वेषसे निराले केवलज्ञानस्वरूपको देख। यही परमात्मा है इस ही परमात्माके दर्शनसे यदि राग अवशिष्ट है तो तीव्र पुण्य होता है कि इसके फलमें महाराज राजधिराज इन्द्र चक्री आदि हुआ करता है। अपने शुद्ध परिणामका भरोसा रख और इस हड्डी, चाम वाले हाथ, मुंह, नाक, कानका भरोसा न रख। इसका बड़प्पन नहीं है। तेरे धन सम्पदाके कमाने वाले हाथ पैर नहीं हैं। लोकोंमें अपना महत्त्व जाने वाला नहीं है। अपने परि-णामोंको निर्मल रख। इस प्रभुके प्रसादसे, प्रसाद कहते हैं निर्मल परिणामोंको, इस प्रभुके निर्मल परिणामोंसे ही इस लोकके सुख, परिवारके सुख, निर्वाणके सुख प्राप्त होते हैं। हे आत्मन्! तुझ सुख ही इष्ट है। उस सुखका उपाय निर्मल परिणाम है। इस जगतमें यह बात देखी जा रही है कि कोई नेता है, राष्ट्रपति है, मिनिस्टर है, करोड़पति है और कोई तुच्छ है, निर्धन है, यह जो देखा जा रहा है, सब धर्म और अधर्मका प्रसाद है। इस मांस चमड़े वाले नाक आंखका काम यह वैभव नहीं है। पूर्व समयमें जिस जीवने धर्म किया, दयाकी, क्षमाकी, तपस्याकी, समस्त जीवोंको सुखी होनेकी भावनाकी उनको इस ही प्रकारका पुण्यबन्ध हुआ कि जिसके उदयमें जो ऊंची-ऊंची स्थितियां उपस्थित हैं। क्या चाहिए तुझे सुख? कोई तो सुख यों चाहता है कि धन खूब आने लगे कि लोग मुझे बड़ा बड़ा कहें, चलो यह भी सुख धर्मके प्रसादसे मिलेगा। अर्थात् धर्मसाधन करते हुए जो राग रहता है उस राग के प्रसादसे मिलेगा। जैसे बड़े मिनिस्टरके चौकीदारका भी महत्व है। केवल चौकीदारके चौकीदारीके कारण नहीं है किन्तु एक मिनिस्टरके प्रसंगमें चौकीदारी करते हुआ है, वह इससे उसका महत्व है। उस रागका भी बड़ा महत्त्व है। देखो तीर्थंकर चक्रवती राजा महाराजा इन्द्रको जो इतना भी भव मिलता है वह रागके प्रसादसे मिलता है, धर्मके प्रसादका है। धर्मका जो अंश है उसका फल तो मोक्ष मार्ग है और जो यह लौकिक वैभव प्राप्त हुआ है, ये सब रागके फल हैं परन्तु किन रागोंके फल हैं जो राग धर्मपालनके कार्योंमें जीवके साथ लगा हुआ है उन रागोंमें इतना बल हो जाता है कि चक्री और तीर्थंकरके उत्पन्न करने वाले कर्म बंध जाते हैं। क्या चाहते हो सुख? यह सब सुख, धर्मके सम्बन्धसे मिलेगा। ये परिवारी लोग मेरे बहुत सुन्दर हैं, यह सब सुख जो कुछ है, परिवार लोगों से मिलेगा—यह सोचना गलत है। वह भी धर्मके प्रसंगमें मिलेगा। कभी-कभी इस लौकिक सुखसे विलक्षण सहज शुद्ध आनन्दमें रहना चाहते हो तो यह सुख भी धर्मके प्रसादसे मिलेगा। निर्वाणका सुख चाहें तो यह भी धर्मके प्रसादसे मिलेगा। सुख नामकी चीज चाहे वह लौकिक सुख हो चाहे निर्वाणका सुख हो, धर्मके सम्बन्धमें मिलता है। अन्तर इतना है कि लौकिक सुख तो धर्म करते हुए के साथ जो शुभ राग रहता है उसके कारण हुए कर्मके उदयमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मिलता है और निर्वाणका सुख केवल धर्मके कारण मिलता है उसके साथ रागद्वेष तनिक भी नहीं होने चाहिये। धर्मके सम्बन्धके बिना सुख नहीं मिलता और न किसीको कभी भी मिला। हे योगी! अपनी देहमें बसता हुआ भी जो देहमय नहीं होता है उसको तू परमात्मा जान।

एक पांच सेर शुद्ध निर्मल पानीमें कोई पीले रंगकी पुड़िया डालदी जाय। वह पानी सारा पीला हो गया, पीला हो गया? पीला दिखता है। किनको, जो भेदविज्ञानके उपयोगी नहीं हैं। जैसी दशा बाहरमें है वैसी ही अन्दरमें समझते हैं। उन अभिलाषी जीवोंको वह पानी पीला दिखता है। इस समय इस पानीको यदि पीयेंगे तो वह पीला रंग भी पेटमें चला जायगा पानीकी स्वच्छता पीले रंगकी स्थितिसे अभी अलग नहीं है, फिर भी पानी पीला नहीं हुआ, पानी वैसाका वैसा ही स्वच्छ निर्मल अब भी है। तुम पानीके शुद्ध अस्तित्वको देखो। पानीकी ही सत्ताके कारण पानी पीला जो कुछ हुआ है वह देखो! यह जितना पीलापन है पीले रंगका पीलापन है, जलका पीलापन नहीं है। तभी तो ३-४ घंटे वह भगोनियांमें निश्चल रखा रहा तो रंग नीचे बैठ जाता है और पानी बहुत कम पीला रह जाता है। ऐसा ही कुछ और देर उस पानीको यथावत ही रखा जाय जैसा कि था, तो वह निर्मल रह सकता है। देखो! मनुष्य जन्म पाया है, श्रेष्ठ मनुष्य जीवन पाया है यदि इसको वैभवका हिसाब ही लगानेमें लगा दिया तो इस उपयोगको फंसानेसे लाभ नहीं रहेगा। धर्मके लिए बहुत अधिक काम पड़ा है। धर्मका काम कहीं बाहरमें नहीं, मंदिरमें नहीं, प्रजा समूहमें नहीं, ठाटबाटमें नहीं आपकी अपनी ही आत्माके प्रदेशोंमें करना है। अपने ही अन्दर बहुत अधिक काम पड़ा हुआ है। धर्म करनेके लिए दृष्टि लगाकर अपनेमें देखो कि कितना काम पड़ा हुआ है। पहिले तो एक यही बड़ा काम पड़ा हुआ है कि ऐसी वासना बसी हुई है कि उनमें एक, दो, चारको अन्दरमें अपना माना जा रहा है। यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह जो एक भूल है वासना है, उस वासनाको समाप्त करना है। कितना बड़ा काम पड़ा है अन्दरमें। अन्दाज लगाओ। शंका हो जाती है कि मेरी यह वासना भी समाप्त हो सकती है घरमें रहते हुए क्या? हां, क्यों नहीं? हो सकती है। अगर स्त्री पुत्रका कोई झगड़ा हो जाय या मेरे साथ छल कपट पूर्ण व्यवहार किसी स्त्री पुरुषने किया, ऐसी बात समझमें आ जाय, उनके अन्याय, दुर्व्यवहार आदि यदि ज्ञानमें आ जायें तो पहिले ही उस वासनाको मिटा डालता है। अब ऐसी बात उसके ध्यानमें नहीं है कि यह मेरा ही है। जाते, सोते, जागते, पूजा करते, धर्म करते जो यह बात बनी रहती थी अब वह बात नहीं रही। उसके स्थानमें कुछ द्वेषरूप उपयोग ही आ जाय, ऐसे छली लोग हैं, ये वरके मेरे साथ भी ऐसा कपटपूर्ण षड्यंत्र रच रहे हैं। यह जानकर चाहे द्वेषरूप उपयोग हो जाय किन्तु वह रागवासना तो नहीं रहती, फिर ज्ञानी सतको जिनको प्रत्येक पदार्थोंके शुद्ध अस्तित्वका बोध हुआ तो जिसके उपयोगमें यह स्पष्ट हो गया है कि सर्व पदार्थ अत्यन्त जुदे जुदे सत् हैं। ये अपने परिणमनसे परिणमते हैं। इन जीवोंके साथ इसके पुण्य और पाप कर्म लगे है। यह जो कुछ भोगता है अपने कर्मके अनुसार भोगता है। यह जो कुछ करता है यह खुद अपनेमें अपने ही द्वारा अपने ही लिए अपने परिणमको करता है। इनमें अपनेका रच भी सम्बन्ध नहीं है। यह बात वस्तुके यथार्थस्वरूपकी है। इसको कोई मना नहीं कर सकता। ऐसी वस्तुका जैसा स्वरूप है वैसा ही ज्ञानमें आ गया तो परजीवमें परिवारकी, जो आत्मीयताकी वासना लगी यह नष्ट नहीं हो जायेगी क्या? पदार्थका जैसा स्वरूप है उसको उल्टा बनानेमें दिक्कत होनी चाहिए, कठिनाई होनी चाहिए। यह चौकी है। हम आपको कहें भय्या! थोड़ी देरके लिए इसको घड़ी मान लो तो आपको माननेमें परेशानी होगी। कृपाकर आप इस चौकीको ही ४५ मिनटके लिए घड़ी मानलें जब तक प्रवचन चल रहा है और आपकी दृष्टि इस ओर है कि जल्दी प्रवचन पूरा हो जाय, कितने बजे हैं? अच्छा आप इस चौकीको घड़ी मान लें, तो जो चीज नहीं उसको उस अन्य वस्तु रूप माननेमें, उस माननेमें बड़ी दिक्कत हो जाती है। इस खिलौनेके रिक्शेको तुम सच्चा रिक्शा मान लो। जाना है कहीं, कोई सवारी नहीं मिल रही है फिर

http://sahjanandvarnishastra.org/

इसीमें बैठनेका काम कर लोगे क्या ? इसको माननेमें बड़ी दिक्कत जान पड़ रही है कि जो चीज जैसी नहीं है वैसी माननी नहीं चाहिए, जो चीज जैसा है वैसी ही मान लो। सर्व जीव स्वतत्र सत् हैं। अपने अपने स्वरूपको लिए है। वे जो कुछ करते हैं अपने कषायसे, अपने कषायकी पूर्तिके लिए अपने ही परिणमन करते हैं। उनका किसी भी कार्य से सम्बन्ध नहीं है। वे आपमें प्रेम नहीं कर सकते। वे अपने कषायसे अपने कषायकी पूर्तिके लिए अपनेमें अपने काम करते हैं। बात यह सही है ना, पर ऐसा माननेमें बड़ी कठिनाई हो रही है। बस जो कुछ जैसा तैसा जान लो तब सुगम हो जाय तब समझना कि अब हमने धर्म किया। अन्दरमें तो अधर्म बस रहा है। पदार्थोंका सत्यस्वरूप अपने में नहीं पाया जा रहा है, सही ज्ञात नहीं हो रहा है। जान रहा है उल्टा ही उल्टा और जाप, सामायिक, पूजा स्वाध्याय, भजन सब कुछ प्रभुके किये जा रहा है तो वह स्थिति तो है कि जैसे 'ऊपर अमल मल भरा भीतर कौन विधि घट शुचि कहे।' यह कर्म हमारे हाथ, पैर, मुंहकी चेष्टा नहीं देख सकते कि भाई ? यह आरतीमें हाथ फैला रहा है। इस आत्मासे अपन मत बधो। कर्ममें ज्ञान नहीं है कि वह धोखा खा जाय। जानने वाला ही धोखा खा सकता है। कर्मबन्धका निमित्त कारण तो विषयकषायका भाव है। जिसमें विषयकषायरूप परिणाम हुये कि तुरन्त कर्म बन्ध हो जाता है। इस ५०–६०–७०–८० वर्षकी पाई हुई आयुमें जो किया, हमे करना क्या है ? मुख्य काम मेरा क्या है ? इसका क्या समाधान किया ? मुख्य काम मेरा यही है कि मैं अपनेमें अपने बसे हुए अपने अस्तित्व-मात्र स्वभावको पहिचानूं और यह मान लूं कि मुझमें तो मैं हूं, अन्यरूपमें नहीं हूं, न अन्य वस्तुसे मेरा सम्बन्ध है। ऐसा अन्तरदृष्टि द्वारा सत्यस्वभाव ज्ञात हो जाय, बस, करनेको यही एक काम है। बाहरकी चिंताएं अधिक न करो। अर्थात् वैभवको केवल उदयके ऊपर छोड़ दो। बाहिरी पदार्थमें अपना अधिकार नहीं है। परवस्तुके प्रसंगका हमने विचार किया है, हित कुछ और होता है, इस बारेसे तो ऐसे दृढ़ हो जाओ कि मैं अपनी इच्छाके अनुसार यहां कुछ भी नहीं करता, कुछ नहीं देखता, कुछ व्यवस्था बनानेकी नहीं सोचूंगा किन्तु इस गृहस्थ अवस्थामें जो बाहिरी समागम है उसके अनुकूल व्यवस्था बनाऊंगा। मेरी व्यवस्था जिस चाहे पद्धतिसे बन सकती है। करोड़के वैभवके योग्य भी व्यवस्था बन सकती है। लाखों, हजारों, सैकड़ों रुपयेके योग्य भी व्यवस्था बन सकती है। यह सब भ्रम है। मैं जान चुका हूं कि मैं तो केवल अपना शुद्ध अस्तित्वमात्र हूं। मेरा काम केवल जानन और आनन्द दो ही अपने काम हैं। ये मेरे काम भावात्मक है ? मैं भावात्मक हूं। मैं सर्ववस्तु व्यवस्थाको जान सकता हूं पर मुझे तो प्रधानतया अपनी ही व्यवस्था बनानेकी पड़ी अपने आपमें बसे हुए इस परमात्मतत्वको देखो जो स्वतत्र है अरहन्तके रूपमें पूजा जाता है, सिद्धत्वके रूपको पूजा जाता है। हे योगी ! इस देहमें बसे हुए इस शुद्धज्ञान प्रभुमें देख। इस प्रकार योगेन्दु देव इस आत्मतत्वके स्वरूपको प्रभाकर भट्टको समझा रहे हैं।

परमात्मतत्त्वका विकास परमात्मतत्त्वकी भावनामें होता है। शुद्धनिर्दोष ज्ञानमात्रकी स्थिति चाहते हैं तो शुद्ध निर्दोष ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी भावना करनी होती है। शरीररहित होना चाहते हैं तो अपने शरीररहित निज-स्वरूपास्तित्वमात्र आत्माको देखो और शरीररहित माननेका संस्कार रहा तो शरीररहित होनेकी स्थिति कभी नहीं आ सकती। लक्ष्यको शुद्ध कर लो यही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है और सर्वकार्योंसे मिलकर तो लक्ष्यकी सिद्धि नहीं है। मेरा लक्ष्य इतना महान् है कि मुझे इन झंझटोंसे काम नहीं है। १०–५ जीवका परिवार मिल गया तो उससे कोई मेरा कल्याण होनेका नहीं है। मेरा कल्याण तो मेरा स्वयं स्वरूप ही है। मैं कल्याण मूर्ति हूं। अपने ज्ञानको अपने आपमें बहुत अन्दर लेजाकर देखें। इन विकल्पोंसे भी पार होकर अपने अपने अस्तित्वके कारण जो अपना स्वरूप है उसके निकट जाकर देखो, कल्याणकी मूर्ति तो यह आत्मा स्वयं है। इसकी भावना करो तो कल्याणका विकास होगा। हम अपनेको बहुत बहुत जैसा सोचा करते हैं, वैसे हम नहीं हैं। अपनेको निज सहजस्वरूपमय जान लें तो सब विह्वलता समाप्त हो जायगी। एक ऊधम करने वाला बालकको यदि कोई बड़ा यह कह दे कि अरे राजा भैया!

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तू तो बड़े कुलका है, तुझे उधम नहीं करना चाहिए। बारबार यह जानकर कि अरे मैं राजा भैया हूं तो वह अपने में जिस प्रकार राजा भैया, सत् व्यवहार होता है वह व्यवहार कर रखेगा। आपको किसीके प्रति भ्रम हो जाय कि यह तो मेरा बुरा चाहता है तो बार-बार इस भावनामें रहनेपर आप ऐसा व्यवहार कर डालेंगे जिससे तनातनी हो जायगी। यदि आप अपनेमें अनुभव लगाएं कि मैं कितने बच्चोंका पिता हूं तो इस भावनामें आपको उन बच्चोंके प्रति ऐसा बर्ताव करना होगा जिससे पितृत्व सही कहलाने लगे। आप एक जीव हैं, केवलज्ञान स्वरूप हैं, ज्ञानभावके अतिरिक्त और कुछ स्वरूप नहीं हैं, भले ही यह मनुष्य इस देहमें बधा हुआ है तिसपर भी यह तो ज्ञानमात्र है। यह जीव जब ज्ञानमात्र निजस्वरूपकी भावना नहीं करता है और अपनेको मैं मनुष्य हूं मैं मनुष्य हूं ऐसा मानता रहता है तो वह मनुष्य जैसा व्यवहार करता है। यदि यह अपनेको ज्ञानमात्र ही मानें मैं ज्ञानमात्र हूं, जानन ही मेरा काम है और जाननेमें जो कुछ गुजरता है उसको ही भोगना मेरा काम है, मैं ज्ञानके अतिरिक्त और कुछ नहीं करता हूं, मैं तो ज्ञानस्वभाव हूं, जाननभाव हूं—यदि ऐसी भावना बन जाय तो ज्ञाता दृष्टा रहनेका व्यवहार बनेगा। यह जीव अपनेको जैसा मानता है तैसी भावना करता है। उसरूप ही इसका व्यवहार हो जाता है। यदि संसारसे मुक्त होना है, यह कुटुम्ब वैभवका सा अपार जाल गया है सो इससे छूटकर, शरीरसे मुक्त होकर अपने आपके शुद्ध आनंदमें मग्न रहना है तो ऐसी भावना करनी चाहिए कि मैं ज्ञानमात्र हूं। जाननसे ही मेरा सम्बन्ध है. जाननभावके अतिरिक्त मुझमें कुछ नहीं है। यह मैं ज्ञानस्वरूप सर्व पदार्थोंसे निराला हूं, केवल अपना स्वरूपमात्र हूं। सबसे निराले अपने आपका अनुभव करो तो वह परमात्मपनकी स्थिति हो लेगी। क्यों अन्य अन्य रूप अपनेको मान मानकर हम अपना समय व्यर्थ गुजार रहे हैं?

इतना तो श्रम किया इस आयु तक सभी जानते हैं अपना अपना परिश्रम किया, आज संतोष है क्या? शांति है क्या? न शांति है, न संतोष है। किसी भी क्षण आदमीको संतोष, शांति नहीं है। यह विडम्बना क्यों हो गई? इसका कारण है कि पदार्थ है अपने-अपने स्वरूप चतुष्टयरूप और हम मानते हैं उसको अपनी इच्छानुसार अदृश्य स्वरूपमें बसा। इतनी ही भूल इतने बड़े विषवृक्षका कारण बन गयी। बड़का पेड़ कितना बड़ा होता है कहीं कहीं तो आधे फरलांग तक फैल जाता है. किन्तु उसका बीज कितना? सरसोंसे भी छोटा। उस बीजका परिणाम इतना बड़ा वृक्ष है सो यह चाहे सरसोंसे भी छोटा है किन्तु है तो कुछ। लेकिन इस भ्रममें तो कुछ है भी नहीं, और झगड़ा सांचा बन गया। पशु बनेगा, पक्षी हो जाना, कीड़े मकोड़े हो जाना, पेड़ बन जाना और नाना कषाय और विषयका भाव उत्पन्न हो जाना। झगड़ा देख लो सच्चा खड़ा हो गया।

यह भ्रम कोई सत्य चीज नहीं है किन्तु इस जरा सी भ्रांतिमें इतना सारा संसार विष वृक्ष खड़ा हो गया। यह जीव, मनुष्य, पशु पक्षी आदिके आकारोंमें बध गया है। यह तो ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानका कोई आकार नहीं है। वह तो ज्ञेय ग्रहण स्वरूप है। यह इन आकारोंमें बंध गया इसका कारण क्या है? इसका कारण कर्मका उदय है। ऐसा कर्म क्यों हो गया? क्यों बंध गया? कर्मका जाल भी बहुत विस्तृत है। करणानुयोगके जानने वाले समझते हैं कि एक जीवके साथ अनंत स्पर्धक लगे हुए हैं। एक स्पर्धकमें अनंत वर्गणाएं होती हैं। एक वर्गणामें अनंत वर्ग होते हैं इतने कर्म परमाणुओंका जाल एक एक जीवके साथ लगा हुआ है। फिर उनमें अनुभव शक्तिका तो कहना ही क्या है? एक एक वर्गमें अनंत अनंत अनुभाव शक्ति होती है। ऐसा कर्मोंका यह विचित्र जाल इस जीवके कषायका परिणाम क्यों होता है? यों होता है कि इसका परद्रव्यमें यह मैं हूं, यह मेरा है, इस प्रकारका भ्रम हो गया। देखो—इतना बड़ा पहाड़ देखकर इसको पूरा खुदवाया तो यों था कि इसके नीचे धन मिलेगा। इतना बड़ा पहाड़ सरकारने खुदवाया पर उस पहाड़को खोदनेपर मिला क्या? निकला एक चूहा तो जैसे यह सरकार करोड़ों रुपये खर्च कर देती है पर तत्त्व कुछ नहीं निकलता, इस प्रकार इस चिकने चोपड़े मकान सोना चांदी वैभव आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मायामय चीजोंका तो कुछ पार पाना चाहिए, विवरण लेना चाहिए। यह क्यों हुआ है? कैसे हुआ है? क्या कारण था? खोजते खोजते अंतमें निकला क्या? एक तुच्छ बात गलती केवल इतना ही परिणाम कि किसी परद्रव्यके प्रति यह उपयोग बन बैठा यह मैं हूं, यह मेरा है। इतने भ्रमके ऊपर यह इतना बड़ा जगजाल खड़ा हुआ है। हम घबड़ाते है इस दुःखको देखकर, संकटमें हम अधीर हो जाते हैं। संकट तो सचमुचका हो गया पर उसका बीज-कारण केवल भ्रम निकला। देखो ना शरीरमें फस गया। यह सच तो हो गया है। झगड़ा तो सच हो गया मगर इस झगड़ेका आधार भ्रम एक हसीके आधार पर इतना बड़ा झगड़ा बन गया। कई कोर्टोंमें जाना पड़ रहा है, दोनों पक्षका धन बरबाद हो गया। इतने बड़े झगड़ेकी मुख्य नींवका कारण एक मामूली हसी है। तुमको बड़ा संकट लगा है। इस संकटका कारण केवल एक दृष्टिका भ्रम है। लो, दृष्टिका भ्रम नहीं रहा तो जहां बड़े हैं वहां पर भी मोक्षमार्गी है। जो निराकुल है उसके कोई संकट नहीं है। कितना बड़ा यह संसारका रूप, कितनी बड़ी विपत्ति? यह जन्म मरणका चक्र है किन्तु यह भ्रमपर खड़ा है।

और साधारण संकटोंकी तो चर्चा ही क्या करें। घरके गृहस्थीको बातचीतके कितने ही संकट तो ऐसे हैं कि खाली दिमाग शैतानका घर उसके आधार पर हैं जिनमें कोई सार नहीं है। ख्याली इतने बड़े संकट उनको दूर करनेमें अपने कषायका प्रयोग करना पड़ता है। पर हे दयावान् आत्मन्! तू संकटोंकी चिंता तो करता है, किन्तु जन्म मरणके चक्रके लगा जा रहा है, इसको कुछ चिंता नहीं है। इस मनुष्य जीवनके और अपने कल्पनामें माने हुए संकटोंको दूर करनेमें परिश्रम कर रहा है। अरे सारा जहां मेरेसे उल्टा चलता है तो चल ले। वह जहांका परिण-मन परवस्तुमें समाप्त हो जाता है। इससे बाहर मेरेमें कुछ नहीं आता। परिवार तो क्या सारा, परिचित वर्ग भी मेरे प्रतिकूल हो जाय तो भी उनसे मुझमें कोई आपत्ति नहीं आती है। मैं ही अपने कल्पना जाल रचता हूं तो मैं स्वयं दुःखी होऊंगा। किसीकी कुछ चेष्टासे मेरेको क्लेश नहीं होता है। मैं अपनी स्वयंकी कलामें पूर्ण सुरक्षित हूं। यह आत्मा स्वयं अपराधी है और उन अपराधोंके कारण ऐसा अयोग्य, अशक्त हो गया है कि बाह्य पदार्थोंके परिण-मनका अर्थ अपने आपमें हटाता रहता है। तुम्हें क्या बनना है? इसका तो निर्णय करलें। हम ४—७ लड़के लड़-कियोंके बाप बन गए हैं, अच्छा बन लो। बाप बननेका कितना लाभ लूट लोगे? तुम्हें इस नगरमें एक ख्याति प्राप्त बनना है तो ख्याति प्राप्त बन लो, इन मोही कषायवानों मरमिटने वालोंमें तुम्हें ख्याति प्राप्त बनना है अच्छा बन लो। लेकिन तुम्हें क्या कोई सहारा देगा और भी तुम सोच लो, क्या बनना है तुम्हें। भैया किसी भी बाह्य रूप बननेकी मत सोचो। किन्तु सहज जो है वहीं रहना है ऐसा संकल्प करो। मनुष्य होना सहज होनेकी बात नहीं है। इसलिए ज्ञानी आत्मा मनुष्य भी होना नहीं चाहता। नेता, पिता, गुरु, शिष्य आदि बनना भी आत्माकी सहज बात नहीं है, इसलिए यह सब भी नहीं बनना चाहता। जैसे कोई ज्ञानी संत जब अपने वैराग्यमें पड़ता है तो उससे पूछो कि तुम क्या बनना चाहते हो? क्या उत्तर मिलेगा? एक साधु बनना चाहता हूं, यह उत्तर नहीं। यह बननेकी बात है साधु बननेमें लाभ नहीं है। तो क्या बनना चाहिए? अरे! वह कुछ बनना ही नहीं चाहता है, न साधु, न गृहस्थ और न गुरु न शिष्य। मैं तो जैसा सहज हूं वैसा रहना चाहता हूं। अच्छा तो तुम जैसे सहज हो वैसे रहनेकी योजना करलो, हां वह यत्न करता है, करता है करले, बाहरमें आपने क्या देखा, कुछ नहीं केवल शरीरमात्र नग्न। अच्छा अब हम समझ गए हम कल्याणके लिए नग्न बने। न, न, हम नग्न नहीं बने मुझे तो कुछ बनना कि ही नहीं है किन्तु वैभवको रखनेमें बहुत विकल्प होता है तो वैभवसे छुट्टी पाई है। परिवारमें रहनेसे बहुत विकल्प होता है तो परिवारसे छुट्टी पा ली है। पैसा, वस्त्र रखनेसे बहुत विकल्प होता था तो पैसा और वस्त्रोंसे भी मुक्ति पा ली है। हम नग्न नहीं बनते पर निवृत्ति करते करते ऐसा रह गया तो क्या? मैं तो चाहता हूं कि यह भी रूप नहीं बने। मैं तो ज्ञानमात्र रहूं। यह बात मेरे अन्दरसे ज्ञानसे उत्पन्न हुई परिणतिकी बात है। साधु रह जाता है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर साधु बनता नहीं है। बनना तो सब कुछ ही खराब है। बननेमें लाभ नहीं। इस गृहस्थको किसी अन्य चीजमें प्रयोजन नहीं रहा सो सब चीजोंको छोड़ता गया तो छोड़नेकी कलामें यह शरीरमात्र रह गया। इसको कहते हैं साधु अवस्था, जैसे कोई सन्यासी स्थित है कि हमें सन्यासी बनना चाहिए तो लाल कपड़े रगवा लो। एक डंडा, एक चींमटा और भस्म भी शरीरमें रमा लो। मुझे सन्यासी बनना है तो यों कोई यह कहे कि मुझे साधु बनना है। मेरे लिए बम्बईका अच्छा कमण्डल बुला दो। मेरे लिए अमुक चीज बुला दो हालांकि यह सब बात रहेगी। किन्तु भैया साधु बनना और बात है, रह जाना और बात है. दोनोंका अन्तर बतलाते हैं। बन जानेके भावमें जो कुछ खटपटकी जायेगी उसका फल व्यामोह है। जिस ओरसे यह संत विरक्त है उसका प्रयोजन न रहनेसे साधुता हो जानेका फल शान्ति है। इसको वस्त्रोंका प्रयोजन नहीं सो वस्त्र छूट जाते हैं। वस्त्रको छोडूं नग्नरूप रहूं और साधु बनकर जीवन सफल करुं यह विकल्प साधु बननेके हैं साधुता रह जानेके नहीं। यह अन्दरकी बात है बाहरमें तो देखो तो दोनोंका वही रूप है जो साधुका रूप होता है पर बनने और रहनेके आशयमें जमीन और आसमानके जितना अन्तर है। बनना तो एक गाली है। किसीसे कहते हैं कि वाह ! तुम तो बड़े बन गए हो। सुनने वाला जानता है कि समझ गया है यह कड़ी कड़ी बात बोल रहा है, उल्टा जान बूझकर बोल रहा है। वाह ! तुम तो बड़े बन रहे हो। एक कथानक है कि एक बार गुरु और शिष्य चले जा रहे थे। एक राजाके बागके पास सायंकाल हो गया तो राजाके बागमें चले गए। उस बागके दो कमरे बहुत अच्छे साफ सुथरे थे। कमरेमें एक पलंगपर या अच्छेसे तख्त पर शिष्य बैठ गया और एक कमरेमें गुरु बैठ गया। गुरुने शिष्यको समझा दिया कि रे शिष्य यहां पर कुछ बनना नहीं, बनोगे तो बुरी तरह पिटोगे। कुछ देर बाद राजा ४ सिपाहियोंके साथ घूमने बागमें आया। राजाने नौकरोंको कहा कि कमरेमें कौन है ? महाराज इस कमरेमें कोई दो आदमी बैठे हैं। अच्छा जाओ उनसे पूछो। सिपाही शिष्यके कमरेमें गया और सिपाही शिष्यसे कहता है कि तू कौन है तो शिष्य कहता है कि तुम निरे अंधे हो क्या ? जानते नहीं कि मैं सन्यासी हूं। सिपाही ने राजासे कहा कि वह इस प्रकार कह रहा है कि तुम अंधे हो दीखता नहीं कि मैं सन्यासी हूं। राजाने कहाकि उसे कान पकड़कर निकाल दो। सिपाही ने कान पकड़कर निकाल दिया। एक कमरे में बैठा था गुरु। सिपाही ने उससे पूछा तुम कौन हो ? उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और वह गुरु मौनपूर्वक प्रभुके भजनमें लगा रहा। सिपाही आया और बोला कि महाराज वह आदमी मौनपूर्वक बैठा है। निश्चल बैठा है, न हिलता है, न डुलता है। राजा बोला अच्छा वह कोई योगीश्वर होगा। उसके दर्शन करके वह राजा वापिस चला गया और सिपाही भी चले गए। जब भजन काल पूरा हुआ तब शिष्य गुरुसे कहता है कि अच्छे ठहरे इस कमरेमें। तब गुरुने शिष्यसे पूछा कि शिष्य ! तुम कुछ बने तो नहीं थे। शिष्य बोला महाराज मैं कुछ नहीं बना, मैंने सिपाही से तो सिर्फ यह कहा कि अरे अंधे हो, दीखता नहीं कि मैं साधु सन्यासी हूं। गुरु बोले यही तो बनना हुआ, साधु भी बनना अच्छा नहीं। करना क्या है ? बनना क्या है ? कुछ नहीं बनना। बननेका तो यह प्रसाद है कि आज जन्म मरणके इतने चक्कर लग गए हैं। महाराज बनने का नाम मत लो। बनना बहुत बुरा है। मैं क्या क्या नहीं बना ? कीड़ा बना, मकोड़ा बना, मनुष्य बना अथवा साधु सब कुछ बना मगर वह सब नाटक रहा। ज्ञानी की दृष्टि इस ओर है। साधु होकर भी ज्ञानी अपनेको ज्ञानमात्र निरखता है जबकि बने हुए साधु अपने शरीर पर दृष्टि देकर और चाहे वह दिगम्बर सम्प्रदायका साधु क्यों न हो ? सत्य साधु, ज्ञानी साधु अपनेको दिगम्बर साधु रूप भी अनुभव नहीं करता। इस कारण ज्ञानमात्र, अपने आपके अस्तित्वके कारण जो सहज ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, तन्मात्र अपने स्वरूपकी श्रद्धा रखता है। यही तो बड़ी बात है जिसके कारण शत्रु और मित्र दोनोंमें समान दृष्टि रहती है। शरीर को साधु न मानने पर इतना परिणाम हो सकता कि शत्रु को शत्रु नहीं मानना और मित्र को मित्र नहीं मानना। अन्यथा किसीने नमस्कार नहीं किया, कुछ प्रतिकूल व्यवहार किया तो इस प्रकार की वृद्धि हो जाती है कि उसके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

प्रति क्रोध आ जाता। पर्याय बुद्धि का भी अजब चमत्कार है। गृहस्थोंमें भी जो यह जानता है कि बाल बच्चोंसे, वैभवसे मेरी पूर्ण सही सही इज्जत पोजशन वाला मैं एक गृहस्थ हूं, ऐसी श्रद्धा करने वाले संकटमें पड़ जाते हैं। जरा जरा सी बातमें अपमान महसूस करने लगते है, उन्हें आराम नहीं मिलता। ज्ञानी गृहस्थ तो यह सोचता है कि मैं हूं तो ज्ञानमात्र, मेरा कार्य तो केवल जानन देखना है, किन्तु इस स्थितिके लायक मेरी अन्दरकी योग्यता नहीं है सो उस स्थितिके योग्य बनने के लिए मैं सब गृहस्थीके सदाचार का नियम लिए हूं। मैं काला, गोरा बाल बच्चा धन वैभव वाला नहीं हूं। मैं इस स्थितिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आचरणमें रहनेका अवसर बना रहा हूं। मैं एक चैतन्य हूं, ऐसी श्रद्धावान् गृहस्थ बड़े संकटमें भी अधीर नहीं होता। उसने तो अपना पथ चुना, वह इस धर्मको पालनेकी ही धुनि रखता है यह प्रकरण यहां चल रहा है कि परमात्म विकासका साधक परमात्मस्वरूपकी भावना है और परमात्मस्वरूपकी भावनाका बाधक राग द्वेष मोह, है। इस राग द्वेष मोहके कारण जो कर्म बंध होता है उससे यद्यपि यह बंधा है और देहमें स्थिति है फिर भी यह आत्मा, परमात्मा देह सहित नहीं होता है। हे प्रभाकर भट्ट, हम निर्दोष ज्ञानमात्र अपनी आत्माके सवेदनरूप ज्ञानको अनुभव कर लें कि मैं भी ऐसा ही परमात्मा हूं। यह परमात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रत होने वाले को उपादेय है। ज्ञानीजनोंका यह ध्येय रहता है। इसके अर्थ परमात्मतत्त्वकी भक्ति ज्ञानी करते हैं। ज्ञानी परमात्माकी भक्ति अन्य लौकिक प्रयोजनके लिये कभी कर ही नहीं सकते। जो कोई पुत्रसमृद्धिकी उन्नतिके लिए पूजा करे तो वह भगवानकी पूजा कर ही नहीं रहा। वह तो पुत्र और धनकी पूजा कर रहा है। मुंहसे कहता है जन्मजरामृत्युविनाशयाय, किन्तु उस अज्ञानीका अन्तर यह कह रहा है कि पुत्र स्त्रीघ विकासाय। प्रभुके पूजक तो ज्ञानी होते हैं। अपने आपको परमात्मस्वरूप देखो तो परमात्मत्व प्रकट हो सकता है।

आत्माका सवस्व उपयोग है। इस उपयोगके द्वारा सत्यका उपयोग करके जीव अपनेको निर्वाध रख सकता है और असत्यका उपयोग रख कर अपनेको बाधाओं में और उलझनोमें डाल सकता है। खैर इसके पास साधन तो एक उपयोग ही है, जो कुछ करता है वह उपयोगके द्वारा ही करता है। इसका उपयोग तक ही दम है, काम हैं। जो जीव मोही है परवस्तुका सुधार करने का यत्न करता है वह भी वास्तवमें उपयोग ही कर पाता है पर मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं सर्वत्र केवल अपने उपयोगको ही करता रहता हूं—ऐसी श्रद्धा होना, एसा विषद्ज्ञान होना यह बड़े भवितव्यकी बात है अन्यथा प्राय: सभी अनन्ते जीव परकर्तृत्व बुद्धिमें और स्वामित्व बुद्धिमें पड़े हुए हैं। यह आत्मा कर्म और शरीरके बीच पड़ा हुआ है फिर भी यह जुदा है। दूध और पानीको एक गिलासमें मिला देने पर भी दूध जुदा है और पानी जुदा है। समझने वाले तो उस मिले हुए को भी समझ सकते हैं और न समझने वाले को प्रयत्न करके, अग्निमें तपा कर पानीको उड़ाकर समझा सकते हैं। उस दूध पानीकी बात अलग रही। असली दूधमें भी जो दुग्धत्वका अंश हैं और पानीका अंश है वह भी परिक्षकों के द्वारा भिन्न भिन्न पहिचाना जा सकता है। बंध हम आप सब पर एक पूरी आफत बैठी हुई है। इस आफतमें भी उपयोगका ऐसा प्रताप है कि हम आफतको अलग जान सकते हैं और निरापदको अलग जान सकते हैं। अज्ञानमें तो यह सारा संसार जुआरी है। पुण्य कर्मके उदनमें जीत मानने वाले और पाप कर्मके उदयमें हार मानने वाले ये सारे जीव हैं। जुआमें भी यही तो हुआ करता है जीत और हार। हम आप संसारके प्राणी यही तो कर रहे हैं। पुण्यका उदय आया, जीत मनाने लगे और पापका उदय आया तो हार मानने लगे। इस जुआरीके बीचमें हम आप भी जुआरी बैठे हुए है। इन जुआरियोंके संगममें रहकर हम अपना यह बल नहीं उत्पन्न कर पाते कि पुण्यके उदयमें हम जीत नहीं मानें और पापके उदयमें हम हार नहीं मानें—ऐसा नहीं कर सकते। पर मुख्य तो हमारी कमजोरी है साथ ही यह सारा जीवलोक भी ऐसा ही है। जैसे कोई जुआरी जुआरियोंके बीचमें बहुत लुट पिटनेके बाद भी यह चाहता है कि मैं इस अड्डेसे हट जाऊं तो बैठे हुए जुआरी लोग इस प्रकारकी बातें करते हैं कि वह वहां से उठ नहीं पाता। कहते हैं बस इतनी ही दम थी, खतम हो गया, खोखला हो गया ऐसी ही औंधी सूंधी बातें कर देते हैं जिससे उस लुटे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पिटे जुआरी को उस अड्डेमें और लुटने के लिए बैठना पड़ता है। इसी तरह यह समस्त जीव लोक परमार्थसे जुआरी हैं। इनमें से कोई पुरुष किसी प्रकार वैराग्यसे सन रहा हो, विरक्त हो गया हो और इस अड्डेसे हटना चाहता हो तो उसे कठिनाई मालूम होती है। हटने वाले हट जाते हैं पर कठिनाई बहुत मालूम होती है। स्त्री, पुरुष, मित्र इतनी भली भली बात कहकर मोह लेते हैं और उस संकटको सहन नहीं कर सकने की योग्यता वालोंको यह तूफान आकर संकट हो जाता है। भूल यह होती है कि ऐसे निर्मल दुर्लभ जीवनको पाकर भी हम अनेक कारणों से उत्थानकी ओर नहीं बढ़ पाते हैं और इस सीमाके अन्दर ही घूमते रहते हैं। निकलने का तो अन्दरमें ही एक सरल तरीका है। बाह्यका संकोच छोड़ो। जिसमें कि संकट नजर आया है। उसकी ओर दृष्टि तो कितने ही समय से हो रही है। इस संकोचके कारण भी अपने मन में आये हुए सन्मार्ग पर यह नहीं चल पाता। उदय सुन्दरके बहनोईकी कथा है। उदय सुन्दर का बहनोई बज्रभानू नामका था। वह स्त्रीके साथ ही स्त्री के मायके चला, भाई लेने आया था। एक दिनका वियोग नहीं सह सकता था। इतना मोही वह उस मार्गके जंगलमें एक युवक को शांत आनन्द मग्न जब निरखता है तो उसका मोह दूर हो जाता है कितना विचित्र आनन्द है इस आत्माको। वैसा ही तो यही मैं हूं। वह अपने मोहको देखकर मुनिराजकी ओर एकटकी लगाकर देखता है। पर ये दो जीव साथमें हैं स्त्री और साला। इनसे क्या कहकर छुट्टी मांगे। देखो भैया बड़े प्रोग्राममें बंधे हुए आये थे, जाना कहीं है और हो क्या रहा है? अवसरने साथ दिया कि उसका साला दिल्लगी करता है कि क्या तुम मुनि बनना चाहते हो? बस संकोच मिटने का उपाय बन गया। मैं इनसे कुछ कहता, कष्ट करता अब इन्होंने कह दिया तब बोला कि हम मुनि बनेंगे तो क्या तुम भी बनोगे? साला उसके अन्तरका सही भाव नहीं जान सका और अब भी वह दिल्लगी करता है हां तुम बनोगे तो हम भी बन जायेंगे। वह तो लो मुनि बन गया। जो कि इतना तीव्र मोही था कि अपनी स्त्रीको एक दिन भी नहीं छोड़ सकता वह सदाके लिए मोहयुक्त हो गया। यह देखकर उदय सुन्दरका भी मोह टूट गया। कुछ विचित्र आनन्द आ गया सो वह भी मुनि हो गया। दोनों की दशाओंको देखकर स्त्रीको भी वैराग्य आ गया। भैया देखो ना, कठिन अवस्था, कठिन संकट उपकारके लिए होते हैं। मोही उन संकटोंसे तनिक भी लाभ नहीं लेता परन्तु ज्ञानी उन संकटोंसे लाभ उठा लेते हैं। आज सब चिल्लाते हैं, कहते हैं कि सदाचारी बनों, योग्य नागरिक बनों, सद् व्यवहार वाले बनों किन्तु जो कुछ अच्छापन निर्बाध चलता है। उस सबका मूल है आत्मस्वरूपके सत्य ज्ञानके बिना कोई सदाचार टिक नहीं सकता। आत्मज्ञान बिना सदाचार बनने की धुन कोरी उफान है। यह समझते कि एक लौकिक वृत्तकी अंतर्धुनिसवार है कि ठीक ठीक काम करो। अज्ञानियोंको उन सदाचारोंको पालनेसे भी आत्म-सन्तोष नहीं हो सकता है। क्योंकि आत्मज्ञान होनेसे सदाचार तो होता ही है किन्तु आत्मसन्तोष भी होता है जिसे अपने स्वरूपका परिज्ञान हो गया, यह मैं आत्मा केवल ज्ञान-आनन्द भाव मात्र हूं। अन्य पदार्थोंमें न मेरा कर्तृत्व है, न स्वामित्व है, न भोक्तृत्व है और मुझमें उपाधिका निमित्त पाकर उत्पन्न होने वाले विकार भी स्वयं नहीं आते हैं, ये उपाधिकी झलक हैं। ऐसा सही ज्ञान जिन्हें हो गया वे पुरुष दूसरोंपर कैसे अन्याय करेंगे? उन्हें इस अपने आप पर अपनी भूलमें हो रहे अन्यायको करने की क्या गरज पड़ी है। वह दूसरों पर अन्याय क्यों करेगा? दूसरों पर अन्याय न करना ही सदाचार है। सबसे अमूल्य वैभव और पुरुषार्थ आत्मा की सहज ज्योतिकी झलक है। आज इस आध्यात्मिकत्वके रुचिक कम हैं। समस्त संसारमें अपने मंडल पर ही दृष्टि न देकर सब मनुष्यों पर दृष्टि करके देखो। जैसे आज मांस न खाने वालोंकी गिनती की जाय तो उनकी हुई गिनतीमें मांसत्यागी लोग शायद एक प्रतिशत भी न बैठने पायें। सौ में एक निकलेगा जो मांसका त्यागी होगा। यह सुनकर त्यागीको अचरज होता है कि ये सब तो मांस न खानेवाले हैं, फिर बतलाते हैं कि एक प्रतिशत मांस त्यागी है। दुनियामें दृष्टि लगाओ तो यह सत्य निकलेगा कि एक प्रतिशत मांस त्यागी हैं। अपनी ओर को ही न देखो। सारा बंगाल, सारा उड़ीसा, पंजाब और विदेश चीन वगैरह सब पर दृष्टि लगाकर देखो तो एक प्रतिशत भी माँसत्यागी मुश्किलसे निकलेंगे। वहाँ तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लाखों पर अनुपात पर सोचा जायगा। सर्व जनता पर दृष्टि देकर देखो। आध्यात्मिकत्व रुचिक कितने हैं। अपनी ही गोष्ठी पर दृष्टि देकर न विचारो। यहीं देखो आप पर किसीका बोझ है कि शास्त्रमें आना ही पड़ेगा, रुचि है ना, धर्मकी आध्यात्मिकत्वकी। स्वाध्याय, पूजा पाठ रोज करते हो तो किसीका डंडा पड़ रहा है क्या कि ऐसा तो करना ही पड़ेगा। आपकी रुचि है आत्मतत्वके वर्णनमें परमात्मतत्वकी, वहीकी वही बात रोज हो जाती है। होओ अध्यात्मरुचिकोंको उससे ऊब नहीं आती। जैसे भोजन रोटी दाल वही रोज रोज मिलता है, किन्तु भोजनमें रोज नई रुचि बनती जाती है। जो आध्यात्मिकत्वका रुचिया है वह उस ही उस ही चीजको रोज रोज सुन कर नहीं अघाता। जैसे मनुष्य वही दाल रोटी रोज रोज खाता है, वहां यह हिसाब नहीं लगाता कि इसे तो महीना भर हो गया खाते खाते, अब क्या खाना? नहीं उसे तो वही रुचि है। रुचि होनेसे वही उर्दकी दाल और रोटी नए नए स्वादकी मालूम होती हैं। इसी प्रकार आध्यात्मिक रुचिक पुरुषोंको आत्माकी वही वही बात रोज नवीन नवीन स्वाद वाली मालूम होती है और हम यदि उस आध्यात्मिक बातमें लग जायें तो इतनी यह सही होगी कि हम वहां से हटेंगे नहीं। जब हम उस महलसे च्युत हैं, अलग हैं तो हमें तो यह कथन, यह चर्चा रोज रोज तो क्या प्रतिक्षण चाहिए। बहुत बुरा संकट. बीमारी है। जैसे डाक्टर तेज बीमारीमें २-२ घंटेमें दवा बतलाते जाते हैं। मामूली बीमारी है तो सुबह शाम दवा बतलाते हैं। हम विकल्पोंके इतने भयानक रोगी हैं। हाय रे मन! तू एक मिनट भी आरामसे नहीं बैठ सकता। किस किस जगह विकल्प बन रहे हैं, कैसी कैसी मनमें उड़ान आ रही हैं। मरणासन्न है, मरणासन्न नहीं प्रतिक्षण मर रहा है। जो आयुके इतने क्षण हमारे निकल गए वे क्षण अब नहीं आते हैं। इसलिए वह मरण हो गया। हम प्रत्येक समय मरते चले जा रहे हैं और तद्भव मरण तो इस भवके अंतमें आयेगा जहां कि मनुष्यकी आयुका अंत हो जायेगा। वह तो है तद्भव मरण, पर प्रति समय इस मनुष्यायुका निषेक खिर रहा है वह क्या मरण नहीं है? प्रत्येक समय मरण है और वह मरण भी चला रहा है विकल्पोंके भयंकर रोगके साथ, इसकी निरोग अवस्था तो शुद्ध ज्ञाता दृष्टा रहना है। जब भी हम केवल साक्षी होंगे, ज्ञाता दृष्टा होंगे, जाननहार मात्र होंगे तो वह हमारी स्वस्थ अवस्था है। वहां कैसे पदार्थोंमें राग और द्वेषका विकल्प करेगा, वह क्षोभ नहीं करेगा। जब वह क्षोभ नहीं करेगा तो समझ लो कि वह अवस्था निरोग उत्तम स्वास्थ्यकी अवस्था है। किन्तु वर्तमानमें देखो तो सही कि जो जैसी पदवीमें है जिनको धनका समागम लगा है उन उन धनीको अपने अपने अनुकूल विकल्प जाल लगा हुआ है। ऐसे जाल वालोंको शुद्ध आनन्द निधान परमात्माकी चर्चा प्रतिक्षण करने योग्य है, प्रतिक्षण पढ़ने योग्य है और उसी प्रकारकी जरुरी है जैसे कि मरणासन्न रोगीको आध आध घन्टेमें दवा देनेकी जरुरत है। यों आचार्य देव उस ही आत्माकी बातको वर्षों तक लिखते हुए भी नहीं ऊबे क्योंकि उसमें नया नया आनन्द मिलता है। आपका पुत्रसे पत्नीसे प्रेम है तो आप प्रेम भरी बात कह कह कर वर्षों तक भी पत्नीसे नहीं ऊबते। रोज रोज प्रेम-भरी बात कह कर कैसा (कल्पित सही) मजेका रस लिया करते हैं, क्योंकि आपकी पुत्रमें, पत्नीमें रुचि है। इस प्रकार शुद्ध ज्ञायक स्वरूपमें जिन्हें रुचि हो गई है वे पुरुष इस ज्ञायक प्रभुकी बात सुनकर उत्साही होकर उछलते हैं। इस असार संसारमें जन्म मरणके चक्रमें भटकने वाले हम आपकी शरण हैं क्या? किसीकी शरणमें रहें जिस वस्तुकी आप शरणमें रह रहे हैं उस ही वस्तुके कारण आपको अभी या अंतमें विकट चोटें आयेंगी और यदि विवेकसे काम लिया तो ढंगसे उनका साझा निबटा लिया जायेगा। परिवारमें रहना है। परिवार ऐसा भला है तो प्रेमरसमें आनंद लिए जा रहा है। जब कुछ समय तक किसीको बुखार आयेगा तो विषादमें पड़ जायेगा। यह तो दुकानदारी है। कभी नफा हुआ, कभी टोटा हुआ और अंतमें मृत्यु तो होगी जब उस इष्टसे मिलन न होगा, तब उस पागलको खूब मना लो कि यह तो हाथसे बाहर हो जायगा।

भैया, संयोगका हर्ष मनानेका तो यह फल ही है। उन फलोंके चखनेमें क्या खेद करना? प्रयोजन यह है कि संसारमें कोई भी परवस्तु ऐसी नहीं है कि जिसको शरण कहकर हम अपने संकटोंसे बच लें और आराम पा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

लें। पुण्यके उदयमें कुछ बड़ा हुआ तो क्या हुआ ? गृहस्थके झंझटोंमें ऐसा ही तो हुआ करता है। बड़प्पन तो यह है कि विवेकका कार्य करें, सत्यस्वरूपको समझे, परमात्मतत्त्व आत्मतत्त्वकी शरण गहे, निर्मोह रहकर सबसे प्रेमका व्यवहार करें। यह तो है विवेककी बात, किन्तु स्वच्छंद होकर मोही बनकर परवस्तुकी ओर झुके तो यह तो प्रकट अविवेक है। दुःखी तो मोहीको, अविवेकीको होना ही पड़ेगा। जंगलमें एक साधु महाराज ग्रीष्म कालमें कहीं विहार करते हुए जा रहे थे। एक राजा वहांसे निकला। राजा बोला महाराज तुम बड़े दुखी हो। ऊपर भी धूप और नीचे भी धूप आई हुई है तो हम आपके पैरोंके लिए जूतियां बनवा दें। कमसे कम नीचेकी गर्मी तो मिटेगी। साधु बोल अच्छा बनवा देना। पर, नीचेकी गर्मी तो मिट जायेगी, ऊपरकी गर्मी कैसे निकलेगी ? राजा बोला महाराज हम बढ़िया छतरी दे देंगे। साधु बोला फिर लू जो गर्मीमें सताएगी ना, उसका क्या होगा ? राजा बोला कि बढ़िया रेशमी कपड़े बना देंगे आप किसी बातकी परवाह न करो। अब साधुजी बोले, इतने सजधजके बाद पैदल चलनेमें आलस्य आयेगा तो राजा बोला कि आपको एक कार दे देंगे और कारके खर्चके लिए ४ गांव लगा देंगे। साधु बोला कि राजन् फिर मुझे पड़गाहेगा कौन ? मेरे लिए रोटी कौन करेगा और जब रोटी करने वाली ही नहीं होगी तो फिर क्या भूखे मरेंगे। राजा बोला—नहीं महाराज हम आपकी शादी कर देंगे। फिर आपकी स्त्री खाना बनायेगी और आपको बढ़िया बढ़िया भोजन खिलायेगी। साधु बोला कि बच्चे होंगे, खर्च बढ़ेगा। राजा बोला महाराज हमारे ५०० गांव लगे हैं आपको और चार गाँव दे देंगे। साधुजी बोले कि बच्चे फिर बड़े होंगे। उनमेंसे कोई लड़का अथवा लड़की गुजर जायेगी तो फिर रोयेगा कौन ? साधुने सोचा कि शायद राजा यह कह दे कि हम रो लेंगे। पर राजा साधुसे क्या कहता है कि और तो सब कुछ कर देंगे मगर रोना तो तुमको ही पड़ेगा। जो भी विकल्प करेगा, मोह करेगा रोना तो उसको ही पड़ेगा। यह ठाट बाट मिला है, सब कोई चाहता तो यह है कि इसमें मस्त रहा करें, बड़े सज धजसे बनकर रहे किन्तु ऐसा अधिकार तो किसीका है ही नहीं। हां, अपने पर अपना अधिकार है, आत्मज्ञान तत्त्वज्ञानकी चर्चासे अध्यात्मिकतासे अपनी आत्माको पुष्ट बना सके। पुण्यके ठाटोंमें मस्त रहने वालेसे कई गुण आनन्द आत्म-ज्ञान तत्वज्ञानमें होता है। किसीसे पूछो मीठा क्या है ? प्रत्येक कोई कहेगा कि दूध मीठा है, दही मीठा है, गुड़ मीठा है, शक्कर मीठी है। अरे ! मीठा क्या है ? जिसका जहां मन लग गया उसको वही मीठा है। क्या नमक कम मीठा है ? यदि नमक कम मीठा है तो बिना नमकके रसोई बनाकर देखो आनन्द नहीं पावोगे। आनन्द तो क्या, खाया भी न जायगा। जिसका जहां मन लग गया, वहां उसको आनन्द प्राप्त है, जो चीज मेरे पास सदा नहीं रह सकती और जब रहती है तब भी मेरी इच्छाके अनुकूल परिणत नहीं होती हो तो भी नहीं रुच सकती, उसमें मन लगाना व्यर्थ है। यदि कोई यह निर्णय देता कि हमें जो भोग कभी नहीं मिटेंगे, सदा रहेंगे और जो हमें इन्द्रियांमें मिली है ये भी कभी नहीं मिटेंगी, सदा रहेंगी। सो निःसंदेह ऐसा कह सकते हैं कि धर्म ढूंढ़ना व्यर्थ है किन्तु ऐसा तो हुआ ही नहीं है। और भी इसके कारण हैं कि सदा क्लेश बने रहते हैं।

भैया ! सत्य बातकी ओर आचार्य देव प्रेरणा करते हैं, यह बहकानेकी बात नहीं है। आचार्यको बहकाने की बातोंमें क्या था ? जो किसीको अदृश्यकी ओर ले जाएं। बात ऐसी है कि यह दृश्यमात्र पदार्थोंमें सार कुछ नहीं इसलिए परमार्थसार है, परमार्थ शरण है जो निजचैतन्य स्वभाव है उसकी ओर उपयोगके लिए उपदेश किये जा रहे हैं। भूख लगती है और भूखको हम खाना खाकर मिटाते हैं किन्तु अगर ऐसी अवस्था हो जाय कि भूखे लगेही नहीं तो इससे सुख है कि नहीं ? कोई ऐसे भी रोगी हैं जिनको कोई भूख नहीं लगती, हम उनकी कथा नहीं कर रहे हैं। वे मोही हैं। भूख बिना उनका गुजारा नहीं है। ज्ञानी चाहता है कि मेरी आत्माकी शुद्धि हो जाय। अरहंत बनकरके शुद्ध होगा। जब अठारहों दोष नहीं रहते तब तो आनन्दकी पूरी स्थिति हो जायगी। जहां विकल्पजाल नहीं रहा वहीं आनन्दकी उत्कृष्ट अवस्था है। विकल्पजाल नहीं रहे इसके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लिए उपाय आत्मस्वरूपका परिचय करना है। स्वपरिचय बिना विकल्पजाल मिटनेका उपयोग कैसे होगा ? अपनी शुद्ध आत्माकी सत्ताके कारण सहज स्वतःसिद्ध जो भाव है वह निर्विकल्प है, जन्ममरणसे रहित है, शरीरसे रहित है, कर्मोंसे रहित ज्ञायकमात्र है। उस ज्ञायकस्वभावका परिचय इतने उत्थानका आधार है। हम अपनेमें गड़ते जायें और किसी ऐसी गुप्त जगह पहुंच जायें कि जहां पहुंचनेके बाद इस जीवको रंच भी अशांति नहीं रहती है। परमात्मतत्व का परिचय करलें और उस परमात्मतत्त्वके ज्ञानमें सुदृढ़ रह लें तो यह बड़े वीर पुरुषोंका कार्य हैं। कायरजन तुरन्त बह जाते हैं। रंच भी धैर्य नहीं रख सकते वे गृहस्थ परिवार धन्य है। जहां सबके सब बच्चे भी पुत्र भी उस आत्मतत्त्वकी चर्चा करते हैं। वह गृहस्थ जीवन सफल है।

भैया ! जो शांतिका मूलमूल है ऐसे अपने परमात्मतत्त्वके परिचयके लिए तन क्या ? मन क्या ? धन क्या है ? वचन क्या ? सब कुछ न्यौछावर करना पड़े, सब कुछ त्याग भी करना पड़े, यह सब न्यौछावर करके भी एक इस सहज परमात्मस्वरूपका परिचय पा लें तो सब कुछ पा लिया और फिर यह तन, मन, धनके त्यागनेकी भी बात नहीं है। एक दृष्टि पड़नेकी बात, लगने लगनेकी बात हैं। यदि आत्मज्ञानकी उत्सुकता हो गई तो भैया ! बहुत बड़ी निधि पा ली।

जो परमत्थे णिक्कलु वि कम्मविभिण्णउ जो वि।
मूढा सयलु भणंति फुडु मुणि परमप्पउ सो जि ॥३७॥

जो आत्मा परमात्मा शरीरसे रहित हैं, कर्मोंसे रहित है यदि ऐसा ही बननेका भाव हो कर्म नोकर्म रहित अपने आपकी भावना करना चाहिए।

मुनिजन अपनेको शरीररहित कर्मरहित देखते हैं। ज्ञानी संत उसे अपना अस्तित्व मात्र देखता है। अपने स्वरूपमात्र जो ज्ञानस्वभाव आत्मा है उसे परमात्मा जानो। मूर्ख पुरुषोंको तो जो आंखों दीखे वही सच है, जो इन्द्रियके द्वारा ज्ञात हो वही सच है। उनकी छोटी बुद्धिमें जितनी बात समाई है वही सच है। जैसे एक हंस उड़कर आया और एक कुयेंके पाट पर बैठ गया। कुएमें था एक मेंढक तो वह मेंढक बोलता है कि तुम कौन हो ? हम हंसराज है। कहां रहते हो ? मानसरोवरमें रहते हैं। वह मानसरोवर कितना बड़ा है। बहुत बड़ा है आखिर वह मेंढक एक टांगपसारके बोलता है कि क्या इतना बड़ा है। अरे इससे बहुत बड़ा है। दूसरी टांग पसारके बोला कि क्या इतना बड़ा है। भाई वह तो बहुत बड़ा है। तीसरी चौथी टांग पसार कर बोला कि इतना बड़ा है। अजी इससे बहुत बड़ा है। तो वह मेंढक एक पारसे दूसरी पार पहुंचता है तो क्या इतना बड़ा है ? अजी बहुत बड़ा है, तो फिर मेंढक कहता है कि इससे बड़ी तो दुनियां भी नहीं जितना कि मैंने उछलकर नापा है। इससे बड़ी तो दुनियां भी नहीं है, तो मूर्खकी बुद्धिमें जो बात आती है उसके लिए वही सच है। और यहां झगड़ा किस बात पर चलता है. मूर्खोंको अपनी बुद्धि पर ही विश्वास है कि विवेकी है तो हम हैं और बुद्धिमान है तो हम हैं। इस जगत् में डेढ़ अकल है। एक पूरी अकल तो हमें मिली और आधी अकल सारी दुनियांको बट गई, ऐसी दृष्टि होती है मूर्खकी, वह तो आंखों देखी सच मानता है। जो आंखोंसे देखा गया है यह है भौतिक जाल। नास्तिक जन इस शरीरका ही तो प्रमाण मानते हैं, जीव इससे अलग कुछ नहीं है। लोग कह भी देते हैं कि—"यावज्जीवेत्सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः जब तक जीवे, सुखसे जीवे। ऋण हो जाय तो भी घी पीवे, भोजन करे तो अच्छा, रुखे सूखे नहीं रहे, खूब घी खाये। अरे यह शरीर भस्म हो जायेगा, फिर आयेगा नहीं। यह तो उपहासकोंका कहना है पर नास्तिकोंमें से पढ़े लिखे तो यह कहते हैं कि तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना, नासौ मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्। धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महजनो येन गतः स पन्था ॥

मैं किसका सहारा ढूंढू ? जितनी बुद्धियां हैं उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। वकील लोग जानते हैं कि सत्य क्या है झूंठ क्या है ? सत्यको झूंठ बना देते हैं और झूंठको सत्य, तर्ककी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। आगमकी बात देखो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तो सब जुदे जुदे भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा कोई आचार्य है नहीं एक, जिसके वचन प्रमाण माने जायें और फिर धर्मका तत्त्व तो गुफामें रखा है इस तरह गुप्त है, अंधेरेमें है ? सो हम तो यही जानते हैं कि जिस रास्तेसे महाजन निकले हैं, जैसे आचारको महाजन लोग करते हैं, हम तो इस ही को मार्ग समझते हैं। यह पढ़े लिखे नास्तिकोंका कथन है। यह सब ऊपरी ऊपरी भ्रमण है।

जैसे कोई एक ऐसा खेल होता है। बच्चे उसमें गोली रख देते हैं और उसे हिलाते रहते हैं जब तक कि वह गोली निश्चित किए गड्ढेमें नहीं आ जाती तब तक वह गोली फिरती रहती है। कब तक हमारे तर्क विचार, कल्पनाएं घूमती रहेंगी, जब तक एकस्वरूप निजज्ञानमात्र आत्मतत्त्व उपयोग नहीं पहुंचे, घूमती है। कारण यह है कि ढूंढलो कोई ऐसी वस्तु जिसमें चित लगा दें तो उस वस्तुकी तरफसे धोखा नहीं हो, चाहे हम अपनी कल्पनासे हट जायें किन्तु उस वस्तुमें धोखा नहीं हो, ऐसी जगतमें कोई वस्तु है ? नहीं है। स्त्री पुत्र हैं उनमें ऐसी विचित्र कषाय भरी है, आपके भावके अनुकूलके सब परिणमन कार्य भी मुश्किल हैं। ८–१० वर्षका बालक है, खेलमें लगा हुआ है। तुम उससे कहो कि एक गिलास पानी ला दो, हमें प्यास लगी है। वह सुनेगा ही नहीं, आपका प्रिय बालक है पर उसके कषायमें आये तो सुनेगा। आपकी कषायके कारण नहीं सुनेगा। किसी दूसरेसे मन भी मिल जाय तो वह मेल क्षणिक है, नष्ट हो जाने वाला है, नष्ट हो जायेगा तो उसका सहारा क्या है ? और परमात्मतत्त्वकी तो यह बात है कि जो परद्रव्य शुद्ध परमात्मा है उसका सहारा तो होता ही नहीं क्योंकि आत्मा अपना ज्ञान दर्शन-स्वरूप है। केवल आधार लेगा तो वह अपना ही लेगा पर आपमें आधार लेनेकी सामर्थ्य ही नहीं। कदाचित् कहें कि अरहंत सिद्ध भगवानका सहारा मिले तो वह तो धोखा न देंगे। वे अपने स्वरूपमें लीन हैं, आप कितने ही जोरसे स्तवन पढ़ें। तपस्या कर करके थक जाते हैं पर अपना उन्हें जरा भी ध्यान नहीं है। वे अपना ज्ञान संभालें या इस मलीन आत्माका उद्धार करें। उनका क्या सहारा है ? हां सहारा इसमें है कि हम उनके गुणोंका स्मरण करते रहें। हम अपने आपकी स्वभाव दृष्टिमें लीन रहते हैं तो सारा काम बन जाता है। यह तो तीनों कालमें सब परसे व सर्व परभावसे जुदा है। यदि मेरे कहनेसे भगवान अपना निजासन छोड़ करके मुझे उठाने आ जायें तो समझो कि जैसे खोटे संगसे खोटी बातें यहां लोकोंमें जल्दी आ जाती हैं, उसी तरह भगवानमें भी खोटापन जल्दी आ गया। फिर महिमा क्या रही ? भैया वह तो शुद्ध हैं अनन्त केवलज्ञानदर्शन शक्ति व आनन्दके लिए है। यदि वे कुछ करने लगे तो उसकी सब इज्जत धूलमें मिल जायेगी कि हजारों आप जैसे करोड़ों पुरुष उनको तो ध्यान करते हैं, फिर तो उनका बहुत काम बढ़ जायेगा। सो निश्चय करो—परमात्मा अपनेमें हो अपना काम करता है। किसीका सहारा लें यहां जो अशुद्ध प्राणी हैं, उनका सहारा लेनेसे लाभ नहीं और जो शुद्ध परमात्मा है वह परद्रव्य है उनका सहारा उन्हें स्वीकार नहीं। फिर किसका सहारा लें कि हम अपनेको सकटोंसे बचा सकें। वह सच्चा सहारा है अपने आपके सहजस्वरूपको अपने आपमें देखना। इस प्रकार कि केवल मैं अपने सत्वके कारण जैसे स्वरूप वाला हूं। दर्पण यद्यपि किसी न किसी छायारूप परिणमता रहता है, उसे कहीं भी ले जाओ, ट्रंकमें बन्द कर दोगे तो ट्रंकके पड़लाकी छाया आ जायेगी और कपड़ेमें बांध देंगे तो कपड़ोकी छाया आ जायेगी। आप उसे जहां भी रख देंगे तो उसके पास जो भी उपाधि होगी उसकी छाया आ जायेगी। पर ज्ञान बलसे उस साफ स्वच्छ दर्पणके कारणदर्पणका क्या स्वभाव है ? क्या छाया पड़ना स्वभाव है ? उसका तो स्वच्छ स्वभाव है। इसी तरह यह पुरुष घरमें रहता है तो वहां भी विकल्प हो जाता है और समाजमें बैठता है तो वहां भी विकल्प, राग, द्वेष कल्पनायें चलती रहती हैं। उदय है, फिर भी अपने आपमें सोचो तो मेरे अपने आपके अस्तित्वके कारण आत्मतत्वके नाते मेरा क्या स्वरूप है। क्या विकल्प करना ? रागद्वेष करना, यह मेरा स्वरूप है ? नहीं। मेरा तो केवल प्रतिभासमात्र स्वरूप है। जगतके सर्व-पदार्थोंसे उत्कृष्ट विलक्षण स्वरूप इस आत्माका तत्व है। कल्पना करो कि दुनियांमें ये तो सारी चीज हों, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। एक जीव भर नहीं हो तो इस लोककी क्या स्थिति होगी ? कुछ है ही नहीं समझिये।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव किसीको जानते हैं तब वह है का काम कर रहा प्रतीत होता है। तो ज्ञात होता है कि उसकी व्यवस्था करने वाला, उसे जानने वाला अव्वल है। जीव नहीं होता तो यह सब कुछ नहीं होते। जो कुछ ये नजर आते हैं वे सब जीवके शरीर हैं। यह खम्भा खड़ा है। अब जीव नहीं है पर खानसे लाये थे, खोदा था वहां पर पृथ्वीका जीव था। यह जो कपड़ा बिछा हुआ है, अगर जीव नहीं होता तो यह दरी नहीं हो सकती। दरी सूतसे बनी है और सूत कपास का अङ्ग है और कपास पौधेका अङ्ग है, पौधा एक वनस्पति जीव है, उस जीवका यह शरीर है। एक कोई सी कंकड़ी उठाकर बता दो कि जो जीवका शरीर नहीं है। तिनका कछु भी चीज कोई बता दे कि यह जीवका शरीर नहीं है, ऐसा कुछ है ही नहीं। इस पत्थरका भी आकार बना, यह भी जीवके सम्बन्धसे बना, शरीर बना और बढ़ा यह भी जीवके सम्बन्धसे बना। इस कारण इसे कुछ लोग कहते हैं कि यह सब जीव मात्र है, ब्रह्म है, एक है, सर्व-व्याप्त है। सब जीव तो चैतन्य चमत्कार हैं और उन्हें अपने स्वरूपका अनुभव हो जायेगा तो उस चमत्कारका कहना ही क्या ? राजा भरत चक्रवर्ती रानियोंके बीच, राजाओंके बीच, सम्पदाके बीच रहता हुआ भी उदास था। समझमें आ गया कि सर्वका अस्तित्व भिन्न-भिन्न है। इतने समझानेका वह प्रताप है कि घरमें रहते हुए भी उसके कर्मका निर्जरण होता रहा। भैया सुखके लिए अनेक यत्न किए जाते हैं। इन यत्नोंमें जितना श्रम करता है उसका ८वां हिस्सा भी यदि वह इस ज्ञानके अर्जनमें लगा दे, फिर देख लो गृहस्थकी शोभा, बहुत बड़े शृंगार। कोई सेठ बड़ी सभामें बैठा है जो वह बड़ा धनी है और उस सेठ पर इस धनके साथ ज्ञान और विद्याका अक्षय भंडार हो, वह सेठ उस समाजमें, पंडितों आदिसे टक्कर ले सके तो और सम्मान बढ़ जाता है। इस प्रकार बाहरके शृंगारका क्या देखना ? जिसका सम्यग्ज्ञान जग गया तो भीतरमें उसका आनन्द झरता रहता है। केवल प्रताप है सम्यक्त्वका। सच है तो मान लो और न सच है तो मत मानो। एक सब्जी बेचने वाला कहे कि आम मीठा है चूसकर देख लो मीठा न निकले तो दाम मत दो। और आम चूसकर देखो कि मीठा है अथवा नहीं, तो वहां दोनोंका ही विश्वास नहीं है और वह चूसना भी नहीं चाहता तो वहां भीतरसे और तरहसे विश्वास करें। ग्राहक सोचता है कि कलमी आम चूसा और उसको चूसने पर पसंद नहीं आया तो क्या यह दाम नहीं लेगा और वह सोचता है कि चूसनेके बाद झूठ मूठ बोल दूंगा। तो दोनोंको अविश्वास है। यहां तो आचार्य कह रहे हैं कि लोग एक बार उस आत्मस्वरूपकी झलक करलें और तुमको पसद आये तो उसे स्वीकार करलें और नहीं आये तो छोड़ दें। यहां तो अविश्वासकी बात नहीं है, हिम्मत बनानेकी बात है। मोहसे आपका पूरा तो पड़ेगा ही नहीं तो मोहको छोड़ देनेमें उलझन क्या है ? गृहस्थीको राग छोड़नेकी बात कह रहे हैं। केवल मोह छोड़नेकी बातसे धन कमाना सरल है क्या आत्माकी सुधि लेना सरल है ? धन परद्रव्य है ? दूसरेकी पेटीमें पड़ा है। धनका क्रय विक्रय रूप है उस पर आपका अधिकार नहीं है और जोर लगाने पर भी धन सुरक्षित रह सके तो उसका भी आजके जमानेमें विश्वास नहीं है। किसीकी चीज ली, निकल आई चोरीमें दन्द फन्दे हैं पैसाके आगे आनेमें। जो आत्मा अपनेमें आप है। आप अपनी सुधि लेना चाहते हैं, सबसे दृष्टि हटाकर एक ज्ञानस्वरूपकी सुधि लेना चाहिए तो तुरंत ले सकते हो। पैसा तो बड़ा सरल लग रहा है पर आत्माकी सुधि लेना बड़ा कठिन लग रहा है। यही तो मोहकी लकड़ी फिरी हुई है कि कठिन चीज सरल लग रही है और सरल चीज कठिन लग रही है। आप स्त्रीसे प्रसन्न रह सकें यह बहुत कठिन बात है। नाना प्रकार के कषाय भाव स्त्रीके हैं, किस किसकी पूर्तिका विकल्प करेंगे। न मानो तो करके भी देखो तो नए-नए विचार आयेंगे। इन विकल्पोंको छोड़कर अपने आपको अकेला ज्ञानपात्र निरखकर अपनेको प्रसन्न सुगमतया रख सकेगा। यह सरल काम है बहुत सरल काम है। पर लग रहा वह सरल जो सब मोहका काम है पराधीन काम है। बड़ा साहस चाहिए, बड़ी हिम्मत चाहिए। आप अपनी आयसे कोई दुकान या मिल कुछ भी खोलते हैं, आपको उसमें २–३ लाख रुपया लगाना ही पड़ता है और दो साल तक क्या आशा की जाय कि उसमेंसे कुछ निकाल सकें, खर्च कर डालें। पर विधिपूर्वक काम बने तो २ साल बाद ही मन माना सब कुछ मिलता है तो यह आर्थिक प्रसंगकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बड़ी तपस्या है। मोहका त्याग करना, सत्य बातको समझते रहना, रागके बहकायेमें नहीं आना, यह सब परमार्थ की बड़ी तपस्या है। इसमें कठिनाई है, बड़ा बलिदान है, त्याग है, यह सब कुछ त्याग विवेकीजन कर सकते हैं। पर इस तपस्याके एवजमें जो उन्हें आनन्द आता है वह स्व स्वाधीन सहज, सत्य आनन्द आता है। अपनी २४ घंटे की जीवनीमें ही देख लो कि जब यह ध्यान हो जाता है कि अब मेरेको करनेको काम नहीं रहा। इस समय शांति रहती है और जब मेरे करनेको काम पड़ा है यह भाव है तब तो शांति नहीं रहती। जब आत्माकी ओर कुछ झुकाव होता है तब संतोष होता है, जब बाह्यकी ओर झुकाव होता है तब असंतोष होता है। हम सब केवल भूलमें ही दुःखी बने हैं। दुःखी कर कोई नहीं रहा। कमके उदय भी मेरा दुःख परिणमन नहीं करते वह तो अपने विपाक समयमें हाजिर होता है। यह तो उसका निमित्त पाकर अपने आपके परिणमनसे दुःखी हो रहा है। कोई बाहरके लोग मेरेको दुखी नहीं कर रहे हैं। मैं विचित्र कल्पना कर अपने आपमें दुखी होता हूं। एक कथा एक टीकामें है। वेदान्त जगदीश टीकामें है कि १० जुलाहे थे। बड़े मित्र थे। सबके सब कपड़ा बेचने बेचारे एक गांवमें गए। उस गांवके बीचमें नदी पड़ती थी। जब वे लौटकर घरको आए तो नदीमें से निकल आये तो उनमेंसे एकने कहा कि अपने सब मित्रोंको गिन तो लो कि १० के १० ही हैं ना, कोई बह तो नहीं गया। जब वे गिनने लगे तो सामने वालोंको तो सबको गिन लें पर खुद पर दृष्टि नहीं पहुंचे। उनके ध्यानमें तो गिनने वालोंको ९ के ९ लगे। दूसरे भी ऐसे ही गिने, अब सबके सब रोने लगे। गए थे दो तीन रुपयेका नफा लेनेको और एक मित्र खो आये। दसोंने गिन डाले, सबको ९ ही लगे, तब दसवेंने कहा कि वास्तवमें हम ९ ही हैं तो यह बात पक्की हो गई और वे सबके सब पासमें पड़े हुए पत्थर कंकडियोंसे सिर फोड़ने लगे। कुछ देर बाद वहांसे एक घुड़सवार निकला देखा कि ये सिर फोड़ रहे हैं कारण पूछा तो उन्होंने बता दिया। उसने एक निगाहमें देख लिया कि ये सबके सब दस हैं। वह कहने लगा कि तुम ९ तो जरुर हो पर अगर १०वें को हम तुम्हें दिखा दें और मिला दें तो क्या दोगे? सब बोले महाराज आपका बड़ा ऐहसान होगा और आपको नामको जन्म भर नहीं भूलेंगे। उसने एक छोटी लाठी ली। वह मारता हुआ कहता जाय कि १–२–३–४–५–६–७–८–९ और तू ही तो १० वां हैं और उसने फिर दूसरेसे शुरु किया और फिर जोरसे कहा कि तू ही तो १० वां है। इस तरह वे बड़े खुश हुए। अब इस समयकी स्थिति देखो पहिले जो उन्हें भ्रम था कि एक मर गया। इस भूलमें जो घबराहट अब है क्या? मगर उस घबराहटके समय सिर फोड़ दिया था वह वेदना अवश्य है। घबराहट नहीं है। भ्रमकी वेदना नहीं है किन्तु सचमुचकी वेदना है। इस प्रकार जब यह जीव मोहमें रहता है अज्ञानमें बसा है, जबकि घबराहटका वर्णन कौन कर सकता है? सहज चैतन्यस्वरूप भगवान्की भूलकी घबराहटका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता है। केवलज्ञान अनंत है, यह सोह भी अनत है। मोहसे होने वाली विह्वलता बहुत कठिन विह्वलता है और कभी मोह मिट जाय तो मोहके मिट जाने पर भी पुराने सस्कारके कारण जो राग है अभी उस रागकी वेदना है। ऐसे भी जीव होते हैं कि उन्हें रागकी वेदना नहीं मगर रागकी वेदना सताती है। एक बूढ़ी बुढ़िया जब अपने बापके घरसे ससुरालको जाती है, बुढ़ियाके भी ससुराल होती है, चाहे उसके मां बाप नहीं है पर नाती तो होते हैं, नातियोंकी छातीसे लगाकर रोकरके ससुराल जाती है, पर उस रोनेमें मोह है। कमसे कम २२५ बार बुढ़िया ससुराल जा चुकी होगी और अब २२५वीं बार फिर जा रही है। पद्धतिका राग है। उस रागके कारण बुढ़िया रो करके जा रही है। पद्धतिके कारण इतनी वेदना तो उस बुढ़ियाको भी है। ज्ञान वालेको अज्ञानकी वेदना नहीं है किन्तु जो राग है उसकी वेदना तो सहनी पड़ती है। रागकी वेदना भी इतनी प्रबल हो जाती है कि जब राजा रामचन्द्र जी बनको गए और वहां कुछ समय बाद सीता हरी गई तब सीता के हरे जानेके समय उनको कितना राग था, लक्ष्मणके गुजरजाने पर कितना राग किया, उस प्रवृत्तिको आप सुनें और भगवान् रामचन्द्रका नाम न लें तो क्या निर्णय होगा? एक आदमी था उसका छोटा भाई गुजर गया और उसकी लाशको ले ले कर फिरा और फिर लाशको धर करके कहा कि भैया! खाना तो खा लो। एक ऐसा आदमी

http://sahjanandvarnishastra.org/

है तो आप उसे क्या कहेंगे? भगवान् श्री रामचन्द्रजी का पूर्व चरित सुनाओ तो कहोगे, उनके अन्तरमें सम्यक्त्व पर चेष्टा रागकी इतना प्रबल थी कि बाहर सम्यक्त्वके कारण ऐसी वृत्ति हुई। तभी तो अवसर आने पर सर्व-विकार दूर हो गये। सम्यक्त्वकी वर्तनासे उनका भी उद्धार हो गया। परोपकारकी बात धर्मकी धुनिमें आ करके हमें बड़ी सुहा जाती है और पहिले सरल लगती है। परोपकार करने वालेमें कोई ऐसा भी पुरुष है जो निश्छल परका उपकार कर सके विरला ही कोई है। हम लोकमें बड़े हैं, लोग हमको बड़ा समझते हैं ऐसी बात जब चित्तमें बैठी है तो उस बड़प्पनकी सभार भी इस तरह होती है कि दूसरेकी बातको करें ढोंग रचें। यह बात कह रहे हैं एक सत्यकार्यकी। कोई पुरुष ऐसा है जो इस भावसे उपयोग करता है कि यह जीव भी शुद्धतत्त्वकी प्रतिमूर्ति है। इसकी सेवामें कुछ समय लगाए तो मेरेमें विषयकषायकी बातका विकल्प नहीं आये। अपने आपके विषयकषायके विकल्पोंसे बचानेकी भावनासे जो उपकार किया जाता है वह तो है सही पद्धतिका उपकार और इस लक्ष्यको छोड़कर जो उपकार किया जाता है तो वह तो उस प्रकारका उपकार है जैसे कोई मारबलमें नाम खुदवा दिया। इस प्रकार के उपकारी दुनियांमें मिलते हैं। यह चाहते हैं कि इस मारबलपर लिखे मेरे नामको बांच कर सब लोग जाया करें। धन्य है वह विवेकी पुरुष जो विषय कषायके विकल्पोंसे बचनेके ध्येयसे दूसरे जोवोंका उपकार करता है। यह सम्पदा आ पड़ी है मेरे घरमें जरूरतसे कई गुनी है और मेरे विकल्पोंका कारण बनी है और उसे छोड़ कर जाना पड़ेगा। व्यय करदे धर्म हेतु उपकार हेतु, इस प्रकारकी भावनासे जो धनका व्यय होता है वह है पद्धतिका त्याग, इस भावसे धनका त्याग करना और इस भावसे उपकार करना यह है सही पद्धतिका उपकार। जो कुछ भी करे अपने बचावके लिए, निर्मलता रखनेके लिए करें। इसका उपाय बताया जाता है कि हम किसकी शरण जाएं कि हमको वहां सत्य आनन्द प्राप्त हो। यह सबसे बड़ी सम्पदा यह है कि हमें वस्तुतत्त्वका सही स्वरूप दृष्टिमें आ जाय। यह बात कुछ कठिन लगती है और कठिन नहीं भी है। थोड़ा सा कुछ अध्ययन करने पर मनन होने पर यह बात सुगम हो जाती है। बड़े-बड़े ग्रंथकारोंने जो आपके कुंदकुंद महाराज समतभद्र महाराज अकलकदेव इत्यादि अनेक आचार्य हुए उन्होंने ज्ञानपर बल दिया है उनकी टीकाओंमें वस्तुस्वरूपका वर्णन आया है। यह समझो कि उन्होंने विशेष आवश्यकता नहीं समझी कि ये सब लिख जायें कि लोग यों रहें या करें या सभ्यता सीखें जिसे इसानियत कहते हैं, नागरिकता कहते हैं। ऐसा वर्णन किसी ग्रंथमें नहीं आया और आ गया तो कभी एक सूत्रमें आ गया सो वह भी तत्त्वका प्रकरण है तो आ गया जैसे सूत्रजीमें लिखा है—

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।

सो देखो उस तत्वका प्रकरण था अतः वह एक सूत्रमें बता दिया किन्तु वहां भी यह उपदेश नहीं दिया कि तुम क्षमा करो, दया करो, संयम पालो। इसमें यह कहा है कि क्षमा, दया आदि भाव साता वेदनीयके बंध करने वाले हैं। करना चाहो कर लो। शास्त्रोंमें सम्यग्ज्ञानमें भी मुख्यतया वस्तुस्वरूपका ज्ञान बताया है। कोई स्रोत ऐसा मिल जाय चाहे वह १० वर्षमें मिले जिससे कि फिर जलकी धारा नहीं टूटे। ऐसा ज्ञान मिल जाय चाहे १०–१२ वर्षमें मिले पर जिस ज्ञानके बाद हमारी सद्वृत्तिकी परम्परा नहीं टूटे उसमें आचार्य महाराजकी दृष्टि थी और ऐसी ही दृष्टि भक्तको अपने मनमें रखनी चाहिए। भैया अपने आपमें ही कोई तत्त्व ऐसा है कि जिसके दीख जाने पर मोह ठहर नहीं सकता। वह तत्त्व क्या है उसका वर्णन इस परमात्म प्रकाश ग्रंथमें है। जैसे हड्डीका फोटो लेनेवाला एक्सरा कपड़ेको छोड़कर, चमड़ेको छोड़कर खून मांसको छोड़कर सीधा हड्डीका फ़ोटो ले लेता है उसी प्रकार यह प्रज्ञा, वैभवको छोड़कर परिवारको छोड़कर, शरीरको छोड़कर, कर्मको छोड़कर, राग, द्वेष भावोंको छोड़कर, अपूर्ण ज्ञानको छोड़कर, विकारको छोड़कर अनादि अनंत शुद्धचैतन्यस्वभावका अपने उपयोगमें ले लेता है।

यह सब ज्ञानका ही तो प्रताप है। आपकी दुकानकी तिजोरीमें बक्स है उस बक्समें भी बक्स, बक्समें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

डिबिया, डिबियामें, कपड़ा, कपड़ेमें एक हीरेकी अंगूठी है। आपको जब उस अंगूठीका ख्याल आ जाता है तो आप का ज्ञान न तो दुकानके किवाड़से अड़ता, न तिजोरीसे अड़ता, न डिबियासे न कपड़ेसे अड़ता, सीधा हीरा जड़ी अगूठी को जान जाता है। ज्ञानकी गति सर्वपदार्थोंकी गतिसे विलक्षण है। सम्यक्ज्ञानी पुरुष ही ऐसा कर सकता है इसका ज्ञान किसीमें नहीं अटकता, सीधा जो अपना शुद्ध सहजस्वरूप है, पावन है, उद्धार करने वाला सर्वस्व है उसकी शरणमें पहुंच जाता है। वह परमात्मतत्त्व क्या है ? इसका वर्णन इस ग्रन्थमें है कि जो देहमें रहता हुआ भी शरीर-रहित है, कर्मसे भिन्न है उसको ही तुम परमात्मा जानो। जो बात कई प्रकारसे सुनी जाती है, परिचयमें आती है, अनुभवमें आती है उससे लगाव ज्ञान हो जाता है। जो कभी सुननेमें नहीं आये, परिचयमें नहीं आये, अनुभवमें नहीं आये उसका लगाव कैसे हो ? कमसे कम इतना तो ज्ञान सामने रख करके इस मुझ पर्यायको गुजर ही जाना है। कभी और यह सारा संगम छूट जाना है, कभी वियोग हो ले कुछ समय लगे वियोग तो होगा ही फिर मेरा जो मैं रहूंगा उसका क्या होगा ? उसका मुझे क्या करना है ? इतना सामान्य बोध सामने रखकर इसकी उत्सुकता बना ले कि हम अपने आपके रहस्यको समझ लें, मर्मको समझ लें जिसके लिए बड़े बड़े तीर्थंकरोंने बड़ी विभूतियोंका त्याग किया और अपने आपके स्वरूपमें मग्नताकी। देखो—प्रभु सर्वोत्कृष्ट हैं तभी तो हम मूर्ति बनाकर पूजते हैं। मूर्ति बनाकर पूजनेका अर्थ यह है कि यह महान् पूज्य है। यहां भी भैया आप लोग हाथ जोड़ते रहते हैं. ब्रह्मचारीके, पड़ोसियोंके जजके पर किसीकी मूर्ति बनाकर भी आपने हाथ पैर जोड़े।

किसीकी मूर्ति बनाकर हाथ जोड़नेका तात्पर्य यह है कि वह महान् पूज्य है। कभी किसीसे कोई बात अटक गई तो उसके हाथ जोड़कर पैर तक भी पकड़ लेते हैं पर उसकी मूर्ति बनाकर एक अंगुलीसे भी जैसे आजकल परम्परामें सलाम किया बताते हैं. इतना भी करते हैं क्या ? और जाने दो पिता की भी आप फोटो बनाते हैं। उस फोटोकी जानकारी भी औरोंको कराते हैं, देखकर सुखी होते हैं पर क्या कभी उस फोटोके भी हाथ जोड़े हैं। किसी की मूर्ति बनाकर पूजना बहुत बड़ा महत्व रखता है। हमारी प्रभु मे बहुत बड़ी श्रद्धा है जिसको हम संकुचित नहीं रख पाते और मूर्ति बनाकर हम उसके दर्शनमें रहते हैं। यह सम्यक्दर्शनकी एक विशेषता बताने वाली बात है। मूढ़ लोग नहीं जानते, न जानें। ज्ञानी पुरुष भी दो चार ही जानते हैं जानें। यह कोई प्रजातन्त्र निर्णय नहीं है कि बहुत से लोग जानें तो बहुत तत्त्वकी बात है और कम लोग जिसे जानें वह असत्यकी बात है। यहां यह बात नहीं चलती। जैसे प्रजातन्त्र राज्यमें ऐसे कई समूह राज्य होते हैं कि जिसमें प्रजाके वोट से काम नहीं होते हैं। लोग यह देखते हैं कि समझदार कौन है ? ज्ञानी कौन है ? योग्य कौन है ? किसे मिनिस्टर बना दें। मिनिस्टर बना देना प्रजाजनोंकी वोटसे नहीं होता होगा, विचारसे होता होगा। यह तत्त्वकी बात है अनंते जीव इस तत्त्वकी निन्दा करने वाले हैं और गिने चुने पुरुष इस तत्त्वको पसन्द करने वाले हैं। तो गिने चुनोंकी ही बात सही है। एक भिल्लनीको एक जंगलमें गज मोती मिल जाये और उसे वह पत्थर मानकर अपने पैरोंका मैल छुटाया करे तो वह मूर्ख है, रहे मूर्ख। किन्तु वे गजमोती क्या रानियोंके गलेमें हार बनकर शोभा नहीं दिया करते ? यह तत्त्व अज्ञानी जन चूंकि उन्हें पता नहीं है उनकी दृष्टिमें यह पत्थर के समान है, रहे। किन्तु ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें यह तत्त्व परम शरण ज्ञात हुआ कि जिससे हम प्रभु बन सके तो बनने की तैयारी कर सकते। इसके जानने से वीतराग समाधि बना सकें तो बना लें। भैया, राग द्वेषसे प्रभुके दर्शन नहीं होंगे। रागद्वेष नहीं है, सर्वमें समताका परिणाम है निज स्वरूपमें भी विश्राम मिलता है तो प्रभुके दर्शन हो जायेंगे। एक साथ दो बातें न होंगी कि रागद्वेष भी किये जायें व प्रभुके दर्शन भी पा लें। एक टीकामें एक कथानक है। दो चींटी थी। एक तो चींटी नमकके बोरे पर थी और दूसरी चींटी घरमें शक्करके बोरे पर रहा करती थी। दोनों नमक और शक्करमें रहा करती। एक बार शक्कर वाली चींटी नमक वाली चींटी के

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पास आकर बोली—मेरी बहिन यहां क्या करती है ? यह तो तुम खारा खारा खा रही हो। तुम हमारे साथ चलो ना, हम आपको मिठा मिठा खिलायेंगी। बहुत आग्रह करने पर कि तुमको तो हमारे घर पर चलना ही पड़ेगा, चली किन्तु उसने यह ख्याल करके कि वहां कुछ नही मिला तो भूखा रहना पड़ेगा सो एक दिनके लिये भोजन तो ले चलें तो अपनी चोंचमें नमककी डली लेकर वह चली शक्करकी चींटीके साथ और वह वहां पहुंची और शक्कर खाया तो शक्कर वाली चींटी ने पूछा बहिन कैसा स्वाद आया ? हमें तो वैसा ही स्वाद आया जैसे पहिलो था, उसे मधुर स्वाद नहीं आया। शक्कर वाली चींटी के लिये तो मीठा मीठा स्वाद था तो वह कहती है कि हमें तो मीठा मीठा स्वाद आता है उसने गौरसे देखा कि यह नमकीन डली चोंचमें लेकर आयी है। अरे बहिन इसे छोड़, चोंचसे निकाल यदि हमारे यहां भोजन करने पर यह विश्वास नहीं है तो पासमें ही इस डलीको रख लो। उसने चोंचसे डली निकालकर डलीको हटा दिया और उसने शक्करके दाने खाये। बोली बहिन, तुम ऐसा मजा कब से ले रही हो ? यह तो बड़ा मिठा लग रहा है। सो भैया ! हमारे मनमें मोह, रागद्वेष ममताका भाव भरा है तो हम प्रभुके दर्शन शुद्धात्मतत्वका अलौकिक अनुभव कैसे कर सकते हैं ? ज्ञानी पुरुषमें ही ऐसा साहस होता है जो बच्चोंके घरकी तरह तुरंत बनावे और तुरत बिगाड़ दे। जैसे बच्चे बर्षात की रेतीली जमीन पर पहुंचकर पैरके ऊपर धूल डालकर थोपकर घर बना लेते हैं इस प्रकार उन्हें घर बनानेमें समय नहीं लगता घरको बिगाड़ने में भी एक लातकी देरी है। इस प्रकार ज्ञानी जीव दुकानमें रहता है, दुकानका काम खूब करता है और परिवारका शोषण भी खूब करता है किन्तु समय समय पर जब चाहे उन सब बातोंको बिल्कुल भूलकर एक अपने सहजस्वरूपको भी देख लेता है। बाहरी काम करनेमें भी उसके पास कला है और उन बाहरी बातोंको छोड़कर अपना अनुभव करले ऐसी भी कला है। ऐसा योग्य पुरुष ज्ञानी पुरुष है। प्रभुके दर्शन करनेकी पद्धति यह है कि अपने आपको निर्विकल्प स्पष्ट बना लिया जाय तो प्रभुका दर्शन हो सकता है। एक बार दो चित्रकार राजाके पास आये, उन्होंने कहा महाराज हम बड़ा अच्छा चित्र बनाना जानते हैं। राजाने कहा अच्छा तुम दोनोंके चित्र हम मुकाबलेमें बनवायेंगे। राजाने एक ही हाल के बीचमें एक पार्टीशन कर दिया तो एक भीत एक चित्रकारको दे दी और दूसरी भीत दूसरे चित्रकारको दे दी और उनको चित्र बनाने के लिये राजाने ६ माहका समय दे दिया। दानों में से जिसका चित्र बढ़िया होगा उसको भरपूर पुरस्कार मिलेगा। हो गई तैयारी। एक चित्रकारने जिसको अपनी कला पर गर्व था बढ़िया रंग मगाकर अच्छी चित्रकारी करना शुरू किया। जो दूसरा चित्रकार जो कि विवेकी था उसने अपनी भीतको घोटना शुरू किया। ६ माह हो गये तब राजाने कहा तुम लोगोंके बनाये चित्र अब देखते हैं। उस पार्टीशनको अलग कर दिया। राजा चित्र देखने पहुंचा तो गर्वीले चित्रकारके चित्रोंको देखने लगा तो चित्र तो बहुत सुन्दर था। क्योंकि कलाकार था लेकिन उसमें विशेष क्रांति नजर नहीं आयी और दूसरी भीत को देखा जो घुटी थी तो वे सारेके सारे चित्र चमकने लगे। राजाने उसको पुरस्कार दिया। इस प्रकार हम धर्मके नाम पर ४-६ घटा श्रम तो करते हैं। जाड़े में भी सुबह नहा धोकर मंदिरमें आते हैं भक्ति करते है, पूजा करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, गुरुवोंकी सेवा भी करते हैं। बड़ा श्रम करते हैं। धर्मकी धुनि भी इतनी सही है, कोई काम आ पड़े धर्म पर तो व्यय करने मे भी नहीं चूकते। क्या कर रहे हैं ? धर्मका काम कर रहे हैं। ऐसे धार्मिक कामका तो एक विवेकी पुरुष भी करता है और जिसके विवेक नहीं है और धर्मकी धुनि है तो वह भी ऐसा किया करता है। काममें अन्तर नहीं पड़ता है किन्तु जिसने अपनी उपयोगरूपी भीत को मांझ लिया, साफ किया, सुथरा किया है उसको उस स्वच्छ ज्ञानमें आ टिका कि इसका स्वरूप यह है। व्यवहार धर्मसे भी लाभ लूटता है। भैया ! जानों तो सही इस आत्माका ढंग क्या है ? किससे बना है ? कैसा आकार है ? क्या इसको जाना नहीं जा सकता ? उत्तर सही मिलना चाहिये कि यह ज्ञानमात्र है। यह मैं मात्र प्रतिभासका कर्त्ता हूं। यह मैं अमूर्तिक जानन मात्र हूं। उसका अन्य पदार्थसे भी सम्बन्ध नहीं। यह स्वयं अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वरूपमें स्वतन्त्र है। यह बात अनुभवमें आ जाय तो ऐसी स्वच्छता हो जायेगी कि हमारे फिर यही सब काम व्रतके तपके स्वाध्यायके ये सब चमक जावेंगे, श्रृंगार होंगे। १० गुने फायदे देंगे एकके अंकके ऊपर अगर हम एक बिंदी रख दें तो वह १० गुना संख्या हो जाती है। बिंदी १० गुनेका प्रभाव डालती हैं। इस तरह अपनी आत्माका बोध सम्यक है तो यह सब कार्य १० गुने क्या कई गुने फैला करते हैं और एक का अंक पहिले न हो तो क्या उससे एक केला भी खरीदा जा सकता है। उससे कोई काम निकल सकता है? कुछ भी नहीं निकल सकता, व्यर्थ है। हां बिंदियां धरी हैं और कोई चुपचाप आकर कोई उनके पहिले एक लिख जाय तो वह बात अलग है। इस तरह जो व्रत तप किया जाता है उस स्थितिमें चुपचाप कभी किसीको आत्मतत्त्व दीख जाय तो वह बात अलग है। तो वह सब काम ऐसे हो जायेगा जैसे एक धनी कंजूस कोई है, इस समय तो कंजूस है पैसा खर्च नहीं कर सकता और कदाचित् उसके सद्बुद्धि हो जाय तो पैसा खर्च करने में एक मिनट भी देर नहीं लगती। इसी प्रकार ये सब व्यवहार धर्मपालनके संस्कार हैं तो ठीक काम तो अच्छा है पर आत्मज्ञान बिना हितमें कंजूस है जिसके कारण उसे आत्म-सन्तोष नहीं है। किन्तु धर्मके काममें सद्उपयोग है सो यद्यपि इस समय कर्मको संवर व निर्जरा तनिक भी नहीं होता फिर भी कदाचित् इन कामोंको करनेमें कभी आत्मज्योतिकी झलक आ जाय तो कल्याण हो जायेगा। इसलिये बिना आत्मज्ञानके ये हमारे धैर्यके कार्य कंजूस के धनकी तरह है। इस कालमें तो कंजूस अपने आरामके लिये भी कुछ व्यय नहीं कर सकता किन्तु आगे कभी कर तो सकता है। धन तो है उसके पास। इस प्रकार इन कार्योंमें हमें शांति जरा भी नहीं रह पाती। देखो ना, विधान करते हुए विह्वलता क्यों रहती है? कोई हमारा विधान बिगड़ नहीं जाय। ये लोग यह कह न जायें कि इनका विधान अच्छा नहीं हुआ। कितने प्रसंगोंमें तो गुस्सा आ जाता है। उसका लाभ नहीं ले पाता इसका कारण क्या है कि हम आत्मबोधपूर्वक कार्य नहीं करते है। पहिले समयमें तो बड़ी साधारण रीतिसे विधान होता था, बड़ी भक्तिसे, शांतिसे विधान होते थे, खर्च भी अधिक नहीं होता था। बिना विविध व्यय व आडम्बरके कितना उत्तम होता था। जो बूढ़े आदमी हैं वे सब जानते हैं कि उस समय भक्ति शांति कितनी मात्रा में रहती थी। आज हमारे कुछ लोग इसकी विधिको इतना बढ़ाते हैं कि एक विधानमें ५-६ हजार सभी खर्च करा है। जब इस विधानके करने वालेकी समझमें यह न आये कि इस विधानके करने में ५०००) खर्च हुआ तब तक कराने वाले को ५००) कैसे मिला, यदि वह देखता है कि मेरे विधानमें १००) खर्च होते हैं तो पंडितजीको क्या मिलेगा? कितना आडम्बर व श्रम बन गया विधानमें, सो विधान करने वाले जानते होंगे कि हम कितनी भक्तिमें अपना समय गुजारते हैं। जब तक आत्मज्ञान नहीं है और यह उद्देश्य नहीं बना है हमारी इस शुद्ध पूजामें कि प्रभुका स्वरूप ऐसा है और ऐसाही मैं हो सकता हूं उस एक भावमें भरने के लिए मैं पूजा कर रहा हूं—यह उद्देश्य नहीं आये जब तक शांति का उद्योग नहीं बन सकता। एक पुरुष साधुके पास गया बोला महाराज मुझे कुछ उपदेश दीजिये। साधु बोले—सुनो मैं ब्रह्म हूं। फिर—मैं ब्रह्म हूं। दो चार बार दिया यह उपदेश और महाराज और क्या? और बतलाओ। साधु बोला, कि अच्छा तुम यहां से चले जाओ। अमुक गांवमें पंडितजी रहते है उनसे कुछ सीखो अध्ययन करो। वह गया और पंडितजी से प्रार्थना की। उन्होंने कहा जैसा कि पहिले यह रिवाज था कि कुछ काम करना पड़ता था गुरुका तब उससे कुछ शिक्षा मिलती थी। गुरुने कहा कि गाय भैंसकी शालामें गोबर को उठाने वाला कोई है नहीं सो तुम गोबरको फेंक आया करो और कुछ गोबर के कन्डे बना लिया करो। काम मिल गया और वह पढ़ने लगा १२ वर्ष तक उसने गोबरका काम किया और १२ वर्ष बाद जो कहते हैं दक्षिणाका समय तो उस समय कहने लगा कि गुरुजी मुझे सब उपदेशोंका सार बता दो तो गुरुने कहा सुनो। 'अहं ब्रह्म अस्मि, मैं ही ब्रह्म हूं। शिष्य कहता है कि इतनी बात तो हमें एक साधुने बता दी थी तो क्या मैंने १२ वर्ष गोबर मुफ्तमें उठाया? गुरुने कहा कि अब तक तुमने जो अध्ययन किया उस सब अध्ययन की बातका सार है, इसको अध्ययन किये बिना नहीं जान सकते थे। एक राजा था तो घोड़े पर सवार हुआ। वह मंत्रीके घरके सामने से निकला तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उसने मंत्री से कहा कि हमें आत्मा और परमात्मा दिखा दो। तो महाराज घोड़ेसे उतरो, राजा बोला हमें जल्दी है। हमको तो ५ मिनट में ही दिखा दो। मंत्री बोला महाराज अपराध क्षमा करो तो आपको पाव मिनटमें दिखा दूंगा। मंत्रीने राजाके हाथसे कोड़ा लेकर राजामें ३-४ कोड़े मारे तो जो उन कोड़ोंके पड़नेसे राजाके मुंहसे निकला अररर भगवान्! मंत्री बोला यही तो परमात्मा है, आत्मा है। जिसे तुम पुकारते हो वह भगवान् है जिसमें अरे कहा वह आत्मा है, जल्दी समझने का तो यही तरीका है, पर इस तरह कोई स्थाई बोध नहीं हुआ। आत्मज्ञान करना सबका काम है और उसके धनके लिये हमें विधिपूर्वक अध्ययनमें जुटना चाहिये। यह कमाई आपकी सच्ची कमाई होगी। आपका कमाया हुआ धन जब तक साथ है तब तक आकुलता है मगर यह आत्मज्ञान ही आपकी शांतिका कारण है। उस ही परमात्मतत्त्वको इस ग्रंथमें विशदरूपसे बताया जा रहा है।

जैसे इस अनन्त आकाशके बीचमें कोई एक नक्षत्र शोभायमान रहता है। इस ही तरह इस केवलज्ञानरूपी अनन्त आकाशके बीचमें यह समस्त तीन लोक और अलोक, तीनों लोक ये सब नक्षत्रके समान प्रकाशित होते हैं। यह प्रभुके ज्ञानकी महिमा बताई गई है। यह प्रभुके ही ज्ञानकी महिमा नहीं है, हमारे आपके ज्ञानकी भी महिमा है। तुम अपनी असली महिमाको नहीं जान रहे और व्यर्थमें जो नष्ट हुए जाने वाले हैं, जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा उनमें उपयोग बढ़ाये हुए हैं। जैन शासनको पाकर भी यदि पुरानी रफ्तारसे तनिक भी नहीं टला तो किस लिये यह जैन शासन है? यह लोकालोक इतनी जगहमें पड़ा हुआ है जैसे अनन्त आकाशके बीचमें एक नक्षत्र जितनी जगहमें पड़ा हुआ है। वस्तुके नापने के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं। डिग्रियाँ भगवानके ज्ञानके अभिभाव प्रतिछेद इतनी हैं कि थोड़ेसे अविभाग प्रतिच्छेद ही सारे विश्वको जान लेते हैं। देखो मोटी चीजमें बहुत सी चीज समाती है या पतली चीजमें बहुत चीज समाती है। उत्तर मिला पतलीमें बहुत सी चीज आया करती है मोटी वस्तु में नहीं आया करती। दुनियांमें देखलो जमीन मोटी है या पानी मोटा है। उत्तर मिला जमीन मोटी है तो जमीन का हिस्सा बड़ा है अथवा पानीका हिस्सा बड़ा है? पानी का हिस्सा बड़ा है। पतले में अनेक मोटी वस्तुयें आया करती हैं। जैन सिद्धांतके हिसाबसे भी जितना विस्तार स्वयभूरमणका का है उसका प्राय: आधा विस्तार सारे द्वीप समुद्रोंका है, तो जमीन का हिस्सा अपने इस मध्यलोकमें कितना है तो पानीके मुकाबलेमें उसका ८वां हिस्सा हो सकता है। पानी पतला होता है या हवा? हवा पानीसे पतली होती है। इस पानी और पृथ्वीका जितना विस्तार है वह सब हवाके अन्दरमें है हवाका विस्तार जमीन और पानीसे बड़ा है। हवा पतली है कि आकाश पतला है? आकाश हवासे पतला है। यह हवा पानी जमीन सब कुछ आकाशके अन्दर समाया हुआ है और आकाश जैसी पतली चीज भी एक ज्ञानके कौनेमें पड़ी है। यद्यपि अमूर्ति होने के कारण आकाश सूक्ष्म है पर आकाश सारा अनन्त आकाश ज्ञानके कौनेमे पडा है तो इस ही युक्तिसे अर्थ लगाया जाता है कि यह ज्ञान आकाशसे भी सूक्ष्म है। ऐसे ज्ञान होने की चर्चा सुनकर कुछ इच्छा हो जाया करती है कि मेरा भी ज्ञान बढ़े अवधिज्ञान बढ़े, केवल ज्ञान हो, बहुतसी बातोंको जाना करें और उस ज्ञानके लिये इतनी उत्सुकता होती है और इस विशाल ज्ञानकी उत्सुकता तो है ही। उस ज्ञानस्वभावपर हम दृष्टि दें तो हम भी इस ज्ञानविकासको, प्रभुताको पा सकते हैं। इस जीवनमें निर्णय तो यथार्थ रखो। सत्य ज्ञान करने में भी दिक्कत होती है क्या? घर है रहने दो, दुकान है रहने दो, काम करना है तो काम भी कर लो, पर सत्यज्ञान करने में कोई भी दिक्कत है? सर्व पदार्थ अपना सत्त्व लिए है। मेरी आत्माका दूसरे पदार्थोंमें कुछ भी नहीं लगता, ऐसा सत्यनिर्णय करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। बहुत अधिक त्याग तो सच्चा ज्ञान करनेमें ही आ जाता है। बाहरमें चीजोंको छोड़ना, अब इस चीजको अपने पास न रखना, यह तो उस ज्ञानकी उत्कृष्टताका ही फल है। जिस समय आपकी दृष्टिमें यह समा जाए कि मेरा स्वरूप मुझमें है अन्य जीव अपने अपने सत्वमें हैं। उनमें गुण पर्यायका असर कुछ भी मुझमें नहीं आता ऐसा जिसमें सत्यका निर्णय है, वहाँ त्याग हो जाता है अन्दर से। अब राग जो सता रहा है उसको त्याग करने की आवश्यकता है। अन्दर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

श्रद्धामें त्याग हो गया है। जैसे दो पड़ौसियोंने एक धोबीके यहां अपनी अपनी चद्दर धुलने डाली। उनमें एक आदमी पहिले धोबीके घर जाकर एक चद्दर ले आया लेकिन धोबीने धोखेसे चद्दर दूसरेकी दे दी। अब वह यही जानता है कि यह मेरी चद्दर है तो चद्दर उसके घरसे लाकर और ओढ़कर सो गया उसे नींद भी आ गई। अब दूसरा गया चद्दर लेनेको जो कि धोबीके पास थी। जब धोबीने उसे चद्दर दी तो कहता है कि यह मेरी चद्दर नहीं है, अहो! तुम्हारी चद्दर उसके पास पहुंच गई है दो ही तो चद्दर थी। वह अब उस चद्दर ओढ़ने वालेके पास जाता है और चद्दर खींचकर उसे जगाता है कि यह चद्दर मेरी है, तुम्हारी नहीं है। वह जागा और इतनी बात सुनकर कि यह चद्दर मेरी नहीं है वह उन चिन्होंको देखने लगा जो उसके पहिचानके थे। वह उसे न मिले तो झट ज्ञान हो गया कि यह चद्दर मेरी नहीं है। उस चद्दरका भीतरसे त्याग हो गया क्योंकि यह देनी पड़ेगी। यह मेरी नहीं है। कितना त्याग हो गया? जितना वह हाथसे देवेगा इतना त्याग। कितना समझो उसको? बहुमाना त्याग हो गया। अब समझ लो कि ज्ञान द्वारा वस्तुके भिन्न भिन्न होनेके निर्णयमें भी बहुभाग त्याग हो जाता है। अल्प त्याग करनेको रहता है। जैसे राग कम होगा वैसे ही त्याग हो जायेगा। मगर केवल करनेसे त्याग नहीं होता, गप्पसे त्याग नहीं होता। यदि श्रद्धामें यह जम जाय कि यह पदार्थ मेरेसे अत्यंत भिन्न है तो उसका त्याग हो गया। अब वह चद्दर वाला सब कुछ समझ सकता. उस चद्दरसे मोह भी कम हो गया। अब चद्दर उतारनेमें उसे कुछ विलम्ब तो होगा। बम ज्ञानी जीवको बाह्य वस्तुके अलग करनेमें कितनी देर है जितनी कि इस शरीर से निकाल कर देने में देर है। थोड़ा और समझ लो कि वह बनावट करके झूठ मूंठ बोले कि यह चद्दर मेरी हैं ताकि मेरी चद्दर तो मिल जाय। भले ही उसको देने में ४-६ घटे लगें तो उसका भीतरी ज्ञान तो यह कह रहा कि यह मेरी चद्दर नहीं है और वह बनाबट करके कह रहा है कि यह मेरी चद्दर है।

जब ज्ञानी पुरुषमें कोई तीव्र राग होता है तो उसको वर्षों लग जाते हैं। ज्ञान तो यह स्वयं कर चुका कि अपनी आत्मामें मैं हूं दूसरा कोई नहीं। भैया! जिनेन्द्रदेव का कितना उपकार है? हमारे लिये कितनी सरल चिकित्सा बताई है जिसमें कोई कष्ट न हो। इस सरल चिकित्साको हम स्वय नहीं करना चाहते तो आपरेशन जैसी? चिकित्सामें तो सोचता है रोगी कि चाहे मैं मर जाऊंगा पर आपरेशन नहीं करवाऊंगा। यहाँ आपरेशन जैसी चिकित्सा तो नहीं की जा रही है। हम बैठे सुनें. जानें, वस्तुके स्वरूप को परखो। उसमें भूखे नहीं मरना पड़ता, उपवास नहीं रखना पड़ता। घर छोड़नेकी बात नहीं कह रहा दुकानके लिये मना नहीं कर रहा, उस गृहस्थ धर्मका पालन करो, पर वस्तुके सत्यस्वरूपको समझ लो। कितनी सरल चिकित्सा हमारे आचार्य देवकी है। आत्मा का यथार्थ मर्म जान जायेंगे तो हम इसकी सही व्यवस्था बना सकते हैं अन्यथा लक्ष्य बिना भटकते रहेंगे। नाव चलानेकी तरह, कुछ पूर्वकी ओर चलाई और उसका मन हुआ तो दक्षिणकी ओर चलाई, कभी पूर्वकी ओर चलाई तो कभी पश्चिम की ओर चला दी, फिर नाव चलाई, मगर वह पार नहीं जा सकता। इस तरह सत्य लक्ष्य हुए बिना आत्मसेवाके भाव बिना प्रेमकी रीतिमें लगो, इज्जतकी रीतमें लगो, कुटुम्बकी इच्छाकी पूर्तिमें लगो और रुढ़ी धर्म की रीतिमें कितना भी श्रम करो तो भी परम विश्रामको नहीं पा सकते। इतने बड़े भारी रोग लगे हैं और कैसी आगमकी यह चिकित्साकी जाती है? कुछ नहीं करना, तुम इस निजके पाटलेमें बैठ जाओ अपने आपका राज जानो। ऐसा आराम व आरोग्य का उपाय, उसको भी यह श्रमी रोगी स्वयं नहीं करना चाहता और वह वैभवमें गंदे शरीरमें ही सनना चाहता है ओह! प्रभुका स्वभाव जैसा है वैसा ही मेरा स्वरूप है - ऐसा जाननेमें एक अन्दरमें महान् उत्साह जागता है। अपना तुच्छ वृत्तियोंमें मन नहीं लगता। कोई जान जायें कि मैं तो राजाका पुत्र हूं तो उसके अन्दर तुच्छ कल्पनायें नहीं आयेंगी। यदि हम जान जायें कि हम पूजा करते हैं अरहंत देव भगवान् की वैसे ही मैं शुद्धस्वभाव वाला हूं तो उसका इस विषय कषायमें चित्त नहीं लगेगा। जो अपने ज्ञानस्वभावकी महिमाकी ओर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उपयोग करता है वह "हम सब, हम समझ चुके, हम जान चुके" ऐसा ख्याल नहीं कर सकता। उसे यह विदित हो जाता है कि अहो ज्ञानका बड़ा विस्तार है। जितना जानो उतना मानोगे कि मैंने कुछ नहीं जाना। यह तो ज्ञान वाले की वृत्ति है। अज्ञानी थोड़ा जान जाता है तो समझ लेता है कि मैं बहुत जानता हूं। जैसे कोई तालाबमें पैर डालता चलता है कि तालाब कितना गहरा है तो वह समझ जाता है कि वह बहुत गहरा है। गहराईमें चले भी नहीं और पैर डाले भी नहीं और उसकी गहराईका अनुमान करना चाहें तो कैसे कर सकता है? और जो तालाब की गहराई को जान चुका है वह तो बिना चले ही मालूम कर सकता है। परमावधि सर्वावधि, मन:पर्यायज्ञान जैसे विशाल ज्ञान के धारी पुरुष भी ज्ञानी नहीं हैं। केवलज्ञान ही एक परिपूर्ण ज्ञान है और उस ज्ञानका मेरा स्वभाव है। एक पढ़ा लिखा जवान बी० ए० पास लड़का पास होकर आया और खुशीमें वह समुद्रकी सैर करनेके लिये चला। समुद्र तट पर जाकर एक नाविकसे बोला। वह २०-२२ वर्षका लड़का था, हमें समुद्रकी सैर करादो। नाविक कहता है बैठिए एक रुपया किराया है। अच्छा लो। वह बढ़ गया समुद्रकी सैर करने। कुछ दूर नाविक गया वहां उस नाविकसे वह बी० ए० बोलता है। क्या? भाई तुम कुछ पढ़े हो? नहीं साहब। अच्छा तू अ आ इ ई हिन्दी जानता है नहीं साहब। तेरा बाप भी जानता है नहीं साहब। यह तो हमारी परम्पराका काम चला आ रहा है तो वह लड़का बोला कुछ गर्म होकर कि बेवकूफ, नालायक ऐसे ही लोगोंने तो भारतको गारत किया है। वह नाविक बिचारा सुनता गया जब वह नाव आधे मील पहुंची और वहां ऐसी तेज भवर आई कि नाव भी डगमगाने लगी। नाविक बोला बाबूजी यह नाव नहीं बच सकती, यह तो डूबेगी और हम तो तैर कर निकल जायेंगे और आप कैसे निकलोगे? लड़का बोला मुझको बचाले. १०० ले लो १००० ले लो, मुझे बचा लो तो नाविक कहता है कि बच नहीं सकते। अच्छा बताओ तुमने तैरना सीखा है या नहीं? बाबू बोला—नहीं तो नाविक उतनी ही गालियों को फिर से दुहरा कर कहता है कि नालायक बेवकूफ! ऐसे ही लड़कोंने तो भारत को गारत किया है।

सोचो तो भैया! अगर भारतमें सबके सब हाईस्कूल शिक्षित हो जायें तो खेती व्यापार आदिका कार्य कौन करेगा? अगर यह किसान नहीं रहे जो कि अन्न पैदा करता है. तो भुखमरी बढ़े कि नहीं? तो किस ज्ञान को पूर्ण कहोगे? अगर सबके सब जीव ज्ञानी हो जायें तो भुखमरी नहीं बढ़ेगी। तो ज्ञानमें क्या गर्व करना? केवलज्ञान में ही सर्वज्ञान आते हैं "मम स्वरूप है सिद्ध समान। अमित शक्ति सुख ज्ञाननिधान।। किन्तु आप बस खोया ज्ञान। बना भिखारी निपट अजान।।" यह मेरा स्वरूप सिर्फ भगवान्‌की तरह है. देखलो भीतरमें अपने आपके स्वरूपको यहां कुछ घर जैसा पिण्ड मिलेगा नहीं, यहां स्वाद मिलेगा नहीं, यहां गन्ध आयेगी नहीं, इसे छुआ जा सकता नहीं, बेधा जा सकता नहीं, जलाया जा सकता नहीं. बहाया जा सकता नहीं तो एक विलक्षण जाननस्वरूपमय चैतन्यशक्ति है इसका काम जानन है। स्वसत: जाननमें यह वृद्धि करता है, जानता जाने देखता जाये। यह सम्यक्ज्ञान ही हम और आपको सकटोंसे मुक्ति दिलाने वाला है। पर अज्ञानी जीव इस ज्ञानके बजाय आशाको महत्व देता है तो आशा के वश होकर हमने ज्ञान खो दिया और निरे मूर्ख निपट अज्ञानी बन गए यहां बीचमें मिलना जुलना कुछ नहीं। सट्टे के व्यापारसे भी गदा काम केवल एक भाव कर रहा है। जब भाव ही हम कर सकते हैं तो उत्कृष्ट भाव क्यों न करें? कोई जो गन्दे भावके लिए बढ़े, बढ़कर अन्यत्र क्या कर सकता है? जैसे बच्चे लोग कभी प्रीतिभोज का खेल खेलते है, उनके पास है तो कुछ नहीं, पर वे अपने साथियोंको बुलाकर एक एक बड़ा पत्ता परस देते हैं कि यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

थाली परस रहे हैं और एक एक छोटासा पत्ता परस देते हैं कि यह रोटी परस रहे हैं। एक एक ककड़ी भी परस देते हैं कि यह चना परस रहे हैं। गरीब बच्चे तो उस पत्ते को रोटी कहकर परसते हैं। और बच्चे ! उसे कचौड़ी कहकर क्यों नहीं परसते ? एक छोटे कंकड़को परसे तो उसे बूंदी कहकर क्यों नहीं परसते ? बड़े बड़े घरके बालक तो उन कंकड़ोंको केवल बूंदी कहकर ही परसते हैं। ऐसे ही यहां देखो—करते कुछ नहीं बाहर में। अन्तरमें ही अपने रागादि विकल्पोंमें रहते हैं। हम अपने केवल ज्ञान स्वभावमात्र स्वरूपको देखेंगे तो हममें भी वही प्रभुता प्रकट हो जायेगी। यदि यह एक केवलज्ञान प्रकट हो जाये तो यह इस जीवमें फिर कोई संकट नहीं रहेगा। यह शुद्धविकाश जिस ज्ञानस्वभावी परमात्मतत्त्वके दर्शनके प्रसादसे प्रकट होता है उसी परमात्मस्वरूपका विवरण इस परमात्मप्रकास ग्रन्थमें किया गया है।

परमात्मप्रकाश प्रवचन प्रथम भाग समाप्त

जमना प्रिंटिंग प्रैस, ४२५, न्यू भगवतपुरा मेरठ

Version 1